युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वं,

जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला।

अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,

धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥

卐

卐

श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी के उपलक्ष में

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर

द्वारा प्रकाशित

मुद्रक—मदनलाल शर्मा के प्रबन्ध से

गणेश प्रिन्टिंग प्रेस, लोहिया बाजार, ब्यावर

सप्रेम भेंट—

तालेरा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट
महावीर बाजार, ब्यावर

* दो शब्द *

जैनधर्म-प्रभावक जगत् वल्लभ श्री श्री १००८ श्री स्वर्गीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० का जीवन वास्तव में मानव समाज के लिये एक सच्चा दिवाकर ही था। जिस तरह दिवाकर रात्रि के अंधकार को नाश कर अपने दिव्य प्रकाश से समस्त जगती तल को आलोकित करता है उसी तरह दिवाकर श्री जी ने भी मानव समाज को अपने दिव्यदान से प्रकाशित किया। जिस भांति दिवाकर की ज्योति ऊँचे २ गगनचुबी गिरिराजो के शिखरों को प्रकाशित करती है, नन्ही २ डूगरियो को भी उसी उदारता से प्रतिभासित करती है। सूर्य रूप दिवाकर तो आकाश मंडल मे रह कर पदार्थों को प्रकाशित करता है किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि हमारे स्वर्गीय दिवाकरजी ने इस भूमिस्थल पर रह कर राजा महाराजा के ऊंचे २ भव्य भवनो को अपनी दिव्य वाणी रूप ज्योति से प्रकाशित किया। जिस उच्च भावना से ऊंचे गगन-चुम्बी राज भवनो को प्रकाशित किया। उसी उदारता के साथ गरीब भील की झोपड़ी भी अपने सदुपदेश से प्रकाशित की। मुझे इस विषय का एक प्रत्यक्ष अनुभव याद आ गया है।

सम्वत २००९ के साल में सादड़ी साधु सम्मेलन के पश्चात मैं विहार करके मेवाड़ मे होता हुआ रतलाम चातुर्मासार्थ जा रहा था। मेवाड़ स्थित भिण्डर नगर से मुनि मंडली सहित विहार कर

कुंथवास जा रहा था। मेवाड़ प्रांत पर्वतीय और कंकरीला प्रांत तो प्रसिद्ध ही है यहां अच्छे मार्गज्ञाता पथिक भी मार्ग विस्मृत हो जाते है जिस रास्ते को हमें जाना था उस मार्ग को भूल कर और ही मार्ग ले लिया। पवन झंझावात के रूप मे जोर से चल रहा था। यदि मार्ग पूछने के लियें किसी को आवाज देनी पड़ी तो ऐसे वायुवेग में आवाज भी सुनाई नही देती थी। प्रथम तो ऐसे मार्ग मे मनुष्य मिलना ही दुर्लभ है। हम सकल्प विकल्प मे पड़ गये कि सही रास्ता कौनसा है? किसको पूछे ? किधर जावे ? किसी मार्गप्रदर्शक की हम इन्तजार मे थे कि इतने मे आकस्मिक एक भील आ निकला। उसने आकर अभिवदन किया और वह अपनी ग्रामीण भाषा में वोला—वावजी आपके कठे पधारणो है ? हमने कहा—कुंथुवास। वह भील वोला—'वावजी! यह मार्ग कुथुवास रो नही है।' सही रास्ता आप भूल गये हैं। उसने हमारे साथ होकर कठी रास्ता वतलाया। वह वहुत दूर तक साथ मे रहा। जव उसको पूछा कि तुम कौन हो ? उसने कहा कि वावजी मे भील हूं। उससे पूछा कि तुम्हें साधुओ से प्रेम और साधुओ की जानकारी कैसे हुई? उसने उत्तर दिया कि श्री चौथमलजी वावजी रो उपदेश सांभलवाथी। मैंने श्री चौथमलजी वावजी के पास ही णवकार मन्त्र सीख्यो और दारु मास शिकार छोड़वा को नेम लीधो। उनरी कृपा से मुझे साधुओं से प्रेम हुआ है।

इस घटना को सुन कर मेरा हृदय गद्‌गद्‌ हो गया और दिवाकरजी की पुण्य स्मृति पुनः २ मेरे हृदय में चक्कर लगाने लगी। मेघ गर्जना को सुन कर जिस भांति मयूर प्रमुदित होकर नाच उठता है उसी भांति मेरा हृदय भी आनन्द विभोर हो गया। वाह रे वाह! दिवाकर! तेरे जीवन का दिव्य प्रकाश कितना विलक्षण है? जहां पर मेवाड़ सरताज महाराणा फतेसिहजी और

भूपालसिंहजी को अपनी वाणी से लाभान्वित किया उसी प्रकार एक ग्रामीण भील को भी तेरी वाणी की दिव्य ज्योति ने पुनीत किया। वास्तव मे दिवाकरजी का जीवन एक अनूठा जीवन था। सूर्यरूप दिवाकर की ज्योति तो केवल भौतिक बाह्य पदार्थों को ही प्रकाशित करती है किंतु आपकी दिव्य ज्योति ने आभ्यंतर और वाह्य सभी पदार्थों को प्रकाशित किया। यह आपकी दिव्य ज्योति की एक विशेषता है।

आपने अपने वचनामृतो से जो सन्तप्त, दुखित, व्यथाओं से व्यथित हृदय थे उनको सिंचित कर शात किया था आपने अपने सार्वजनिक सदुपदेशो से जैन जाति का ही नही, सच कहते हैं तो समूचे मानव समाज का कल्याण किया है रियासतो मे अगते रखवाने के लिये ताम्रपत्र लिखवाकर हिंसा पर प्रतिबंध लगा जो दीन दु खी मूक प्राणियो को अभयदान दिया, यह महान उपकार किया है। ऐसा भागीरथ कार्य महान व्यक्ति ही कर सकता है। अभयदान से और कोई उत्तमदान नही है। अभयदान ही सर्वोपरिदान है। शास्त्र भी इस वात की साक्षी देता है—'दाणाणं सेट्ठं अभयप्पयाणं' और भी कहा है-'महतामपि दानाना कालेण क्षीयते फलं अभयदानप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते' अन्न वस्त्रादि द्वारा महान् से महान् किये गये दान का फल किसी न किसी स्वल्प या अधिककाल मे क्षय हो ही जाता है। किंतु अभयदान का फल ही ऐसा अमर फल है जो कभी भी नष्ट नही होता है। इस अभयदान के दाता श्री दिवाकरजी अपनी जात से अपने समय मे एक ही थे, यदि ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

श्री स्वर्गीय दिवाकरजी के जैन जाति पर किये गये उपकार शासन सेवा, हजारो अनार्यों को आर्य बनाना, घर घर मे वीर सन्देश पहुचाना बड़े २ अधर्मियो को धर्मी बनाना, पातको को

पावन बनाना ये सभी कार्य आपके अति प्रशंसनीय हैं । वास्तव में आप अपने ससय के एक पतितोद्धारक थे ।

यद्यपि आपने कोई विशेष पदाधिकार धारण नही किया किंतु बहुत सारे पदाधिकारियों से भी हरेक क्षेत्र मे वढचढ़ कर सुन्दर कार्य किया । सूर्य (दिवाकर) जव अस्त होता है तो अपने दिव्यप्रकाश को समेट कर अपने साथ ही ले जाता है । यह उसकी एक प्रकार की कृपणता ही है । किंतु हमारे उदारचित्त दिवाकरजी भव्यजीवों को आलोकित करने के लिये अपनी दिव्य वाणी रूप विशाल प्रकाश राशि छोड़ कर अमरलोक को गए हैं ।

श्री दिवाकर के जीवन के विषय मे कुछ विशेष लिखना अधिक महत्त्व नही रखता है । दिवाकरजी अपनी गुणावलियो से स्वय सुविख्यात थे । आज भी आपके जयनादों से जहा तहां पृथ्वी और आकाशमडल गूंज उठता है, वास्तव में ऐसी विभूतियो का पवित्र जीवन ही इस भूमण्डल को पुनीत बनाता है । ऐसे महा-पुरुषो की पवित्र जोवनियों से अनेक पामर प्राणी प्रकाश लेकर अपने अंधकारमय जीवन को प्रकाशित करते हैं ।

ससार को ऐसी महान विभूतियों की परमावश्यकता है । आपके प्रवचन रूप जो दिवाकर दिव्य ज्योतियां प्रकाशित हो रही हैं, यह मानव ससार के लिये अति उपयोगी हैं । आपके प्रवचन विद्वान् और साधारण तथा अशिक्षित सभी के लिये लाभ-दायक हैं । आपकी सहज वाणी इतनी मधुर, प्रिय, हृदयस्पर्शी है कि जिसको पढ़कर एक साधारण से साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति भी प्रभावित हो उठता है । आपके प्रवचन की नन्ही २ रोचक शिक्षाप्रद कहानियां इतनी सुन्दर और प्रिय हैं जिनको बांचते २ मन अघाता नही है ।

बस इतना कह कर अंत मे मैं हार्दिक भावना प्रकट करता हूँ कि आपकी दिवाकर दिव्य ज्योतियाँ अधिक से अधिक संख्या में इस महाकायिक विश्व मे प्रकाशित हों जिससे अज्ञान अंधकार मिट कर सद्ज्ञान रूप प्रकाश से संसार आलोकित हो।

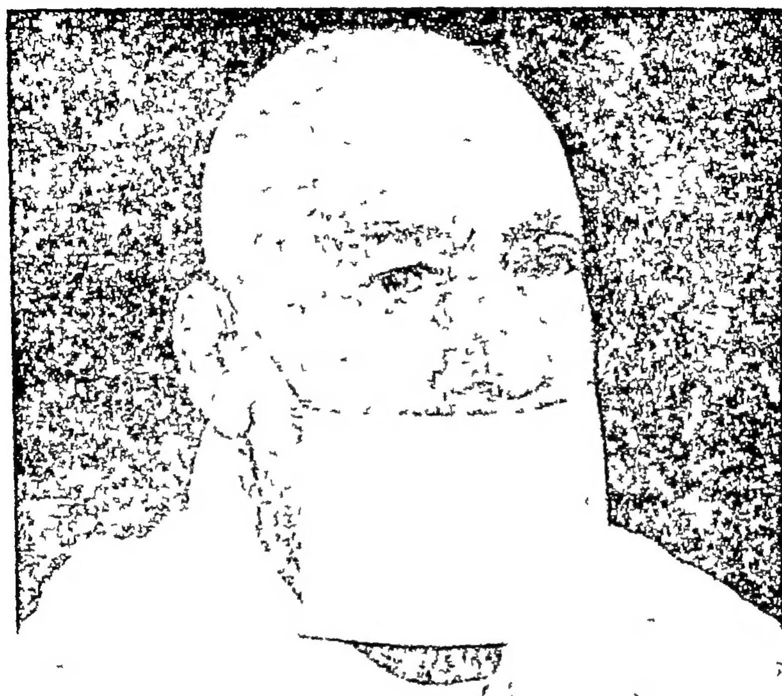
ॐ शांति ! शाति !! शांति !!!

सादड़ी (मारवाड़)

—मुनि प्रेमेन्दु

:: विषयानुक्रमणिका ::

जगत्वल्लभ जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित



मुनि श्री चौथमलजी महाराज

जन्म कार्तिक शुक्ला १३ स० १९३४ रविवार

दीक्षा फाल्गुन शुक्ला ५ सं० १९५२ रविवार

स्वर्गवास मिगसर शुक्ला ९ सं० २००७ रविवार



पाप-मूल अभिमान

स्तुति-

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रयद्युतिमता द्युतिमाक्षिपन्तो ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! आपके गुण कहा तक गाये जाएं ?

हे विभो ! देदीप्यमान, सघन और बहुसंख्यक सूर्यों के समान, आपके शोभायमान भामण्डल की अतिशय प्रभा, तीन लोक के समस्त प्रकाशमान पदार्थों की द्युति का तिरस्कार

करती हुई, चन्द्रमा की चादनी से सौम्य प्रती होने वाली रात्रि को भी जीत लेती है।

यह भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति है। भगवान् ऋषभ देव इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्त मे हुए हैं। उनसे पहले यहा के मनुष्य अन्न या दूध का उपयोग करना नही जानते थे। वे जगल में परिपक्व फलो का उपयोग करते थे, जिससे उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ रहता था। उस समय मनुष्यो के समाज की स्थापना नही ई थी, अत-एव रिश्तेदारी और राजनीति का व्यवहार नही था। परन्तु आवश्यकतानुसार भगवान् ने प्रजा के हित के लिए समाज-नीति का उपदेश दिया। उस समय भारतीय जन आर्य कह-लाते थे और इस भूमि का नाम आर्यभूमि था।

भगवान् ऋषभदेव की आयु ८४ लाख पूर्व की थी। बीस लाख पूर्व तक तो वे कुमार पदवी मे रहे। त्रेसठ लाख पूर्व तक उन्होने राज्य किया और प्रजा के लौकिक जीवन को सुव्यवस्थित करके नये सांचे मे डाला। जब एक लाख पूर्व शेष रह गये तब भगवान् ने आत्मकल्याण के साथ प्रजा का धार्मिक जीवन की शिक्षा दी।

भगवान् ऋषभदेव के बड़े पुत्र का नाम भरत था। उन्होने समग्र देश को सर्वप्रथम एकता के सूत्र मे ग्रथित किया था। वे पहले चक्रवर्त्ती राजा थे। इसी कारण इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड गया। जब इस देश मे मुसलमानो का आगमन हुआ तो 'भारतवर्ष' 'हिन्दुस्तान' कहलाने लगा और यहा के निवासी 'हिन्दु' कहलाए। उनके 'लुकात' (कोष) में 'हिन्दु' शब्द का अनुवाद 'गुलाम' किया गया है। परन्तु

जब बडे-बड़े लोग भी आर्यप्रजा को हिन्दु कहने लगे, तब अभ्यस्त हो जाने का कारण भारतवासी आर्य 'हिन्दु' कहलाने में कोई आपत्ति नही करने लगे और उन्होंने अपने आपको हिन्दू' मान लिया।

कई लोगो का खयाल है कि 'सिन्धु' शब्द से 'हिन्दू' शब्द का निकास हुआ है।

शास्त्रो मे दो प्रकार के देशो का वर्ण है-आर्य देश और अनार्य (मलेच्छ) देश। तीर्थंकर अवतार आदि कहलाने वाले महापुरुषो का जन्म आर्य देशो में हुआ। बुद्ध भी भारत की ही विभूति थे। यद्यपि बाद में बौद्ध धर्म चीन, जापान, जावा, सुमात्रा आदि में फैला, फिर भी वहां के निवासियों ने, यहा तक की बौद्ध भिक्षुओं ने भी मांस खाना नही छोडा!

लोग अपने आपको महावीर, बुद्ध, ईसा और मुहम्मद का अनुयायी कहते हैं, परन्तु उनके आदेशो एवं शिक्षाओ को ताक मे रखकर जीवन व्यवहार करते हैं! कौन उनके फरमानो के अनुसार जीवन यापन करने को तैयार होता है?

ईसा ने कहा है:-

Thou shall not kill

अर्थात्-किसी की हिंसा मत करो। पर क्या ईसा के कथित भक्त इस उपदेश को मानते हैं? मानते होते तो युद्ध का यह भयानक तांडव नृत्य क्यो होता? लाखो-करोड़ो मनुष्य युद्ध की भीषण आग मे क्यो झौक दिये जाते?

जैसे आग से आग शान्त नही होती, उसी प्रकार

हिंसा से हिंसा शांत नही होती। हिंसा का दमन करने के लिए भगवती अहिंसा की आवश्यकता है। भगवती अहिंसा का अपूर्व उपदेश देने वाले भगवान ऋषभदेव और भगवान महावीर को वार-वार नमस्कार है !

हिंसा आदि अठारह पापो से आत्मा मलीन होती है। वह मलीन आत्मा पानी से शुद्ध नही होती। पानी शरीर को छू सकता है और शरीर ही उससे धुल सकता है। मगर शरीर और आत्मा एक ही वस्तु नही है। आत्मा जुदा है, शरीर जुदा है। मगर शरीर की सफाई को लोग आत्मा की पवित्रता समझ बैठते है। गंगा,यमुना आदि नदियो मे नहाकर समझते है-हमारी आत्मा पवित्र हो गई ! भाइयों ! थोड़ा विचार करो कि पानी से आत्मा का पाप रूपो मैल किस प्रकार छूट सकता है। आत्मा कैसे पवित्र हो सकती है ?

गीता मे कहा गया है:—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

आत्मा को शस्त्र काट नही सकते,अग्नि जला नही सकती, पानी गीला नही कर सकता और हवा सुखा नहीं सकती। आत्मा अभेद्य, अच्छेद्य, अदाह्य अकाट्य है, अरूपी है।

प्यारा है यह प्राण समान,
हमारा आतम तत्त्व महान् ।
शस्त्र से छेदे से नही छिदता,

काटे पत्थर से नही कटता ।
शोषण पवन करे नहीं आन,
हमारा आतम तत्त्व महान् ।।

आत्मा की यह महिमा है कि शस्त्र से वह छिद नही सकता, पत्थर से वह कट नही सकता और हवा से वह सूख नही सकता ।

गलाये पानी में नही गलता;
जलाये अग्नि में नहीं जलता ।
इन्द्रिय करे नही पहचान,
हमारा आतम तत्त्व महान् ।।

यह आत्मा पानी में गलाये गल नही सकता और आग मे झौंक देने पर भी जल नहीं सकता । इन्द्रिया इस आत्मा को जान नही सकती । क्योकि वह इन्द्रियागोचर है–अरूपी है, अमूर्तिक है । लोग कहते हैं–'अरे बाप रे, मर जाएंगे ।' परन्तु इस प्रकार की चिन्ता ही अज्ञान की सूचक है । वास्तव मे आत्मा मरती नही है । क्योकि—

बालक यौवन और वृद्धपन,
तन का होता है परिवर्तन ।
तीनों काल ध्रौव्य है मान,
हमारा आतम तत्व महान् ।।

यह बाल्यावस्था, जवानी और बुढ़ापा–सब शरीर की

अवस्थाएं हैं। इनका आत्मा पर कुछ भी असर नही पड़ता। आत्मा तो इन तीनो अवस्थाओ मे एक समान ध्रुव है।

प्रश्न किया जा सकता है कि यदि आत्मा तीनों अवस्थाओं मे समान शक्ति से सम्पन्न है तो जितना भार एक युवक उठा सकता है, उतना वृद्ध क्यों नही उठा सकता? ऐसी ही शका राजा प्रदेशी ने, जो नास्तिक था, केशी स्वामी के समक्ष की थी।

केशी श्रमण ने इसका समाधान किया था। जिस प्रकार नवीन और मजबूत रस्सी मे बधे हुए भारी वजन को भी नवयुवक उठा सकता है, परन्तु जीर्ण-शीर्ण रस्सी में बधे हुए भारी वजन को वह कैसे उठा सकता है? इसी प्रकार शरीर दृढ़ हो तो आत्मा वजन उठा सकती है, किन्तु जर्जरित शरीर से उतना बोझ नही उठाया जा सकता। इसी प्रकार बालक के शरीर के सबध मे भी समझना चाहिए। उसका शरीर अभी तक दृढ नही बना है।

है नही लीला पीला काला,
है नही खुशबू बदबू वाला।
जिसमे स्वाद स्पर्श नहीं जान,
हमारा आतम तत्व महान्॥

इस आत्मा मे नीला, पीला, काला आदि कोई भी वर्ण नही है। वर्ण न होने के कारण वह आंखों से दिखलाई नहीं देता। इसमे किसी प्रकार की गंध नहीं है, इस कारण घ्राणेन्द्रिय के द्वारा भी इसका ग्रहण नही हो सकता। आत्मा मे

कोई रस-स्वाद होता तो रसना इन्द्रिय से जाना जा सकता, परन्तु उसमें किसी भी प्रकार का रस भी नही है। इसी प्रकार स्पर्श न होने के कारण उसे स्पर्शेन्द्रिय से भी ग्रहण नही किया जा सकता।

आगम से नहीं जाना जावे,
'नेति नेति' वेद सुनावे।
'चौथमल' धरे इसी का ध्यान,
हमारा आतम तत्व महान्॥

भाइयो! आत्मा का ज्ञान शास्त्रो से भी नही हो सकता। शास्त्रों मे आत्मा का स्वरूप बतलाया गया है, उसके लक्षण बतलाये हैं, मगर यह सब तो शब्दस्पर्शी वर्णन है। आत्मा की अनुभूति-साक्षात्कार तो आगम नही करा सकते। यही कारण है कि वेद 'नेति-नेति' कह कर आत्मा का स्वरूप प्रदर्शित करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करता है। अनुमान प्रमाण से आत्मा को जानने का प्रयास करे तो उससे भी उसकी सत्ता आदि का अस्पष्ट बोध ही होता है।

भाइयो! संसार में तीन तत्त्व हैं–(१) ज्ञाता (२) ज्ञान और (३) ज्ञेय। सबको जानने वाली आत्मा को ज्ञाता कहते हैं। ज्ञाता जिसके द्वारा स्व-पर को जानता है, वह ज्ञान कहलाता है। और जड़-चेतन रूप जीव, अजीव आदि पदार्थ ज्ञेय कहलाते है।

संसार मे नाना प्रकार के मत मतांतर है। किसी ने ज्ञाता-आत्मा की सत्ता को न समझ कर आत्मा का निषेध कर दिया है तो किसी ने उनसे चार कदम आगे बढ़ाकर ज्ञान, ज्ञेय

और ज्ञाता, इन तीनो तत्त्वो को जुदा कर शून्यवाद का ही पोषण किया है ! वास्तव मे यह तीनों तत्व शाश्वत हैं. ध्रुव हैं।

पांच प्रकार के ज्ञानो मे केवलज्ञान निर्मल और परिपूर्ण है, शेष चार ज्ञान अधूरे हैं और वस्तु को अशत: ग्रहण करने की ही उनमे शक्ति है।

जैसे धु आ देख कर आग का अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार उपयोग मे आत्मा का अनुमान होता है। धु आ, अग्नि का कार्य है और इसलिए वह अग्नि के विना उत्पन्न नही हो सकता। इसी तरह उपयोग या चेतना आत्मा का कार्य है। आत्मा के अभाव मे उपयोग नही हो सकता। जिन लोगो को आत्मा का साक्षात्कार हो चुका है, ऐसे योगी जनो को तो अनुमान की आवश्यकता नही होती, परन्तु साधारण जन-समूह भी अनुमान से आत्मा के अस्तित्व को समझ सकता है।

उपयोग प्रत्येक मे मौजूद है, यह तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही अनुभव करता रहता है। आपमे उपयोग न होता तो आप व्याख्यान सुनने न आये होते। मुर्दे में क्या ताकत है कि वह एक डग मात्र चल सके ! जब आत्मा शरीर मे से निकल जाती है तो वताओ, किस चीज की आवश्यकता नही होती है ?

"वजाजखाने की पगडी की और टाल की लकडियो की ?"

भाइयो ! विना आत्मा के शरीर को तो घर से वाहर निकालने की ही जल्दी की जाती है।

और पाप-पुण्य अगर आत्मा को नही लगते तो किसको लगते हैं ? क्या शरीर को लगते हैं ?

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।

अर्थात्-अपने सुख-दुःख का कर्त्ता और हर्त्ता आत्मा ही है ।

इस कथन के अनुसार हिंसादिक पापों को आत्मा ही करता है और उनका फल भी आत्मा ही भोगता है । सभी पाप आत्मा को डुबाने वाले हैं । अठारह पापों में छठे पाप का नाम 'मान' है ।

मान कहो, अभिमान कहो, घमण्ड कहो या मद कहो, इससे आत्मा का पतन होता है । फिर भी मनुष्य को अपने यौवन का घमड होता है धन का मान होता है, अधिकार का अभिमान होता है, और रूप तथा बल आदि का गुमान होता है । ऋषि लालचदजी-महाराज ने कहा है:—

ऐ मनुष्य ! क्यो घमण्ड करता है ? तू धन, यौवन और राज्य के मद मे छक रहा है । छल कपट एवं मायाचार करके छह-काय के जीवो के प्राण ले रहा है । बता, क्या तुझे परमाधामो असुरो द्वारा नरक मे पड़ने वाली मुद्गलो की मार का डर नही है ?

तुलसीदासजी ने कहा है—

दया धर्म को मूल है, पाप-मूल अभिमान ;
तुलसी दया न छाड़िये, जब लग घट में प्राण ॥

धर्म का मूल दया और पाप का मूल अभिमान है ।

बिचली उंगली कहने लगी—मैं सब से बड़ी हूं । पर

आप देखते हैं कि क्या लोग बीच की उंगली को कभी अंगूठी पहनाते हैं ? नही। अंगूठी तो सबसे छोटी को मिलती है। तो, जो अभिमानी हैं, वे कोरे ही रहते हैं ?

मान लीजिए, कोई बड़ा आदमी मोटर या बग्घी मे बैठकर बाजार मे होकर निकले और कोई अपनी दुकान से उठकर उसे 'जयजिनेन्द्र' करे, परन्तु वह घमण्डी बड़ा आदमी उसकी ओर ध्यान ही न देवे। तो बताओ वापिस लौट कर आने पर वह फिर जयजिनेन्द्र करेगा ? नही। अगर कोई उसे सावचेत भी करेगा कि देखो फला बड़े आदमी जा रहे हैं तो वह यही कहेगा—जाते हैं तो जाने दो। हमें क्या लेना देना है ?

'अरे भाई ! बड़े आदमी हैं, जयजिनेन्द्र तो कर लो !'

'बड़े आदमी होगे तो अपने घर के होगें। जब हम जयजिनेन्द्र करते हैं तो वे भुट्ठे सरीखे अकड़ते हैं। हमें उनसे क्या मतलब है ?'

भाइयों बताओ। अभिमान के कारण उस बड़े आदमी का मान बढ़ा या घटा ?

'घटा !'

तो फिर यही नतीजा निकला कि अभिमान अच्छी चीज नही है। अभिमान करने से बड़प्पन चला जाता है ! अभिमानी अपने गौरव को क्षति पहुचाता है। दूसरे लोग उसे हीन समझते हैं। कोई उसका आदर नही करता।

सोने ने घमण्ड किया यही कारण है कि वह चिरमी के साथ तोला गया जब सोना और चिरमी एक कांटे पर तुलने लगे

तो सोने को घमण्ड आ गया । उससे रहा नही गया । उसने सुनार से कहा—

सोना कहे सुनार से, सुनो हमारी बात ।
काले मुँह की चीरमी, तुले हमारे साथ ॥

हे सुनार ! यह बडे दुःख की बात है कि तू मुझे किसी बांट से न तोल कर इन काले मुँह वाली चिरमियो के साथ तोल रहा है ! यह उचित नही है । यह तेरी नासमझी है । क्या तू मेरी शक्ति को और कीमत को नही जानता ?

हर एक प्रश्न का उत्तर होता है । सोने का अभिमान-भरा कथन सुन कर चिरमी चुप नही रह सकी । बोली—

हरी हमारी बेलड़ी, ऊँच हमारी जात ।
काला मुँह तब से हुआ, तुली नीच के साथ ॥

हे स्वर्ण ! हमारी बेल हरी भरी है और हमारी जाति ऊँची है । परन्तु मेरा मुँह तभी से काला हुआ है, जब से तुझ जैसे नीच के साथ तुलना पड़ा ।

सोना घमण्डी था ही । उसे चिरमी की बात चुभ गई । क्रोध और घमण्ड मे आकर फिर बोला—

सोना कहे सुन चिरमटी, यही हमारी बात ।
जो तुझ में गुण होय तो, जलो हमारे साथ ॥

सोना कहता है—अरी चिरमिटी ! घमण्ड क्यों करती

है ? अगर तुझमें कोई गुण है तो आ, मेरे साथ आ । आग में जलकर मेरा मुकाबिला कर !

यह सुन चिरमी घबराई । उसने सोचा, बस, अध्याय पूरा हो गया । इस पापी के साथ गये नही कि बस, स्वाहा हुए नही । आखिर चिरमी ने युक्ति सोची और कहा—

चिरमी कहे स्वर्ण सुन, एक ही ध्यान लगाय ।
औगुण होवे सो जले, मेरी जले वलाय ।।

हे सुवर्ण ! सुनो । तुम मलीन हो तुम्हारे भीतर अवगुण भरे हैं । इस कारण तुम्हें जलना पडेगा । मुझे जलने की जरूरत ही क्या है ? मेरे अन्दर कोई अवगुण नही है !

भाइयों ! आखिर सोने को लज्जित होना पड़ा । सच है, अभिमान कभी किसी का टिक नही सकता ।

कहा जाता है-अतिशय रूप के कारण सीताजी का अपहरण हुआ और अतिशय गर्व के कारण रावण का विनाश हुआ । अतएव किसी भी वात को अति एक नही ले जाना चाहिए ।

रावण का अभिमान अति की सीमा को भी लांघ गया था, उसे पता नही था कि —

ऊगे सो ही आथमे, और फूले सो कुम्हलावे रे ।
सदा एक सी ना रहे, ज्ञानी यों फरमावे रे ।।

आखिर रघुकुल-मकल-दिवार रामचन्द्रजी ने अवतरित होकर रावण के अभिमान को चूर्ण किया.. । इसी

प्रकार घमण्डी कंस भी अपनी मौत की प्रतीक्षा कर रहा है। कृष्ण लीलाएं कर रहे हैं।

कृष्ण-कथा–

मान मानी का सदा हमने ढलते देखा,
सख्त लोहे को सदा आग में जलते देखा।

भाइयो! जहा मान है वही अपमान है। ज्ञान लगा कर देखोगे तो पता चलेगा कि जहा अभिमान है, वहाँ ईश्वर नही है।

"दिल में खुदाई तो मालिक से जुदाई।"

कृष्णजी मे अभिमान नही था। वे असाधारण व्यक्तित्व से विभूषित होकर भी साधारण ग्वाल-बालो के साथ इस प्रकार हिल-मिल कर रहते थे, मानो उन्ही मे से अन्यतम हो। यही नही, गोकुल की ग्वालिनो के साथ भी उनका ऐसा ही व्यवहार था। बहुत से ज्ञानहीन लोगों ने कृष्ण और गोपिकाओ को लेकर नाना प्रकार की अशोभनीय कल्पनाएं खडी कर दी हैं। शृंगाररस के अनुचित बहाव मे वे ऐसे बहे है कि बेभान हो गये हैं, और भूल गये है कि वे किसके चरित का वर्णन कर रहे हैं। कइयो ने कृष्णजी के पावन चरित को अपावन बना डाला है! उनकी रास क्रीडा को लेकर बडा ही विद्रुप वर्णन किया है! मगर आपको समझना चाहिए कि कृष्णजी मर्यादा-पुरुष थे। दुराचार और अनाचार का विरोध करना उनके जीवन का लक्ष्य था। अनीति का सहार करना

उनका कार्य था। ऐसी स्थिति में कृष्ण स्वयं ही क्या अनाचारी और अनीतिमान् हो सकते थे? क्या दुराचारी पुरुष को आपने कभी सर्वप्रिय होते देखा है? कृष्णजी गोपिकाओं में सर्व प्रिय थे तो गोपों मे भी सर्वप्रिय थे। गोपियों की तरह गोप भी उन पर अपनी जान निछावर करने के लिए उद्यत रहते थे। यह इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि कृष्णजी का आचरण एकदम आदर्श और पवित्र था।

जैसे कमल जल मे रहता हुआ भी जल से लिप्त नही होता, उसी प्रकार कृष्णजी, गोपिकाओं में रहकर भी और साथ रासक्रीड़ा करते हुए भी कामवासना से विलकुल अलिप्त थे। वे गोपियो को इन्द्र के समान प्रतीत होते थे।

कृष्णजी का वेष भी तो अनोखा था! मोर-मुकुट धारण करते थे और गले मे गुञ्जो की माला पहनते थे।

कृष्णजी कभी पेड़ो पर चढ़ते, कभी गिरिशिखर पर चढ़कर वंशी बजाते और कभी-कभी यमुना मे कूदकर क्रीड़ा करते थे। कभी गोबर की टोकरी का छत्र बनाकर झाड़ू से चँवर करवाते और ग्वालों से अपनी जय-जयकार के नारे लगवाते थे!

इस प्रकार बाल क्रीड़ा करते-करते ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन कृष्ण यमुना की ओर जा पहुँचे। वहां उन्होने देखा गोपिकाएँ नग्न होकर स्नान कर रही है। उन्हें यह बात बहुत बुरी लगी। यह सभ्यता और लोक व्यवहार से विरुद्ध बात देखकर उन्होंने इसे सदा के लिए मिटाने का विचार किया।

आखिर कृष्णजी को एक उपाय सूझ गया उन्होने स्नान करने वाली समस्त गोपियों के वस्त्र समेट लिए। उनकी पोटली सी बनाली और आप पास ही एक कदम के पेड़ पर चढकर बन्शी बजाने लगे। गोपिएँ स्नान करके जब वस्त्रों की तरफ आई तो देखा, वस्त्र गायब हैं! उन्होने श्री कृष्णजी के पास अपने वस्त्र देखकर उनसे लौटा देने का आग्रह किया। इस पर कृष्णजी बोले–क्या यह भी कोई सभ्यता है कि तुम नग्न हो कर स्नान करती हो? अगर आगे से नग्न होकर स्नान न करने की प्रतिज्ञा करो तो वस्त्र तुम्हे मिल सकते हैं।

इस घटना को भी लोग गलत अर्थ में लेकर कृष्णजी को कामी और विलासी बतलाने की चेष्टा करते है। वास्तव मे यह उन लोगो की नासमझी है। कृष्णजी तो पुरुषोत्तम थे। वे समाज की बिगड़ी हुई व्यवस्था को ठीक करने वाले थे। भला वे स्वयं बुरे काम क्यों करने लगे? उनका उद्देश्य सिर्फ गोपियो को शिक्षा देना था और वे उसमे सफल भी हुए।

कृष्णजी के जीवन की एक घटना विशेष रूप से प्रसिद्ध है। कहते हैं -एक बार बडे जोरो की वर्षा हुई। सर्वत्र पानी ही पानी दिखाई देने लगा। पृथ्वी, समुद्र के रूप में परिणत होती हुई प्रतीत होने लगी। गोपगण बुरी तरह घबरा उठे। तब कृष्ण ने कहा— "आओ अपन पर्वत को उठालें" यह कह कर पानी की वर्षा से बचने के लिए उन्होने गोर्वधन पर्वत को उठा लिया। जब नन्द यह समाचार पाकर घबराये हुए आये कृष्णजी हँस रहे थे।

यह घटना अपने शाब्दिक रूप में, कितने अंशों में सही है, इस बात की जाँच-पड़ताल में जाने का अभी समय नही

है। फिर भी पर्वत का उठाना एक रूपक है, यह कहने मे संकोच नही हो सकता। गोवर्धन उठाने का अर्थ किसी गुरुतर उत्तर-दायित्व को अपने सिर पर लेना है। साधारण आदमी किसी वडे काम का उत्तरदायित्व लेने मे हिचकते हैं, परन्तु कृष्णजी इस कोटि के नहीं थे। वडे से वड़े उत्तरदायित्व को ग्रहण कर लेते थे और अपनी विशिष्ट सामर्थ्य के बल पर उसे पूरा भी कर डालते थे। यही इस रूपक का अर्थ जान पड़ता है।

इधर यह सब चल रहा था, उधर कंस अपने ही हाल मे मस्त था।

एक दिन कंस बहिन-घर आया देखी कन्या ताई।
गर्भ सातवाँ क्या मारेगा, यों कह हँसी उड़ाई॥

कंस एक बार अपनी बहिन देवकी के घर आया उसने यशोदा की उस कन्या को देखकर, हँसते हुए कहा—यह कनफटी! क्या मुझे मार सकेगी! फिर भी—

"संशयात्मा विनश्यति।"

कंस हृदय मे तरह-तरह के विचार उत्पन्न होने लगे। कभी वह सोचता है—मुनि झूठे हैं। कभी विचार करने लगता है कोई जानता है कि बात सच्ची ही साबित हो जाय! इस प्रकार संशय मे पडा हुआ, कंस जब लौटकर अपने महल तक आया तो उसने निश्चय कर लिया कि ज्योतिषियों को बुलाकर कल जन्म पत्रिका दिखलाना चाहिए। उससे मेरी आयु का भी निर्णय हो जायगा।

बस, फिर क्या था। उसने देवज्ञों को आमन्त्रित करके

प्रश्न किया—हे विद्वान् ज्योतिषियों ! यह बताइए कि मैं अपनी मौत से मरूंगा या मुझे कोई मारेगा ? मुझे मारने वाला इस संसार में कोई जन्म ले चुका है या अब जन्म लेगा। आप लोग शास्त्र देखकर, सूक्ष्म विचार कर निर्भय होकर सच्ची-सच्ची बात बतलाइए।

हे ज्योतिषियों ! यदि कोई मुझे मारने वाला है तो बतलाइए। उसकी पहचान बतलाइए। उसका नाम और ठाम बतलाइए। मैं स्वयं उसे मार कर निर्भय होना चाहता हूं।

ज्योतिषी बोले:-

हे राजन ! धर ध्यान सुनो—
हम ज्योतिष देख बताते हैं।
किंचित् नही है दोष हमारा,
साफ—साफ जतलाते हैं ॥

राजन् ! ज्योतिष शास्त्र जो बतला रहा है और आप पूछ रहे हैं, तदनुसार ही हम सत्य बात बतलाते हैं। इसमें हमारा कोई अपराध नही है। महाराज ! जो आपके प्रसिद्ध अश्व को और वृषभ को मारेगा, जो सारग धनुष को चढ़ाएगा, वही आपको मारेगा।

कालिय नाग का दमन करे, चाणूर मल्ल पछाड़े ॥
पद्योत्तर और चम्पक हाथी हणे वही तुझ मारे ॥

जो कालिय नाग का दमन करेगा, चाणूर नामक अज्ञेय

मल्ल को कुश्ती में हराएगा, जो पद्मोत्तर राजा और चम्पक की चटनी बनाएगा, वही आपको मारेगा।

यादव वंश उजाले, वृन्दावन में रास रचावे।
गोवर्धन धारे हाथों से, उससे मारा जावे॥

महाराज! जो यादव वंश की विमल कीर्त्ति को और भी उज्ज्वल करेगा, जो वृन्दावन में रास क्रीडा करेगा, जो स्वतन्त्र रूप से अपने हाथों से गोवर्धन पर्वत को धारण करेगा, वही आपको मारने वाला होगा।

ज्योतिषियो की यह भविष्यवाणी सुनकर कंस थर-थर कांपने लगा। कदाचित् मृत्यु की अपेक्षा मृत्यु की सभावना अधिक भयंकर होती है। अपनी मृत्यु की सम्भावना करके अभिमानी कस के हृदय मे पामरता उत्पन्न हो गई। उसे प्रतीत हुआ, मानों मौत सामने नाच रही है। उसने विषण्ण-वदन होकर ज्योतिषियो से कहा-अच्छा और कुछ बतलाइए?

तब ज्योतिषियो ने कहा-अब और क्या बतलाना शेष रहा है? अपराध क्षमा हो महाराज! वह:—

अरियों का कुल घातक होगा, सज्जन का उपकारी।
मानी मान-निकन्दन होगा, सज्जन का सुखकारी॥

राजन्! वह महापुरुष होगा। वह अपने शत्रुओं के कुल का विध्वंस करने वाला और सज्जनों का उपकारक होगा। घमंडियों का सिर नीचा करेगा और ऋषियों एवं महात्माओ को सुखी बनाएगा।

आपको मालूम होना चाहिए कि कृष्णजी महात्माओं की चरण-रज को अपने मुकुट पर धारण करते थे।

आजकल धर्म भावना कम हो गई है और लोग समझते हैं कि सभी साधु रोटियों के लिए ही महात्मा बने फिरते हैं। उनके मन के बाजार मे टका सेर भाजी, टका सेर खाजा बिकता है। सब धान बाईस पसेरी है! परन्तु कूंजड़े को अगर हीरे की परख न हो तो कोई आश्चर्य की बात नही। सच्चे साधुओं को परखने वाले, उनके ब्रह्मचर्य, त्याग और तपश्चरण को समझने वाले बहुत कम हैं।

भाइयो! कृष्णजी मे २० लाख अष्टापदों जितना बल था। उनका शरीर एक सौ आठ सामुद्रिक शास्त्र मे बतलाये हुए प्रशस्त लक्षणों से सम्पन्न था।

हां, तो ज्योतिषी फिर बोले—

गदा कौमुदी को धारे, पंचानन शङ्ख बजावे।
तीन खण्ड में आण अखंडित, अरी देख घबरावे॥

राजाधिराज! वह कौमुदी गदा को धारण करेगा, पचानन (पांचजन्य) शंख को फूंकेगा। भरत क्षेत्र के तीन खण्डो में उसका आदेश अप्रतिहत होगा—एकच्छत्र साम्राज्य का स्वामी होगा। वही आपकी जीवन-लीला समाप्त करेगा।

भाइयों! कृष्णजी तो ठहरे दीपक, यदि उसके पास पतंग आकर जल मरे तो इसमें दीपक का क्या दोष है?

कंस का मान-मर्दन होना निश्चित है। वास्तव में कंस हो अथवा कोई और हो, अगर वह दर्प में चूर हो गया है, गर्व

से उन्मत्त हो गया है और इस कारण न्याय-अन्याय को भुला बैठा है तो उसका दर्प टिक नहीं सकता। उसका गर्व खर्च होना निश्चित है। ऐसा समझकर आप अभिमान के जहरीले पौधे को अन्तःकरण के क्षेत्र मे उगने ही न देंगे तो आपका कल्याण होगा। न केवल परभव में, वरन् इसी भव मे आपको आनन्द की प्राप्ति होगी।

इन्दौर
१-६-४५





कपटाचार

स्तुति—

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात—
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहां तक स्तुति की जाय ? प्रभो ! आपके गुण कहा तक गाये जाएँ ?

प्रभो ! गन्धोदक की बून्दो सहित, शुभ और मन्द-मन्द वायु के साथ गिरने वाली, मन्दार सुन्दर नमेरु, सुपारिजात और सन्तानक आदि कल्पवृक्षो के फूलो की वर्षा आकाश से होती है, जैसे आपके वचनो की पंक्ति ही मानो फैल रही हो !

तात्पर्य यह है कि भगवान् के समवसरण मे कल्पतरुओ के अचित्त पुष्पों की वर्षा होती है। भगवद् भक्त देवगण वर्षा करते है। वह ऐसी जान पड़ती है, जैसे भगवान् के वचन ही फैल रहे हो। यह तीर्थङ्कर भगवान् का छठा प्रातिहार्य है।

भगवान् ऋषभदेव के समवसरण मे काले, पीले, अरुण (लाल,) पीत और श्वेत, इन पाँच वर्ण के पुष्पो की वर्षा होती है।

भगवान् फर्माते है कि जैसे इन पुष्पो के रग अलग अलग हैं, उसी प्रकार अलग-अलग भावना वाले जीव इस ससार मे विद्यमान हैं।

१—कुछ लोग मायावी भावना वाले, हत्यारे, दुष्ट और निर्दय होते हैं। वे काले फूल के समान हैं।

२—कुछ लोग मायावी और धूर्त्त होते है। वे नीलवर्ण के पुष्प के सदृश है।

३—कुछ लोग सरल और सादगी-पसन्द होते हैं। उन्हे अरुणवर्ण के समान समझना चाहिए।

४—कुछ जीव धर्म की भावना वाले, सदाचारी और भद्र होते हैं। वे पीत वर्ण के पुष्प के समान माने गये है।

५—जिनकी आत्मा अत्यन्त पवित्र है, जिनके रोम-रोम से करुणा झरती है, जो सयम और सदाचार की मूर्ति हैं, जिनका जीवन सेवा व्रत से परिपूर्ण है, वह श्वेत वर्ण के पुष्प जैसे हैं।

भाइयो ! इन पाच प्रकार की परिणति वाले पुरुषों में से

आपको किस श्रेणी मे रहना है-अपनी आत्मा को किस श्रेणी मे रखना है, यह विचार करो - अगर आप पूर्ण सुख के अभिलाषी है तो आपको अपनी आत्मा श्वेत वर्ण के फूलो के समान बनानी होगी, जिसमे लेश मात्र भी मलीनता विद्यमान न हो।

यों तो आत्मा स्वभाव से ही सूर्य के सदृश प्रकाशमान, चन्द्रमा के सदृश शांत और श्वेत पुष्प के समान स्वच्छ है, किन्तु पापो के कारण उस पर मलीनता छा जाती है। जैसा कि पहले भी कह चुका हू, पाप के अठारह भेद हैं।

संसार मे जितने भी पथ और धर्म हैं, सब आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए ही हैं। आत्मा को उज्ज्वल बनाये बिना कल्याण नही हो सकता। आप चाहे स्थानक मे जाइए, चाहे मन्दिर में जाइए। गगा मे स्नान कीजिए या यमुना मे समाधि लगाइए। मस्जिद में जाकर नमाज पढ़िये या गिरजाघर में जाकर प्रार्थना कीजिए, जब तक आत्मा पवित्र नही होगी, आपका निस्तार नही। पापो का आचरण करने से आत्मा मे मलीनता आती है। और पापो का परित्याग करने से आत्मा निर्मल होती है। यह एक ऐसा तथ्य है, जिसे सभी धर्म समान रूप से स्वीकार करते हैं।

हिंसा करने से, असत्य भाषण करने से और चोरी करने से आत्मा में मलीनता उत्पन्न होती है। व्यभिचारी भी नीच कर्म मे व्यस्त रहता है। कहां तक कहे, कामान्ध लोग गायो और भैंसो तक से व्यभिचार करते हैं। पुलिस ने ऐसे बदमाशो को पकड़ कर सजा दिलवाई है। अरे 'अधिक' क्या कहा जाय, कई कामान्ध नीच पुरुष तो यहां तक पतित हुए सुने जाते हैं कि मृतक स्त्री को कब्र में से निकाल कर उसके

साथ अपना पतन करते हैं ! इससे अधिक नीचता की कल्पना करना भी कठिन है ! भाइयों ! यह चौथा पाप, और इसमे भी अप्राकृतिक मैथुन जिन्दगी को बर्बाद कर देता है, जीवन को घोर अभिशाप बना डालता है।

ममता भी अनर्थों की जननी है। ममता से प्रेरित होकर लोग कौनसा पाप नही करते ? पैसे के लिए दूसरों का गला काटा जाता है, विश्वासघात किया जाता है, असत्य भाषण किया जाता है चोरी की जाती है ! पैसा प्राप्त हो जाता है तो अभिमान का नशा चढ जाता है।

भाइयो ! आपको कल मान-पाप के सम्बन्ध में कहा था। आज माया के विषय मे कुछ कहना चाहता हूं। माया अठारह पापों में आठवां पाप है। माया के अनेक नाम हैं। कपट, जाल, घोखा, फ़रेब, निकृति या चतुराई आदि अनेक नामो से यह पाप प्रचलित हैं। इससे आत्मा मलीन हो जाती है और गिर जाती है। कहा है—

पूयणट्ठा जसोकामी माण–सम्माणकामए ।
बहुं पसवई पावं, मायासल्ल च कुव्वइ ॥

अपनी पूजा के लिए माया का सेवन किया जाता है। लोग चाहते हैं कि दूसरे मेरी प्रतिष्ठा करे और चाहे सो प्रेरित होकर वे कपट करते हैं। इसी प्रकार यश के अभिलाषी मान-सम्मान की कामना करने वाले लोग मायाचार का सेवन करते हैं और अनेक पापो का आचरण करते हैं। लोग "महाराज महाराज" कहे, इसके लिए राम-नाम की माला जपते हैं। मगर 'ऊची दुकान, 'फीका पकवान' वाली उक्ति चरितार्थ होती है।

जिन्होने गृहस्थ का वेष त्याग कर साधु का वेष धारण कर लिया है, उनमे भी कई ऐसे मिलेगे जो कपटाचार का सेवन करते हैं। लोगों को दिखलाने के लिए बगुले की तरह ध्यान में मग्न हो जाते हैं और फिर बाद मे वही गुल्ली डण्डा ! इस प्रकार मान—सम्मान के लिए कपट करने वालो की दुनिया मे कमी नहीं हैं। कहा है—

संत दास बिन संत कहावे, यो कंई कर्म कमावे।
कर-कर कपट निपट चतुराई, आसन रोज जमावे।
विरथा ही जनम गँवावे ॥

अरे भाई ! कपटी साधु क्यों बनता है ? लोग कहते है कि इससे तो अच्छा यही होता कि तू खेत खोदकर पेट भरता या नौकरी करके जीवन बिताता ! इससे कपट के घोर पाप से तो बच जाता।

गृहस्थी केरा टूकड़ा, लम्बा—लम्बा दात।
धर्म करे सो ऊबरे, नही तो काढे आंत ॥

गृहस्थ के टुकडे उसी को हजम हो सकते है जो उन्हे खाकर धर्म का आचरण करता है जो लोग गृहस्थ के घर से सीधी भिक्षा ले आते हैं और खा— पीकर मौज उड़ाते हैं प्रमोद मे पडे रहते हैं या अनाचार करते हैं, उन्हे भिक्षा हजम होने की नही ! भविष्य मे ऐसे लोगो की बड़ी दुर्दशा होने वाली है !

और भी मायाचार किस-किस प्रकार से होता है। सुनिये:—

तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे।
आयारभावतेणेय, कुव्वइ देव-किव्विसं ॥

कुछ लोग तपस्या के चोर होते है। कोई साधु दुवला हो और उसे देखकर कोई कहे--अमुक मुनि तपस्वी सुने जाते है। शायद आप वही हैं। तो कपटी मुनि कहता है--'साधुओ का काम ही तपस्या करना है।,

किसी रूपवान और तेजस्वी साधु को देखकर कोई कहे--'अमुक राजकुमार वे दीक्षा ली है। क्या आप वही हैं?' तव कपटी साधु कहता है-- 'हैं हैं हैं ?;

इसी प्रकार उत्कृप्ट आचार-विचार के संबंध में कपट किया जाता है। कपट करने के अनेक तरीके हैं। शास्त्र कहता है कि इस प्रकार कपट करने वाला साधु मर कर किल्विषी देवो की योनि में उत्पन्न होता है। किल्विषी देव, देवताओं में चाण्डाल के समान गर्हित समझे जाते हैं! यह कपट का फल है।

कपटी के लक्षण वतलाते हुए कहा है--

मुखं पद्मदलाकारं, वाचा चन्दनशीतलम्।
हृदयं कर्त्तरीतुल्यं, त्रिविधं धूर्त्तलक्षणम् ॥

अर्थात---कपटी के तीन लक्षण हैं। उसका मुँह कमल की तरह खिला रहता है--हँसी से परिपूर्ण रहता है। उसके वचन चन्दन की भाँति शीतल होते हैं, परन्तु उसका हृदय कैंची के समान होता है। यह धूर्त्त की पहचान है।

मोर मीठा बोल-बोलकर साँप को निगल जाता है। वह धूर्त्त की पहचान है।

एक परदेशी पानी पीने के लिए पनघट पर रुका हुआ था। वहाँ एक वणिक पानी लेने आया। परदेशी ने उससे पूछा---यहाँ किस वणिक की दुकान अच्छी है? इस पर कपटी बनिये ने कहा---दुकानें तो यहाँ बहुत है, पर मेरी दुकान तो आपको ही है।

अपने ही मुंह से जो कोई, अपनी ही तारीफ करे।
अच्छे नर उसमें बताये उसमें हुनर कुछ भी नही॥

अपने मुंह अपनी प्रशंसा करना एक प्रकार की मूर्खता है। वह प्रशंसा समझदारो के सामने अप्रशसा रूप हो जाती है। अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनने वाला घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

'भोजनप्रबन्ध' नामक काव्य में वर्णन आता है—

एक दिन राजा भोज अपने अन्तःपुर मे पहुचा। उस समय रानी अपनी सखी से घुल घुल कर बातें कर रही थी। राजा भोज अचानक जाकर रानी के पास खड़े हो गए। रानी चौंक गई। सखी सहम गई।

'आओ, मूर्ख' रानी ने व्यग से कहा।

राजा भोज को यह सुनकर मार्मिक आघात लगा। वह तिलमिला उठा। मगर उसने अधिक बोलना उचित नही समझा क्योकि वह बड़ा बुद्धिमान था। वह चुपचाप रानी के महल से निकल कर दरबार मे चला गया।

राजा के सिर पर एक भूत सवार हो गया था। दरबार आरम्भ हुआ। कहते हैं, एक—एक करके राज सभा में ११०० पण्डित राजा को आशीर्वाद देने आये। उस दिन राजा ने सबका 'आओ मूर्ख' कह कर स्वागत किया। सभी पण्डित आज नया अभिवादन सुनकर विस्मय मे पड़ गये। सब पडित एक दूसरे के चेहरे की ओर ताकने लगे। मगर किसी को साहस न हुआ कि वह राजा के विरुद्ध कुछ कह सके।

अन्त मे कालिदास, जो हाजिर—जवाबी के लिए मशहूर थे और आशुकवि थे और जिन्होने गडरिया से विद्वान बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था, राज सभा मे आये। उनका स्वागत भी 'आओ मूर्ख' शब्दो से ही किया गया। यह सुनकर महाकवि ने तत्काल ही उत्तर दिया—

खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे,
गतं न शोचामि कृतं न मन्ये
द्वाभ्याँ तृतीयो न भवामि राजन् !
किं कारणं भोज! भवामि मूर्खः ॥

अर्थात मैं खाता खाना चलता नही हूँ, हँसता—हँसता बोलता नही हूँ, गयी बीती बात के लिए शोक नही करता, किये उपकार की डीग नही मारता, दो मे तीसरा नही होता, फिर क्या कारण है, भोज महाराज ! कि मैं मूर्ख हूं ?

तात्पर्य यह है कि जो बाजार में या रास्ते मे खाता खाता चलता है, वह मूर्ख है। मूर्ख लोग बाजार मे खड़े खड़े दौने चाटा करते है वे शायद सोचते हैं कि घर पर औरत और

वाल-वच्चे भी हिस्सा बँटा लेगे ! जब घर आकर वे हाथ-मुँह धोते है तो मारवाणी समझ जाती है कि ढोलाजी कही न कही मुँह मीठा करके आये हैं ! फिर कभी मौका लगने पर वह भी, ढोलाजी को प्रतीक्षा किये विना ही, खौमचे वाले की चाट चट कर जाती है। यह घर की बर्बादी का रास्ता !

इसके बाद बात करते करते हँसना भी मूर्खता का लक्षण है। साथ ही बीती हुई बातो को सोचने वाला भी मूर्ख कहलाता है। किसी का कोई प्रिय जन मर गया अथवा सम्पति नष्ट हो गई। अब बैठे वठे उसके लिये रोया करो, तो भी क्या परिणाम निकलता है? या धन चला गया, मकान जल गया तो बैठ कर डीगे हाँकना भी मूर्खता ही है।

आगे कवि कहता है--जहा दो आदमी बाते कर रहे हो, वहा मै भूल कर भी नही जाता। ऐसी जगह जाना भी मूर्खता है। मुझ मे यह मूर्खता का लक्षण भी नही है।

अन्तिम बात सुनकर भोज ने महाकवि से कहा--'आओ' पण्डितजी, सब-पण्डित चक्कर मे पड़ गये।

तात्पर्य यह है कि जो अपने बड़प्पन की डीग मारता है, वह मूर्ख है। इस प्रकार बड़प्पन की डीग हाँकने वाले को कपट का व्यवहार करना पड़ता है।

जीना तुझे है चार दिन, तू कपट करना छोड़ दे।
पाक रख दिल को सदा, तू कपट करना छोड़ दे॥

भाईयों ! कितने दिन तुम्हे इस ससार मे जीना है?

थोडी सी जिन्दगी के लिए क्यों छल कपट करते हो ? क्यो पाप से अपनी आत्मा को मलीन बनाते हो ?

तुलसीदासजी कहते हैः---

जाके दभ कपट नही माया ।
ताके हृदय बसहिं रघुराया ।।

जिसके अन्तःकरण मे कोध नही है, कपट नही है, मायाचार नही है, उसी के हृदय मे रघुनाथजी का वास हो सकता है ।

पर आज इस कलियुग मे बगुला भगतो की कमी नहीं है । वे कौवे के काम करके हसो की श्रेणी में आना चाहते हैं ! कपटी मनुष्य का मुद्रा लेख मानों यही होता हैः---

आ म्हारी हाट में, हूं थारी टाट में ।

किन्तु समझदार भाई !

चलते उठते बैठते और बोलते हँसते दगा ।
तोलने और नापने में, दगा करना छोड़ दे ।।

लोग बात-बात मे कपट करते हैं । चलने मे भी कपट उठने बैठने मे भी कपट और हँसने बोलने में भी कपट । कपटी का प्रत्येक व्यवहार कपट से परिपूर्ण होता है । नापने और तोलने का कपट तो जगत् मे प्रसिद्ध ही है । यह सब कपट त्यागने योग्य है ।

माता कही भगिनी कही, परनार को छलता फिरे ।
क्यों जाल रच जाली बने; तू दगा करना छोड दे ।।

दगाखोर व्यभिचारी मनुष्य परस्त्रियो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए पहले उन्हे धर्म की बहिन या माता बनाता है और फिर उनका धर्म नष्ट करता है। कहा तक कहे. कपटी आदमी की आत्मा इतनी पतित हो जाती है कि दुनिया मे कोई भी पाप नही जो वह न कर सके ! विश्वास न हो तो जाओ, पुलिस के किसी दफ्तर मे जाकर देखो। ऐसे पापियो, दुष्टो और व्यभि-चारियो के काले कारनामों की रिपोर्टें तुम्हे वहां देखने को मिल जायगी ।

लोग कहते है----महाराज, हमे पुलिस तंग करती है ! परन्तु वह तग क्या करती है, वह तो तुम्हारे भीतर सडने वाले पापो का भडाफोड़ करती है !

मर्द की औरत बने, औरत का नापुरूष हो।
लख चौरासी में भ्रमे तू दगा करना छोड दे ॥

दगाबाज़ आदमी अपने को बहुत चतुर और होशियार मानता है। मगर याद रक्खो इस चतुराई के फलस्वरूप अगले जन्म में औरत के रूप मे उत्पन्न होना पड़ेगा। जो औरत दगा-बाजी करेगी उसे नपुंसक बनना पडेगा और नपुंसक को बकरा, भेड़ आदि बनना पड़ेगा। इसके बाद,एकेन्द्रिय आदि की योनियो मे उत्पन्न होकर ८४ लाख जीव योनियो मे परि-भ्रमण करना पडेगा।

दिल अपने सोचो जरा तो सनम ।
ये दगा तो किसी का सगा ही नही ॥

यहाँ पर भी न उसको चैन पड़े,
औ वहिश्त मे उसको जगह ही नही ।।

लोग कहते है–महाराज, आप कहते रहो, हमे जब जो करना होगा सो करेगे । तब हमारा कहना है--भाई हम तो तुम्हे उठाना चाहते हैं ! अगर तुमने न उठने का ही निश्चय कर लिया हो तुम्हारी मर्जी ! लगाए जाओ फिर चौरासी के चक्कर !

स्मरण रखना दगा किसी को आनद दायक नही हो सकता । दगाखोर के चित मे कभी शान्ति नही रहती । वह अपने विचारो के तंतुओ से न जाने कितने ताने-बाने पूरता रहता है और अपना भेद खुल जाने के भय से डरता रहता है । न उसे इस जीवन मे चैन मिलती है न परलोक मे ही । स्वर्ग का भव्य द्वार उसके लिए बद है !

दगा से उस पूतना ने, कृष्ण को लिया गोद में ।
नतीजा उसको मिला, तू दगा करना छोड़ दे ।

दगा करने के कारण पूतना को कितना फल भुगतना पड़ा, यह बात आप सुन चुके हैं । मत समझो कि अकेली पूतना के लिए ही दगा बुरा था । वह तो तुम्हारे लिए भी उतना ही कष्ट कारक होगा ।

कौरवो ने पाण्डवो से दगा कर जूवा रमा ।
हार कौरव की हुई तू दगा करना छोड़दे ।।

पाण्डवो को जाल मे डाल कर कपटी कौरवो ने जुआ

खेलने का आयोजन किया। सरल हृदय युधिष्ठिर दुर्योधन के चक्कर में फस गये। इसके पश्चात् उसने पाण्डवो को घोर कष्ट दिया। उन्हें बारह वर्ष तक वनवास करना पडा। एक वर्ष अज्ञात वास की यातनाए सहन करनी पड़ी। पर उस कपट का अन्तिम फल क्या हुआ? आखिर हस्तिनापुर में पाण्डवो का ही राज्य स्थापित हुआ और कौरवों को अपनी करतूतों का फल भोगना पडा। कौरवो को अपने ही फैलाये हुए कपट के फदे मे फस कर प्राण देने पड़े! श्रीकृष्णजी ने कौरवो के विरुद्ध पाण्डवो की सहायता की। यह पाण्डवो की निष्कपटता का ही फल था।

शिकारी करै कैद गर जीवों की हिसा वो करे।
मार्जार बगुले को तरह तू दगा करना छोड़ दे॥

जिस प्रकार शिकारी कपट-जाल बिछा कर जीवो के प्राणों का हरण करता है, उसी प्रकार बिल्ली और बगुला भी कपट पूर्वक जीवो का घात करते है।

इज्जत में आता फरक, भरोसा भी कोई ना करे।
मित्रता टूट जाती, तू दगा करना छोड़ दे॥

मायावी मनुष्य की मानव-समाज में कोई मान मर्यादा नही रहती। उसकी मामूली सी बात पर भी कोई विश्वास नही करता। सभी उसको अविश्वास की निगाह से देखते हैं। शास्त्र मे कहा है कि—

माया मित्ताणि नासेइ।

अर्थात्— मायाचार मैत्री को नष्ट कर देता है। कपटी का कोई मित्र नही रहता।

एक साहूकार का लड़का दुर्भाग्य से गरीब हो गया। भाई, गरीबी भी बुरी चीज है। वह मनुष्य को अकर्त्तव्य कर्म की ओर प्रेरित करती है। मनुष्य निर्धनता के वशीभूत होकर अनुचित कार्य करने को भी लाचार हो जाता है।

साहूकार का लडका एक दिन मन मारे बैठा सोचने लगा कि इस गरीबी से किस प्रक.र पिण्ड छुड़ाया जाय ? तब उसकी पत्नी ने कहा—यो चिन्ता करने से क्या बनने वाला है ? चिन्ता से धन की तरह तन भी जाने को है, आने को कुछ भी नहीं। लो, यह एक रुपया लो और इसी से कुछ धन्धा आरम्भ कर दो। तकदीर मे होगा तो एक के सौ और सौ के हजार होते क्या देर लगती है ?

साहूकार का बेटा एक रुपये की भंग लाया और बाजार मे फेरी लगाता हुआ निकला। एक दगाबाज साहूकार ने उसे बुला कर पूछा—'क्या लाये हो ?'

उत्तर मिला—'भङ्ग !'
साहू०—देखें, कैसी है ?
बेटा—देखिए, बहुत बढ़िया है।

साहूकार ने भङ्ग को हाथ मे लेकर कहा—वाह ! यह तो केवल भूसा है भूसा ! भला, यह भी कोई भङ्ग है ! लेने हो तो छह आने मिल सकते हैं। यह भी तुम पर दया करके दे रहा हूँ।

साहूकार का लड़का मन मे बहुत पछताया। उसने ठीक

है कह कर छह आने ले लिये और घर का रास्ता पकडा ।

घर जाने पर देवीजी को छह आने मिले । वह समझी-यह छह आने कमाई करके लाये है । परन्तु जब मूल रुपया दिखाई न दिया तो पूछा-और वह रुपया कहां है ?

साहूकार का बेटा बोला—वह तो ठगाई मे खो चुका । किसी ने मुझे भंग के बदले भूसा पकड़ा दिया था !

पत्नी ने कहा—ठीक है । अब आप भग का धन्धा न करे । कल से रेशम की लच्छियां बेचने का धन्धा शुरु करें । यह कहकर उसने अपने पति को दो रुपये फिर दिये ।

दूसरे दिन बढ़िया रेशम की लच्छियां खरीद कर वह बेचने निकला । उस वेचारे को पता नही था कि किस वस्तु के ग्राहक कहा मिलते हैं ? अतएव वह गलियो में न जाकर बाजार मे वेचने निकला ।

लड़का चलता-चलता उसी सेठ की दुकान पर पहुंचा । सेठ ने पूछा-आज क्या लाये हो ?

लड़के ने कहा-साहब, रेशम की लच्छियां, देखिए कितनी चमकदार हैं ।

सेठ ने हाथ मे लेकर कहा-यह भी कोई रेशम है ! यह तो सन है सन ! बतलाओ, क्या लोगे इनका ?

लड़का—तीन रुपये साहब !

साहूकार—वाह रे ठग ! खूब कहा । एक कल्दार लेना है ? नही तो उठा अपनी लच्छिया । वापिस लाओगे तो आठ आने मिलेंगे । समझा !

लडका फिर घबराया । सोचने लगा कही सचमुच ही नकली हो ! और उसने एक रुपये मे ही वह लच्छिया सेठ को दे दी ।

घर आने पर पत्नी ने हिसाब मांगा तो उसने उसी कल वाले सेठ का नाम बतला दिया । स्त्री चतुर थी । समझ गई कि उस धूर्त्त ने इनके भोलेपन से फायदा उठाया है । उसने कहा उस सेठ ने तुम्हारे साथ दगा किया है !

"दगा ?"

हां, दगा । देखते नही, दो-दो बार उस धूर्त्त ने तुम्हे ठग लिया !

साहूकार के लडके ने कहा-अच्छा, अपने जेवर मे से जरा-सा सोने का टुकडा तो दे दो ।

सोने का टुकडा लेकर वह सुनार के घर गया वहा उसने लोहे के लोट पर सोने का झोल चढ़वाया और उसे झोले मे रखकर बेचने निकला । उसने "लो लोट, लो लोट" की आवाज लगाई ।

साहूकार गद्दी पर बैठा बैठा ऊंघ रहा था । पहचानी बोली सुनकर चौकन्ना हो गया । लोभ के कारण उसके मुंह में पानी भर आया । उसने आवाज दी—

'लड़के ! यहाँ आ । क्या है तेरे पास ?'
लड़के ने कहा—लोट है लोट !
सेठ—काहे का बना हुआ है ?
लड़का—लोहे का ।

सेठ–जरा बता तो सही ।
लडका–देखिए. अच्छी तरह देखिए ।

सेठजी ने बडे घौर से उसे देखा । सरासर सोने का दिखाई देता था, परन्तु लडका उसे लोहे का बतला रहा था ! सेठ ने सोचा–लडक मूर्ख जान पड़ता है । इसे सोने और लोहे का भेद नही मालूम है !

सेठ ने कहा– इसकी कीमत क्या है ?
लडका–आप ही कह दीजिए ।
सेठ–पच्चीस कल्दार दे सकता हू । बेचना है ?
लडका- तब तो खरीद चुके ! रहने दीजिए .
सेठ–अच्छा, पचास लेगा ?
लडका– नही, लाइए, मेरी चीज मुझे दे दीजिए ।

सेठ को भय था कि कोई दूसरा ग्राहक न खडा हो जाय ! नही तो यह हाथ से निकल जायगा !

सेठ – अच्छा. सौ रुपये ले ले ! अब तो खुश ?

लडके ने 'लाओ' कहा और सेठ ने सौ रुपये की थैली उठा कर दे दी । लडका बिना गिने ही रुपये अपने घर ले आया ।

घर पहुँच कर उसने अपनी पत्नी के सामने रुपयो की थैली रख कर कहा–लो, यह आज की कमाई !

स्त्री ने थैली खोल कर जो देखा तो उसके विस्मय का पार न रहा । थैली मे मोहरें भरी थी ! उसने कहा—आखिर इतनी मोहरें कहां से उठा लाये ?

साहूकार का लडका बोला सौ सुनार की एक लुहार की। वार-बार ठगने वाला आज स्वयं ठगा गया !

× × ×

एक फकीर बाजार में गाता हुआ जा रहा था:—

फूस भरोसे भांग लिया था वा दिना।
सूत भरोसे रेशम लिया था वा दिना ॥
अब खबर पड़ेगी वा दिना।
जब लोट काटेगे वा दिना ॥
या मावूत पैसा दे।

सेठ ने फकीर का गाना सुना ! सोचा—इस गाने का सम्वन्ध तो मुझसे ही जान पड़ता है। उसी समय उसके मुनीम ने आकर कहा—सेठ साहब ! सौ मोहरों की थैली नहीं मिल रही है ! कही रख दी है ?

सेठ को काटे तो खून नही ! समझ गया—सौ रुपयों के वदले शायद सौ मोहरों की थैली चली गई !

इसके वाद सेठ ने लोट को कटवाया तो पता चला कि वह लोहे का है। सेठ घबराकर आखिर उस साहूकार के लडके के घर गया। वड़ी आजीजी की। तव लड़के ने कहा—जब आपने भुसा कह कर भंग ले ली और सन कह कर रेशम ले लिया तब तो मेरे यहां नही आये ? आज भी आने की क्या आवश्यकता थी ? पधारो यहां से ! आखिर सेठजी अपना-सा मुंह लेकर घर लौट आये।

क्या लाया ले जायगा तू, गौरकर इस पर जरा।
चौथमल कहे सरल हो तू, दगा करना छोड़ दे ॥

भाइयो ! आपने जब इस जीवन में प्रवेश किया था तो क्या साथ लेकर आये थे ? यहां आकर जो कुछ भी आपको मिला है, वह सब आपके उपार्जन किये हुए पुण्य का ही फल है। बहुत से लोग इस भ्रम मे रहते है कि हमने छल-कण्ट करके धन कमाया है, परन्तु छल-कपट से धन नही मिलता। धन और दूसरी सुख सामग्री पुण्य के योग मे मिलती है। इसलिए छल कपट छोडकर पुण्य का ही उपार्जन करो। पुण्य का उपार्जन करोगे तो आगामो जीवन मे भी सुख पाओगे। छल कपट से धन कमाओगे तो पाप ही पल्ले पडेगा। धन साथ नही जायगा, पाप गले पड़ जायगा। अतएव निष्कपट बनो, सरल बनो।

कृष्ण कथा—

बतलाया जा चुका है कि ज्योतिषियों की भविष्यवाणी सुनकर कपटी कंस काप उठा। वह कृष्ण को छलने के लिए तरह-तरह के जाल फैलाने लगा।

ज्योतिषियों की बात श्रवण कर, कंस हृदय घबराया।
हरि की घात करने की खातिर, केशी अश्व पठाया ॥

कृष्णजी को मारने के लिए कंस ने गोकुल मे केशी घोडा भेजा। उस घोड़े ने गोकुल मे ऐसी धूम मचाई कि लोग हैरान परेशान हो गये।

ऐसी मचावे धूम सभी गोकुल-वासी अकुलाये ।
हो सवार हरि घुमा-घुमा कर, मार उसे घर आये ।।

केशी अश्व की धमाचौकडी से समस्त गोकुल-वासी व्याकुल हो उठे। परन्तु यशोदा के रोकते रहने पर भी कृष्ण उछल कर घोड़े पर सवार हो गये ! जब सवार हो गये तो फिर क्या था ! उसे इधर-उधर चारो ओर खुब फिराया दौडाया और थका दिया । भागते भागते घोडा बुरी तरह हाफने लगा । पसीना पसीना हो गया । जब उसमे आगे चलने की शक्ति न रह गई तो वह नीचे उतरे और उसके दोनो जबडो को चीर डाला घोडा नीलाम बोल गया ।

यशोदा वहुत नाराज हुई । बोली—बडे शैतान हो तुम ! जरा भी नहीं डरते ? घोडा मार देता तो ? इस पर कृष्ण मुस्करा कर बोले—मैया, लोगो का कष्ट मिटाना तो अपना कर्त्तव्य है ।

इसी प्रकार कृष्ण ने मेष वृषभ को भी मारकर गोकुल को सुखी वनाया और गोवर्द्धन को उठाकर कस की छाती मे धड़-कन पैदा कर दी । यह सब सवाद सुन कर कस को संदेह होने लगा कि कहीं यही वालक तो मुझे मारने वाला नही है ?

इधर गोकुलवासी कृष्ण को ही अपना सर्वस्व समझने लगे । वे नंद और यशोदा के न रह कर समस्त गोकुलवासियो के प्रिय आत्मीय वन गये । उन्होने सोचा—गोकुल मे कन्हैया न होते तो हम लोगो की रक्षा किस प्रकार होती ?

कृष्ण अपनी वाल-क्रीड़ा मे मगन रहते हैं । उनकी

क्रीडा साधारण बालको के समान नहीं होती। उसमें कुछ न कुछ अनूठापन अद्भुतता रहती है। एक बार--

रमे गेंद ले आप हरीजी, जमुना के तट जाई।
काली नाग को नाथा जाकर, काली दह के माही ॥

तथा--

लेकर डण्डा, मिलकर सण्डा,
कान्ह कुंवर अब खेलन निसरियो।
जल जमुना तट जावे रे सावरियो ॥

कृष्णजी ने कालिय नाग को नाथ कर तो गजब ही कर डाला। वह घटना वडो रोमाचकारिणी थी। वास्तव मे कृष्ण के बचपन की बहुतसो विस्मयजनक घटनाओ मे कालिय नाग को पराजित करने की घटना अपना विशेष स्थान रखती है।

कृष्णजी कभी--कभो अपने साथियों के साथ, डडा लेकर खेलने चल देते थे और यमुना के किनारे बाल--कौतुक किया करते थे। चुपचाप घर मे बैठे रहना तो उन्हें सुहाता ही नही था। हर समय कुछ न कुछ कौतुक किया ही करते थे। जब—

मात यशोदा दही रे विलोवे,
माखन मांगी-मागी खावे रे सांवरियो।
जल जमुना-तट जावे रे सांवरियो ॥

माता यशोदा जब छाछ बिलोती तो सांवरिया कृष्ण मक्खन साफ कर जाते है। कभी-कभी माँग कर खाते हैं।

कभी यशोदा छीके पर मक्खन रखकर बाहर चली जाती है तो आस-पास के लड़कों को बुलाकर, किसी तरकीब से मक्खन उतार लेते हैं और उन्हे बाट-बाँट कर खिलाते और आप खाते हे। यशोदा जब लौटती है और मक्खन का बरतन खाली पाती है तो कृत्रिम क्रोध दिखलाकर पूछती है---क्यों रे कान्हा! तू ने सारा मक्खन सफाचट कर दिया?

कृष्ण एकदम स्वाभाविक भाव से कहते हैं---नही तो मैया, मैंने मक्खन नही खाया---

मैया, मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भये गैयन के पाछे, मधुवन मोय पठायो।
घर बंसी बसीवट भटकत, साभ परें घर आयो।।

मैया! मैं मक्खन खाता भी तो किस वक्त खाता? सुबह होते ही तुमने मुझे गाये चराने के लिए मधुवन भेज दिया था। दिन भर गाये चराता रहा। जब शाम हो गई तो लौट कर आया हूं। मक्खन खाने का समय ही कब मिलता है? तुम्ही वताओ न, मैं किस समय खाता मक्खन?

इस प्रकार चतुराई की बाते बनाकर कृष्ण, यशोदा का मन बहलाते हैं। यशोदा उनकी चालाकी को खूब समझती है, परन्तु ऊपर से भोली बनकर ऐसा दिखावा करती है, मानों उनकी सब बातो पर पूरा-पूरा विश्वास करती हो।

इस प्रकार कृष्ण मुरारि अपना समय व्यतीत कर रहे हैं। अवसर होगा तो दूसरी घटनाएं फिर सुनाई जाएंगी।

इन्दौर }
२-६-४५ }



सर्वनाशी लोभ

स्तुति---

गम्भीरताररवपूरितदिग्वभाग-
स्त्रैलोक्यलोक शुभसङ्गम भूतिदक्षः ।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहां तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहा तक आपके गुण गाये जाएं ?

भगवन् ! जहां आप विराजमान होते हैं, वहां देवगण आपका यशोगान करने के लिए आकाश में दुंदुभि बजाते हैं। वह दुंदुभि साधारण नहीं होती। उसके गंभीर और ऊंचे नाद से समस्त दिशाएं परिपूर्ण हो जाती हैं। वह समीचीन--

धर्मराज (तीर्थंकर) भगवान् की विजय की मानो घोषणा करती है।

भगवान् के समवसरण मे बजने वाली दुंदुभि वास्तव मे इस बात की घोषणा करती है कि प्रभु ने अपने समस्त (आत्मिक) शत्रुओ पर पूरी तरह से विजय प्राप्त कर ली है! विजय की घोषणा करती हुई दुंदुभि मानों प्रभु का यशोगान करती है। (यह तीर्थंकर भगवान् का पाचवा प्रातिहार्य है।)

आजकल भी जब आपके नगर मे साधु--मुनिराज पधारते हैं, तो आप सेवकों द्वारा या विज्ञापन पत्रिका द्वारा उनके आने का सवाद फैलाते हैं। फिर तीर्थंकर भगवान् जैसे लोकोत्तर महापुरुष के पधारने पर नगर मे सूचना क्यो न हो? अतः उनके पदार्पण की सूचना देवगण दुदुभि द्वारा करतें हैं।

भगवान् अपने धर्मोपदेश में पापों के परित्याग की प्रेरणा करते थे। भगवान् ने जिन अठारह पापो को हेय बतलाया, उनमें से लोभ नौवां है। यह जबर्दस्त पाप है। लोभ पाप का बाप कहलाता है, सो वास्तव में उचित ही है। शास्त्रकार फरमाते हैः—

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविनासणो॥

अर्थात्—कोध, प्रीति का नाशक है, मान विनयभाव का विनाश करता है, मायाचार से मैत्री मटियामेट हो जाती है, इस प्रकार इन तीनो पापो से एक-एक ही सद्गुण नष्ट होता है, परन्तु लोभ-लालच से तो सर्वनाश ही हो जाता है!

वास्तव मे लोभ मनुष्य का बडा ही भयानक शत्रु है। वह हजारो पापो को पैदा कर देता है। कौन ऐसा अनर्थ है जो लोभ से उत्पन्न न होता हो? धन का लोभी पुण्य और पाप मे भेद नही समझता। किसी भी दुष्कर्म मे वह निशंक होकर प्रवृत्ति कर बैठता है। कैसा भी दुस्साहस का कार्य क्यो न हो, लोभी के लिए वह किसी गिनती में नही। नीतिकार कहते हैं—

मातरं पितरं पुत्रं, भ्रातरं वा सुहृत्तमम्।
लोभाविष्टो नरो हन्ति, स्वामिनं वा सहोदरम्॥

अर्थात्—जिसके अन्तःकरण में लोभ रूपी पिशाच प्रवेश कर गया है, उसके लिए कोई भी जघन्य कृत्य कठिन नहीं है। वह अपने माता-पिता की हत्या कर सकता है, अपने पुत्र और मित्र की घात कर सकता है, वह स्वामी के प्राण ले सकता है, यहां तक कि अपने सहोदर भाई की जान भी लेने से नही चूकता!

और भी कहा है:—

लोभाविष्टो नरो वित्तं वीक्षते न स चापदम्।
दुग्धं पश्यति मार्जारो, न तथा लगुडाहतिम्॥

लालची मनुष्य केवल धन-दौलत को ही देखता है। उसे धन को प्राप्त करने मे और उसको प्राप्त कर लेने के फलस्वरूप कितनी विपत्ति झेलनी पड़ेगी, इस बात को वह जरा भी नही देखता। बिलाव दूध को ही देखता है। दूध के पास जाने पर लाठी के होने वाले प्रहार की ओर से वह आखे मीच लेता है!

अरे, इस लोभ के माहात्म्य का वर्णन कहां तक किया जाय ! लोभ के वश होकर बादशाहों ने अपने ही पुत्रों की आंखे फुड़वा दी और उनके हाथ कटवा दिये ! कई दुष्ट पुत्रों ने राज्य प्राप्त करने के लोभ मे अपने जन्मदाता पिता को भी कैद करके कारागार मे डलवा दिया और उनके प्राण तक ले लिये ! क्या आपने कंस और उग्रसेन की कथा नही सुनी ? कंस ने लोभ के कारण ही अपने पिता उग्रसेन को कैद कर लिया था ! अपने भाइयो को जहर देकर या और तरह मार डालने की घटनाए तो अनेक है !

लोभाविष्ट स्वार्थी मुनीम और नौकर अपने सेठ को कत्ल कर डालते हैं। वास्तव मे लोभ सब पापो का सरदार है। इसके होने पर कोई भी पाप ऐसा नही, जिसे करने में मनुष्य को हिचकिचाहट हो सके।

नीतिकारो का कथन ठीक ही है कि लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से द्रोह पैदा होता है और द्रोह के प्रभाव से नरक मे जाना पडता है। विचक्षण से विचक्षण मनुष्य भी लोभ के कारण मूर्ख बन जाता है।

भाइयो ! सागर सेठ लोभ के कारण ही सागर में डूब कर मरा। उसकी कथा कहने से व्याख्यान लम्बा हो जायगा। जिन्हे जिज्ञासा हो उन्हे अन्यत्र उस कथा को पढ़ लेना चाहिए।

गुरु बोले:—

देख्यो रे चेला ! विन पार सरवर ?।
देख्यो रे चेला ! विन पात तरवर ?॥

यो बढ़ते-बढ़ते यह तृष्णा, राजा के पद पहुंचा देती।
तदपि सन्तोष नही होता, ऐसी यह दारुण तृष्णा है।

आयुष्य नष्ट हो जाता है, शरीर शिथिल हो जाता है, आंखें जवाब दे देती है, पर यह तृष्णा कभी बूढी नही होती। भर्तृहरि कहते हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता,—
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता—
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

अर्थात्—हम भोगो को नही भोगते, परन्तु संसार के भोग ही हमे चूस कर फेंक देते हैं—निस्सत्त्व कर देते हैं। तप नही तपता वरन् हम स्वयं ही तप जाते हैं। समय नही बीता मगर हम स्वय बीत गये हैं। इसी प्रकार तृष्णा जीर्ण नही होती वरन् हम स्वयं जीर्ण हो जाते हैं।

उज्जैन के पास एक छोटा-सा कस्बा था। उसमे एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह विद्वान् तो था पर भाग्यवान् नही था। अतएव जब वह मरा तो ब्राह्मणी के लिए एक लड़का और दरिद्रता ही छोड कर मरा।

लडका कुछ बडा हुआ और पढ़ने लिखने—योग्य हुआ तो ब्राह्मणी को चिन्ता हुई कि इसके पढने—लिखने की क्या व्यवस्था की जाय? आखिर उसने अपने पुत्र कपिल को बुलाकर कहा-बेटा, तुम्हे पता है तुम्हारे पिता एक नामी विद्वान् थे।

भाई के घर साता पूछने गया । रोगी बेहोश था। फिर कहना ही क्या था ! भाई साहब को अच्छा अवसर हाथ लग गया ! वह रोगी के दोनो कानो मे पहने हुए सोने के झेले उतार कर ले आया ! लोभी आदमी के पतन को कोई सीमा नही रहती !

लोग धनोपार्जन करके धन की तृष्णा को शान्त करना चाहते हैं। मगर ज्ञानीजनो का कथन है कि तृष्णा का शान्त करने का यह उपाय नही है। जैसे आग से आग शान्त नहीं होती। उसी प्रकार धन से धन की तृष्णा शान्त नही होती । जेसे ईंधन झौंकते जाने से आग बढ़ती हो चली जाती है, उसी प्रकार धन को प्राप्त करने से धन की इच्छा भी बढती ही जाती है, नीतिकार ठीक ही कहते हैं---

निःस्वो व्यक्तिः शतं शती दशशतं, लक्षं सहस्राधिपो,
लक्षेशः क्षितिराजतां क्षितिपतिश्चक्रेशया वाञ्छति।
चक्रेशः सुरराजतां सुरपति-र्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति,
ब्रह्मा विष्णुपदं हरिः शिवपद, तृष्णावधि को गतः ? ॥

अर्थात्---कगाल व्यक्ति सौ रुपयों की इच्छा करता है, और सौ रुपयो वाला सहस्राधिपति बनना चाहता है। हजार पति लखपति बनने की कामना करता है तो लखपति राजा बनने का मसूबा करता है। मगर राजा को भी सतोष कहां ? वह चाहता है---मैं चक्रवर्त्ती वन जाऊं ! चक्रवर्त्ती भी इन्द्र बनने की कामना करता है और इन्द्र और भी ऊचा पद पाना चाहता है। कहने का आशय यह है कि लोभ का कहीं पार नही है। वह शैतान की आत की तरह बढता ही चला जाता है !

यों बढते-बढ़ते यह तृष्णा, राजा के पद पहुंचा देती।
तदपि सन्तोष नही होता, ऐसी यह दारुण तृष्णा है।

आयुष्य नष्ट हो जाता है, शरीर शिथिल हो जाता है, आंखे जवाब दे देती है, पर यह तृष्णा कभी बूढी नही होती। भर्तृहरि कहते हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता,—
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता—
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

अर्थात्—हम भोगो को नही भोगते, परन्तु ससार के भोग ही हमे चूस कर फेंक देते है—निस्सत्त्व कर देते हैं। तप नही तपता वरन् हम स्वय ही तप जाते है। समय नही बीता मगर हम स्वयं बीत गये हैं। इसी प्रकार तृष्णा जीर्ण नही होती वरन् हम स्वयं जीर्ण हो जाते हैं।

उज्जैन के पास एक छोटा-सा कस्बा था। उसमे एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह विद्वान् तो था पर भाग्यवान् नही था। अतएव जब वह मरा तो ब्राह्मणी के लिए एक लड़का और दरिद्रता ही छोड़ कर मरा।

लडका कुछ बड़ा हुआ और पढने लिखने—योग्य हुआ तो ब्राह्मणी को चिन्ता हुई कि इसके पढ़ने—लिखने की क्या व्यवस्था की जाय? आखिर उसने अपने पुत्र कपिल को बुलाकर कहा-बेटा, तुम्हे पता है तुम्हारे पिता एक नामी विद्वान् थे।

कपिल—हां, समझा। मगर पता होने से क्या मतलब ?

ब्राह्मणी—तुम्हे भी वैसा ही विद्वान् बनना चाहिए।

कपिल—पिताजी ने विद्वान् होकर कौन-सा राज्य पा लिया था ? और बिना पढे लोग क्या सब भूखे मरते हैं ? मैं तो खेती करूंगा। खेती करने मे ही मुझे मजा आता है।

ब्राह्मणी—नही बेटा, ऐसा न कहो। विद्वान् बन जाओगे तो इज्जत आबरू पाओगे।

कपिल—तो मैं कहां जाकर पढ़ू ?

ब्राह्मणी—उज्जैन चले जाओ। वहां तुम्हारे पिता के एक मित्र रहते हैं। उनकी पाठशाला है। उसी मे पढना।

कपिल—अच्छी बात है। मैं उज्जैन जाता हूं।

कपिल माता से विदा लेकर उज्जैन के लिए रवाना हुआ और यथा समय अपने पिता के मित्र के यहां पहुंचा। वहाँ पण्डितजी को सामने देखकर उसने कहा-प्रणाम, गुरुजी !

पण्डितजी ने विस्मय के साथ उसकी ओर देखकर कहा—अरे यह कौन चेला आकाश से टपक पड़ा ?

कपिल—मेरा नाम कपिल है गुरुजी मैं अमुक ग्राम के अमुक पण्डितजी का पुत्र हूँ। मेरी माता ने आपके पास विद्याध्ययन करने के निमित्त भेजा है।

पण्डितजी स्वय गरीब थे। उन्होने थोडी देर तक सोच विचार कर कहा अपने मित्र के पुत्र को पढाने की मेरी इच्छा अवश्य है और यह मेरा कर्त्तव्य है। पर क्या करू, तुम्हारे भोजन की व्यवस्था मुझसे न हो सकेगी।

कपिल—भोजन की क्या चिन्ता है गुरुजी ! भीख मांग कर पेट भर लूँगा।

पण्डितजी—नही, भीख मागने से पढाई नही होती।

इस वार्त्तालाप के समय वहां एक सहृदय सद्‌गृहस्थ मौजूद था। उसने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा-पण्डितजी, इस विद्यार्थी को भोजन कराने का सौभाग्य यदि मुझे प्रदान कर दिया जाय तो मेरा अहोभाग्य होगा। मैं इस बालक के लिए प्रतिदिन भोजन सामग्री देता रहूँगा।

इस प्रकार भोजन की समस्या अनायास ही सुलझ गई। कपिल ने विद्याध्ययन आरम्भ कर दिया। और लगातार छह वर्ष तक वह पढता रहा। उसकी उम्र अठारह वर्ष हो गई।

ससर्ग से वासना की वृद्धि होती है। सेठ की एक दासी कपिल को प्रतिदिन भोजन-सामग्री दिया करती थी। पहले-पहल तो दोनो मे अनुराग भरी आखो से देखादेखी हुई, फिर दोनों के चित्त एक दूसरे की ओर आकृष्ट हुए। दोनों के हृदय में वासना की आग उत्पन्न हो गई। बातचीत और हास्य विनोद होने लगा। धीरे धीरे अगस्पर्श की भी नौबत आ पहुँची। इस प्रकार दोनों काम क्रीडा में रत हो गये और वासना की तृप्ति के लिए एकान्त स्थान की तलाश मे रहने लगे।

कपिल की बुद्धि का ह्रास शुरू हो गया। अब पढ़ने--लिखने मे उसका चित्त नही लगता था। अभी तक अध्ययन करना ही उसका मुख्य व्यवसाय था, अब उद्देश्य बदल गया। जहां वह शास्त्र के गभीर स्थलो के चिन्तन मे व्यस्त रहता था, वहा अब वह अपनी प्राण प्यारी को प्राप्त करने की ही चिन्ता करने लगा।

अनुभवी गुरुजी से शिष्य की शैतानी छिपी न रही। कपिल की बीमारी जब काफी बढ गई तो गुरुजी ने एक दिन साफ-साफ कह दिया—कपिल ! सावधान हो जाओ एक म्यान मे दो तलवारें नही रह सकती। या तो तुम्हे विद्या से ही प्रेम करना होगा या फिर यहां से जाओ।

कपिल के हृदय को व्यथा पहुंची। क्षण भर के लिए वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। मगर वासना के पथ पर वह इतना आगे बढ़ चुका था कि वापिस लौटना उसके लिए कठिन हो गया !

आखिर गुरुजी ने कपिल को अपनी शाला से पृथक् कर दिया। दासी भी अपने सेठ के घर से भाग कर कपिल के साथ हो गई। दोनो ने दरिद्रों के मुहल्ले मे एक कोठरी किराये पर ली। दोना दु ख को सुख मानते हुए वही रहने लगे।

भीख मांग कर ले आना कपिल का काम था और भोजन बना देना दासी का। इस प्रकार समय बीतने लगा।

श्रावण का महीना था। घर-घर की नारियां हरियाली अमावस्या का उत्सव मनाने के लिए बगीचे मे इकट्ठी हुई। कपिल की पत्नी भी वहा पहुंची। परन्तु उसके चेहरे पर हर्ष का कोई चिह्न नजर न आता था। किसी स्त्री ने उससे कहा—बहिन, क्या बात है ? तुम उदास क्यो दीखती हो ?

कपिल की पत्नी बोली-नही, ऐसी तो कोई बात नहीं है।

तब उस स्त्री ने कहा-फिर क्या कारण है कि तुम सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहन कर नही आई हो ? तुम्हे क्या अपने पति से रूठना नही आता ?

कपिल की पत्नी यह सुनकर मुस्किराई, मगर मौन ही रही। उसके चित्त मे एक गभीर वेदना उत्पन्न हो गई।

\+ + + +

कपिल ने भिक्षा की पोटली नीचे रखते हुए कहा-देवी, क्या कारण है कि आज तुम प्रसन्न नही दिखलाई देती ?

पत्नी—कुछ तो नही। यो ही..........

कपिल--नही यह नही हो सकता। कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए। आखिर यह उदासीनता क्यो है ?

पत्नी—आज मैं हरियाली अमावस्या का उत्सव देखने गई थी। वहा सखियो ने कहा-तुम्हारे पास न सुन्दर वस्त्र हैं और न आभूषण ही हैं। क्या तुम्हारे पति तुम से प्रेम नही करते ? परन्तु मैं आपसे कह भी क्या सकती हूं। जब पेट भी पूरा नही भरता तो उत्तम वस्त्रो और आभूषणो का प्रश्न ही उपस्थित नही होता !

कपिल के हृदय को गहरी ठेस लगी। उसे अपनी दरिद्रता बुरी तरह खलने लगी। मगर वह निरुपाय था। उसने सिर्फ इतना कहा—प्रिये ! जब चाहो, मेरे प्रेम की परीक्षा कर सकती हो। मैंने तुम्हारे लिए सभी कुछ त्याग दिया है ! अपने भविष्य जीवन की भी चिन्ता नही की। मगर वस्त्रो और आभूषणो की समस्या सुलझाना कठिन है ! तुम देख ही रही हो।

पत्नी ने कहा-हा, सो मुझसे कुछ छिपा नही है। लेकिन एक बात मुझे स्मरण आ रही है। उज्जयिनी के महाराज प्रतिदिन प्रात:काल, सबसे पहले पहुच कर आशीर्वाद देने वाले ब्राह्मण को स्वर्ण दान देते है। आप सर्व प्रथम पहुंच सके तो

आपको ही मिल सकता है। अगर कुछ दिनों तक आपको वह स्वर्ण मिलता रहे तो मेरे कपड़े और जेवर तैयार हो सकते हैं।

कपिल को यह सुझाव पसंद आ गया। उसने कहा बिल्कुल ठीक मैं कल से यही प्रयत्न करूँगा।

+ + + +

समय की प्रतीक्षा करते-करते मनुष्य अकुला जाता है। अमावस्या की वह रात कपिल को बहुत बड़ी प्रतीत हुई। जब वह किसी प्रकार समाप्त होती न दीखी तो वह दो बजे के समय उठकर राजा के महल की ओर चल पड़ा। उसे भय था कि कहीं कोई लम्बा तिलकधारी ब्राह्मण आ धमका तो मेरी पूछ नहीं होगी।

जब वह राजप्रासाद के सन्निकट पहुँचा तो देखा कि फाटक बंद है। फिर भी वह भीतर घुसने के लिए उत्सुक था। दरिद्रता ने उसे बेचैन बना दिया था! उससे रहा नहीं गया। आखिर कपिल ने इधर-उधर देखा। एक मार्ग दिखलाई दिया। वह मार्ग पानी निकलने का परनाला था। कपिल उसी में होकर भीतर घुस गया। वह चारों ओर चौकन्ना होकर देख ही रहा था कि एक ओर से आवाज आई---'कौन है?'

कपिल का कलेजा काँप उठा। यद्यपि वह चोर नहीं था और चोरी करने की नीयत से गया भी नहीं था, फिर भी अनधिकार प्रवेश के कारण उसे भय लग रहा था। चोर न होने पर भी वह चोरों की भाँति ही प्रविष्ट हुआ था। यही कारण है कि 'कौन है' की आवाज सुनते ही वह भयभीत हो उठा। उसके मुँह से आवाज न निकल सकी।

पहरेदारो ने कपिल को गिरफ्तार कर लिया। यथोचित सेवा-पूजा भी कर डाली। कपिल पहरेदारों की मार खाकर बेहाल हो गया।

प्रातः काल, दिन निकलने से पूर्व ही राजा को किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। पहरेदारो को बुलाकर पूछा तो उन्होने रात्रि का समस्त वृत्तांत सुनाया। राजा बहुत बुद्धिमान था। घटना के मर्म तक जा पहुचा। पहरेदारो को आज्ञा दी अच्छा, उस व्यक्ति को दरबार मे उपस्थित करना। उसका न्याय किया जायगा।

पहरेदार बोले—जो आज्ञा महाराजाधिराज की!

आखिर दरबार के समय कपिल राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने प्रश्न किया—सच सच बताओ कपिल, तुमने रात्रि के समय महल मे किस उद्देश्य से प्रवेश किया था?

कपिल ने कहा—महाराज, सिर्फ दो माशा सोना प्राप्त करने के लिए! उसने फिर कहा—मैं असत्य नही कहूंगा। आप जो उचित समझें, दण्ड दे सकते हैं। मैं दरिद्र ब्राह्मण हू। मेरी पत्नी के पास ठीकठाक वस्त्र भी नही हैं। इसी कारण दो माशा सोना प्राप्त करने के लिए सर्व प्रथम मैंने राजमहल मे प्रवेश किया था।

कपिल की बात पर राजा ने विश्वास किया। उसे ब्राह्मण की दरिद्रता पर तरस आ गया। उसका दुःख दूर करने की इच्छा से राजा ने कहा अच्छा बतलाओ तुम्हे क्या चाहिए? तुम जो चाहोगे वही मिलेगा।

राजा के उदारतापूर्ण वचन सुनकर कपिल की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने दो माशा के बदले एक तोला सोना माँगना चाहा। फिर लोभ बढा और दो के बदले दस तोला माँगने की इच्छा हुई। तब कपिल सोचने लगा--दस तोले से भी क्या जिंदगी सुखमय बन जायगी! मुँह मांगा मिल रहा है तो क्यो न सौ तोला माग लिया जाय? फिर सोचा—जीभ हिलाने में क्या जाता है? सौ के बदले हजार कह दूं तो क्या हर्ज है। आराम से जिंदगी कटेगी।

मगर हजार तोला सोना भी किस काम का है? अपनी ब्राह्मणी को अगर रानी बना सकूं तो कितना अच्छा होगा? राजा अपने वचन से फिर तो सकते नही हैं। फिर इनका राज्य ही क्यों न मांग लूँ?

इस प्रकार कपिल की तृष्णा बढ़ती ही चली गई। आखिर अपनी तृष्णा से वह स्वय झुंझला उठा। शास्त्रकार कहते हैं:--

सुवण्ण-रूप्पस्स उ पव्वया हवे,
सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया॥

अर्थात्---कैलाश पर्वत के समान बड़े-बडे, सोने--चांदी के असंख्यात पहाड़ हो अगर लालची मनुष्य को मिल जाएँ, तो भी उसके लिए वे पर्याप्त नही हैं। क्योकि इच्छा--तृष्णा आकाश के समान अनन्त है। अनन्त तृष्णा की पूर्ति असख्यात सोने-चांदी के पर्वतो से भी कैसे शान्त हो सकती है?

आखिर कपिल की विचारधारा का प्रवाह दूसरी ओर को मुड पडा। वह मन ही मन सोचने लगा—दो माशा सोने के लिए इतनी दुर्गति हुई-इतनी मारपीट सहन करनी पड़ी तो इतनी बड़ी सम्पत्ति पाने के लिए क्या-क्या सहन नही करना पड़ेगा ? और आज दो माशा सोना मेरी निगाह मे तुच्छ है तो कल राज्य भी क्यो न तुच्छ जान पड़ेगा ? सच है, दुनिया की कोई भी वस्तु सन्तोष प्रदान करने मे समर्थ नही है। सन्तोष तो आत्मा का गुण है। वह प्राप्त हो जाय तो फिर दूसरे पदार्थो की आवश्यकता ही क्या है ? दूसरे पदार्थ तो व्याकुलता बढ़ाने वाले तृष्णा की आग को और भी अधिक भड़काने वाले ही हैं !

कपिल आगे सोचने लगा—आत्मन् ! तू किस चक्कर मे पड़ा है ? विषय वासना की गंदगी मे फँसकर क्यो अपने उज्ज्वल एवं निर्मल स्वरूप को मलीन बना रहा है ? आह, विषय—लिप्सा के कारण तेरा कितना पतन हो चुका है ! तुझे धिक्कार है ! रे जीव, अभी असर है। अब तो संभल जा ! अब तो सन्मार्ग की ओर देखकर उस पर अग्रसर हो !

मनोभावना के बदलने मे क्या देर लगती है ? भावना पावन होते ही कपिल को भाव—संयम की प्राप्ति हो गई। वह गृहस्थ के वेष में ही उच्च कोटि का त्यागी बन गया। निर्मोह दशा उसे प्राप्त हो गई। निर्मोह अवस्था प्राप्त होते ही अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन का भंडार उसे प्राप्त हो गया। वह केवली हो गया। कपिल मुनि अब जीवनमुक्त अवस्था प्राप्त कर चुके।

राजा ने कपिल को मौन देख प्रश्न किया – क्यों, कुछ नही माँगा ?

कपिल ने कहा—जो चाहिए था, मिल गया है। अब किसी वस्तु की आवश्यकता नही रह गई है।'

इतना कह कर कपिल केवली राजसभा से निकल कर सीधे जंगल की ओर चल दिये। संसार से अब उन्हे कोई सरोकार नही रह गया था। जगत् का कल्याण करना, संसार के प्राणियों को मोह--निद्रा से जगाना ही अब उनका एक मात्र कार्य था।

यह माया नाते की औरत, ये किसकी सुन्दर बनीं नही ?
चाहे जितना करो जापता, इसके सिर एक धनीं नही ॥

भाइयों ! यह लक्ष्मी नाते की औरत की तरह है। किसी के पास टिककर नही रहती। कोई लाख उपाय करे, वह चल ही देती है।

नाता वारी नित्य कुंवारी,
मन भायो सो कोधो ॥

लक्ष्मी नये—नये मार्ग से आती है और आपको चकमा देकर चली जाती है। आप उसके वियोग में रोते हैं, वह आपकी मूढता पर हसती है। आप हाय-हाय करते हैं, वह वाह-वाह !' करके आपका व्यंग करती है !

लक्ष्मी 'माया' कहलाती है। 'माया' की गति निराली है। कभी घर के गिरने से निकल पड़ती है और कभी घर मे

गाड़ देने पर भी चलती बनती है। तिजोरी का फौलादी कारागार उसकी गति को कुण्ठित नही कर सकता। संतरी और पहरेदार उसे रोकने मे समर्थ नही हो सकते। जब वह जाना चाहेगी तो जाएगी ही, उसे ससार की कोई भी शक्ति नही रोक सकेगी।

सेठानियां आभूषणो के मद मे चूर होकर समझतीं हैं–हमारे समान संसार मे कोई नही है। पर याद रखना, यह घमण्ड खण्ड--खण्ड होने के लिए है। यह टिक नही सकता।

कोई सेवाभावी किसी धनाढ्य के पास जाय और कहे कि गौ-सेवा के लिए दो रुपयो की आवश्यकता है, तो वह घमडी कहता है-जाओ, अभी हमारे बजट मे गु जाइश नही है।

उसी समय उसका कोई लंगोटिया यार आता है और कहता है-फला सिनेमा बहुत बढिया है। उसे देखिए। तो वही धनाढ्य कहता है–जाओ, पाच रुपये वाली बैठक मेरे लिए रिजर्व करा लो!

वाह रे बजरबट्टू! बता, यह बजट कहां से बन गया? हवेली गिरने लगे तो बजट बन जाता है, तिजोरी की आवश्यकता हो तो बजट बन जाता है, बीमारी आ जाय तो बजट बनते देर नही लगती, सिर्फ धर्म-कार्य के लिए तुम्हारे पास बजट नहीं है!

हे लोभी! यह आसमान से बाते करने वाली हवेलियां यही रह जाए गी। सोना तिजोरियों में धरा रह जायगा, जवाहरात डिब्बो में ही भरा रह जायगा। तुझे जब चार जने उठा कर ले जाए गे तब केवल एक चादर तेरे ऊपर डाल जी जाएगी।

तेरे शरीर पर के वस्त्र और आभूषण सब उतार लिये जाएंगे। तुझे नंगा करके विदा किया जायगा।

यों कर यों कर, यों न कर, यों किया यों होय।
कहे अकब्बर बादशाह, यों कर गया न कोय॥

अर्थात्—दान दो, अभयदान दो, पर किसी को मारो मत। किसी को मारोगे तो तुम भी मारे जाओगे। अकबर बादशाह कहते हैं--कि आज तक बन्द मुट्ठी करके कोई नहीं गया!

भाइयों! आपने सारे वर्ष मे हिंसा झूठ, चोरी, लालच आदि का त्याग नही किया तो न सही, परन्तु कल से पर्यूषण पर्व शुरु हो रहा है। अब तो संभलो। कम से कम आठ दिन के लिए तो दुकानदारी और व्यापार बन्द करके धर्म की आराधना कर लो। आप कहेगे कि महाराज. फुर्सत नही है तो मैं कहूँगा—फिर कब फुर्सत मिलेगी? जब चार जने उठाकर ले जाएंगे तब फुर्सत मिलेगी? भाई! दुनियादारी की झंझटे कभी पीछा छोड़ने वाली नही हैं। इन्हे तो जब तुम स्वय छोड़ना चाहोगे तभी ये छूट सकेगी। कुछ आगे का खयाल हो तो सभलो, अन्यथा जीवन व्यर्थ नष्ट हो जायगा।

कृष्ण कथा—

कृष्ण अपने साथियों के साथ, यमुना के किनारे गेंद खेल रहे थे। खेलते-खेलते गेंद यमुना में गिर गई। तब साथी कृष्ण को मजबूर करने लगे कि तुमने गेंद नदी मे गिराई है, अतः तुम्हीं निकाल कर लाओ।

कृष्ण ने हसते-हसते लगोटा कर गोता लगाया । यमुना मे कूदते ही वे पाताल की ओर चले गये । वहा एक नाग आराम से सो रहा था । उसकी नागिन उसके पाँव दबा रही थी । कृष्ण को वहा आया देखकर नागिन कहने लगी—हे बालक ! तू बड़ा सुन्दर है । तेरा शरीर भी दिव्य है । फिर बता, बेमौत मरने के लिए इस जगह क्यो आया है ? बच्चे ! मेरा पति नाग अभी सोया हुआ है । उसके जागने से पहले, शीघ्र ही यहां से भाग जा ।

नागिनी ! तू ही गेंद की चोर,
इम कही बोले नन्दकिशोर ।

कृष्ण कहते है-हे नागिन ! जान पड़ता है तूने ही मेरी गेंद चुराई है । ला, मेरी गेद मुझे लौटा दे । वह गेंद मेरी नही है । मैं तो उसे माग कर लाया था । गेंद मिलते ही मै चला जाऊगा ।

कृष्ण का कथन सुनकर नागिन असमजस मे पड़ गई । उसने सोचा-अनोखा जान पडता है यह बालक ! मेरे कहने पर डरा तो तनिक भी नही और मुझे चोर बना रहा है ! आखिर उसने कहा--वाचाल छोकरे ! मैं तेरी गेद लेने कब आई ! नाहक मुझे दोष लगाता है ! कहती हूँ, भाग जा । नागराज जाग जाएंगे तो जान जाने की नौबत आ जायगी । क्या तुझे जीना अच्छा नही लगता ?

कृष्ण तमक कर कहने लगे—मुझे मौत का डर नहीं है । सच्ची वात कहने मे मौत का डर मुझे नही रोक सकता । बहुत अभिमान हो तो जगा ले अपने नाग को ! देखूं, वह मेरा क्या

बिगाड लेता है ! मैं नाग की तो बिसात ही क्या, साक्षात् इन्द्र से भी नही डरता !

नागिन ने देखा कि यह छोटा बडा ढीठ है और लडने पर उतारु हो गया है तो उसने नाग को जगाया। बोली—नाथ ! देखो, यह छोरा बडा शैतान है मुझे गालियां देता है और धमकी दे रहा है !

नाग गुस्से मे उठा। उसने कृष्ण पर जोर की फुंकार मारी। कृष्ण ने भी बदले मे जोर से मुरली मारी।

शेषनाग ने क्रुध होकर हजार रूप बनाये तो कृष्ण भी कब चूकने वाले थे ? उन्होने भी हजार रूप बनाकर अन्त मे शेष नाग को नाथ लिया। उस पर सवार होकर वे बशी बजाने लगे !

आप जानते है - शैतान के सिर पर जब जूते पड़ते हैं, तब उसकी अक्ल ठिकाने आती है।

उधर कृष्ण के कालोद्रह में गिरने की खबर गोकुल गाव मे पहुची। क्षण भर मे गाव के एक छोर से दूसरे छोर तक समाचार फैलते देर न लगी सारा गांव स्तब्ध रह गया। सर्वत्र चिन्ता, शोक और घबराहट फैल गई। लोग भागे--भागे कालीद्रह पर आये। यशोदा भी रोती--चिल्लाती, छाती पीटती हुई लड़को को कोसती हुई जमना के तट पर पहुँची। यशोदा की अवस्था उस समय असह्य थी। उसका विलाप पत्थर के कलेजे को भी पिघला देने वाला था। वह कहने लगी—हाय, लोगो के तो दो--दो, चार--चार हैं ! अरे मेरे तो एक ही कन्हैया है ! उसे बचाओ उसे खोजो, उसे निकालो !

इधर नागराज परास्त हो गया तो नागिन ने दीनता दिखलाकर कृष्णजी से कहा–प्रभो ! मेरे स्वामी को छोड़ दो।

कृष्णजी मुँह मटका कर बोले वाह, कैसे छोड दूं ? यह तो मेरी सवारी है। खैर, तुम चलो, हमारे साथ ऊपर चलो। वहां हमें गेंद देना और हम इसे छोड़ देंगे।

कृष्णजी धीरे-धीरे पानी के बाहर निकले। वह मुस्किरा रहे थे और प्रसन्नता से चमक रहे थे। किनारे पर खडे लोग नाग पर सवार कृष्ण को देखकर कहने लगे—यशोधा, यह तेने लडका जाया था वलाय ? देखो तो इसकी करामात !

करे यशोदा आरती कंई, भर मोतियन थाल।
बजे ढोल अरु बासुरी, नृत्य करे गोपाल ॥

यशोदा को लक्ष्य करके लोग कहने लगे—तुम वृथा ही छाती पीट रही थी। यह कोई सामान्य बेटा थोड़े ही है—यह तो अवतार है !

यशोदा चिढकर बोली-बस, रहने दो तारीफ मत करो। इसी तरह तो उसे बिगाड रखा है सब ने ! देखो कान्ह ! आयन्दा खेलने मत जाना। तुम्हारी शरारत का पार नहीं है।

कृष्ण के मुखमण्डल पर स्मित की रेखाएँ खिच गई। बोले—भला माँ, अब कभी नही जाऊंगा।

इन्दौर
३-६-४५





राग परित्याग

स्तुति----

छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ॥
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्त शक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहा तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहां तक आपके गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! समवसरण मे जब आप विराजमान होते है तो आपके मस्तक पर तीन छत्र सुशोभित होते हैं। वे छत्र चन्द्रमा के सदृश चमकदार होते हैं। वे सूर्य की किरणो की धूप का

निवारण करते हैं, अर्थात् उन छत्रों के कारण भगवान् पर सूर्य की धूप नही पडने पाती है। उन छत्रो में मनोहर मोतियो के गुच्छे के गुच्छे लटकते हैं और उन गुच्छो के कारण उनकी सुन्दरता और भी बढ जाती है। वह तीन छत्र यह सूचित करते हैं कि तीर्थंकर भगवान् तीन भुवन के स्वामी हैं।

(यह भगवान् तीर्थंकर का चौथा प्रातिहार्य है)

भाइयो ! भगवान् ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त सब तीर्थंकरो ने तीन बातो मे धर्म बतलाया है।

कहा है—

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।'

अर्थात् —सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र, यह तीनो मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

सम्यग्दर्शन के द्वारा जीव को तत्त्व के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न होती है, ज्ञान के द्वारा जीवन आदि तत्त्वो का बोध उत्पन्न होता है और चारित्र के द्वारा सम्यग्ज्ञान द्वारा प्रदर्शित पथ पर प्रवृत्ति होती है। चारित्र से नवीन पापो का आगमन रुक जाता है और पुराने पापो का नाश होता है।

चारित्र का दूसरा नाम त्याग है। त्याग से ही आत्मा पवित्र और निर्मल बनती है। जैन हो या वैष्णव मुसलमान हो या ईसाई, सब के लिए पाप का त्याग करना ही धर्म है। इसके बिना किसी को मुक्ति नही मिल सकती।

लोग कहते है—हम स्वर्ग जाना चाहते है, हम बहिश्त में जाना चाहते हैं, हम देवलोक जाना चाहते हैं। पर उन्होने

कभी यह भी विचार किया है कि उसे प्राप्त करने का रास्ता कौन--सा है ? क्या कभी उस रास्ते पर चलने का प्रयास भी किया है ? पापों का परित्याग किये बिना स्वर्ग।और मोक्ष किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं ?

हिंसा झूठ आदि अठारह पाप हैं। किसी के प्राणो का अपहरण कर लेना तो हिसा है ही; मगर किसी को किसी भी उपाय से कष्ट देना भी हिंसा ही है। किसी के हक को छीन लेना भी हिंसा है, किसी को कष्ट पहुंचाना या कष्ट पहुंचाने का विचार करना भी हिंसा है ।

तीन योगो के आधार पर हिंसा के भी तीन भेद किये जा सकते हैं—मानसिक हिंसा वाचिक हिंसा और कायिक हिंसा । मन के द्वारा होने वाली हिंसा मानसिक हिंसा है। वचन के द्वारा जो हिंसा होती है वह वाचिक हिंसा है और शरीर द्वारा की जाने वाली हिंसा कायिक हिंसा कहलाती है।

तात्पर्य यह है कि किसी भी सूक्ष्म या स्थूल प्राणी की इच्छा के विरुद्ध आचरण करना हिंसा है।

शका की जा सकती है कि किसी शराबी की इच्छा शराब पीने की हो तो उसे रोकना हिंसा है या नही ?

इस शंका का समाधान करने के लिए लम्बे विवेचन की आवश्यकता है। पर यहा मैं सक्षेप मे ही कहूँगा। वात यो है कि हिंसा मूल मे दो प्रकार की है भावहिंसा और द्रव्य हिंसा। किसी को कष्ट पहुंचाने की भावना होना भावहिंसा है और कष्ट पहुँचाना या कष्ट पहुँच जाना द्रव्य हिंसा है। भावहिंसा एकान्त हिंसा है। जहां भावहिंसा होगी वहां पाप अवश्य

होगा। मगर द्रव्यहिंसा से पाप का बध होगा ही होगा, ऐसा एकान्त नियम नही है। डाक्टर रोगी पर दया करके, उसके दुख को दूर करने की निर्मल भावना से, चीर--फाड़ करता है। अचानक कुछ गडबड़ होने से, भरसक सावधानी रखने पर भी रोगी मर जाता है। ऐसी स्थिति मे डाक्टर मनुष्य की हत्या के पाप का भागी नही होता। न कानून उसे अपराधी ठहराता है और न शास्त्र उसे पापी ठहराता है। इसका कारण यही है कि डाक्टर की भावना हिंसामयी नही थी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भावहिंसा की मौजूदगी मे ही द्रव्यहिंसा पापरूप होती है।

इस प्रकाश मे अब प्रस्तुत प्रश्न पर विचार करो। जो व्यक्ति शराबी को शराब पीने से रोकता है, क्या उसके चित्त में उसे कष्ट पहुंचाने का भाव है? क्या उसे वह हानि पहुंचाना चाहता है? शराब पीने से रोकने वाले के अन्त:करण मे द्वेष का दावानल सुलग रहा है अथवा करुणा की कल्लोलिनी प्रवाहित हो रही है? मानना पड़ेगा कि जो शराबी को शराब पीने से रोक रहा है, वह शराबी का भला चाहता है। ऐसी स्थिति मे वह हिंसा के पाप का भागी नही हो सकता। कोई अज्ञान बालक जहर की शीशी उठा कर पीने को उद्यत हुआ है और एक समझदार आदमी उसे पीने से रोक देता है तो वह पाप नही कर रहा है। इसी प्रकार साधुगण झूठ बोलने वाले, चोरी करने वाले, और व्यभिचार करने वाले को उपदेश देकर रोकते हैं, तो इसमे हिंसा मानना उचित नही है।

कोई लड़का शाला मे पढ़ने के लिए नही जाता। उसके माता-पिता उससे कहते हैं—अगर शाला में नहीं जाओगे तो तुम्हे भोजन नही मिलेगा।

भाइयों! बताओ, क्या माता-पिता को अपने लड़के से द्वेष है?

'नही!'

ठीक है। इसी कारण वे हिंसा करने वाले पापी नही कहे जा सकते। बल्कि वे उस बालक के हितैषी कहलाते हैं। इसी प्रकार हम आपको पाप न करने का उपदेश देते हैं पाप करने से बचाना चाहते हैं, अतएव पापी नही कहला सकते।

हम हित के लिए कुछ कटुक कहा करते हैं,
दवा होगी असर जो कड़वी दिया करते है।
सुकृत को तज जो पाप किया करते है,
वे अमृत तज कर विष सेवन करते है ॥

भाइयो! हमारा तो यही कहना है कि पापो का परित्याग करो, वर्ना चौरासी के चक्कर मे भटकना पड़ेगा। कीड़ी से लेकर कुंजर तक सब प्राणियो की दया करो। भगवान् ने 'माहण, माहण' अर्थात् मत मारो, ऐसा उपदेश दिया है। इस उपतेश पर ध्यान दो।

भाइयों! राग और द्वेप ही हिंसा आदि पापो को उत्पन्न करने वाली जुगल जोड़ी है। राग एक घोर पाप है। किसी भी वांछित वस्तु पर प्रीति होना राग कहलाता है। राग से आत्मा कलुषित होती है। राग से द्वेप उत्पन्न होता है। राग और द्वेष का जोड़ा है। एक वस्तु के प्रति यदि राग होगा तो दूसरी वस्तु के प्रति द्वेप भी अवश्य होगा जिस आत्मा मे राग होगा उसमे द्वेप अवश्य होगा।

राग भाव अनादि काल से आत्मा के साथ लगा हुआ है। इस राग की आग मे आत्मा झुलस रहा है। राग ही केवलज्ञान केवलदर्शन और यथाख्यात चारित्र मे बाधक है। ज्यो ही राग भाव निर्मूल हो जाता है त्यो ही आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग चारित्र का अधिकारी हो जाता है। जिसने राग को जीत लिया, वही 'जिन' कहलाता है और जिन भगवान् की वाणी पर श्रद्धा रख कर उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने वाला जैन कहलाता है। इस प्रकार जैन के गुण धारण करने पर ही सच्चा जैनत्व आता है। नहीं तो:—

नाम तो लछमी बाई,
छाना वीणे वन मांई।

वाली उक्ति चरितार्थ होती हैं। 'जैन' कहलाने मात्र से कल्याण नही होगा। मोक्ष तो दूर की बात है, देवलोक भी दुर्लभ है।

भाइयो ! 'सूरजमलजी के घर मे अंधेरा' क्या यह आश्चर्य की बात नही है ! क्या इसी प्रकार मुक्ति प्राप्त होगी ?

नाम से क्या काम है, गुण का मान है सब ठौर ही।
देगा सुगंध गुलाब सबको, चाहे नाम रक्खो और ही॥

गुलाब का नाम भले ही कोई आक रख ले, क्या वह खुशबू नही देगा ? और आक का नाम गुलाब रख देने पर भी क्या वह कभी खुशबू दे सकता है ?

मोड़ीरामजी नाम वाले सेवाभावी और आगेवान भी

देखे गये हैं और शाणी (स्यानी) बाई कलह की मूर्त्ति भी देखी गई ! तात्पर्य यह है कि नाम से लोक व्यवहार मात्र होता है, काम नही होता। अतएव सच्चे जैन बनने के लिए जिनधर्म का सेवन करना आवश्यक है। जैन कुल में जन्म ग्रहण कर लेने अथवा जैन कहलाने मात्र से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नही होगा। असली बात तो राग और द्वेष को जीत लेने की है।

राग चार प्रकार का होता है—(१) कामराग (२) स्नेहराग (३) दृष्टिराग और (४) भाषाराग।

काम-वासना बढ़ाने वाली वस्तुओं से स्त्री आदि के शरीर से राग करना-स्नेह बढाना कामराग कहलाता है।

स्नेहराग—बाल-बच्चो से, भाई-बहिनो से तथा बाप-दादा आदि से स्नेह होना स्नेहराग कहलाता है।

दृष्टिराग—सुन्दर रूप, नाटक, सिनेमा आदि देखने की रूचि होना।

भाषाराग-कानों से प्रिय वचन, उन्मादकारी राग रागिनियाँ एव विलासपूर्ण शब्दो को सुनने की रुचि होना।

इस राग रूपी रिपु का दमन करने का यह अवसर है। यह पर्युषण पर्व इसीलिए आया है। आपने खा-पीकर शरीर को बहुत मोटा बना रक्खा है। यही कारण है कि आपकी आत्मा कमजोर होकर निर्बल हो गई है। इस पर्वाधिराज के सुअवसर पर खूब वेला, तेला, और अठाई करो, जिससे शरीर चाहे दुवला प्रतीत हो पर आत्मा प्रबल बन जाय !

पजूसन पर्वराज आया रे, पजूसन पर्वराज आया ।
सब जीवो की करो दया, ये संदेशा लाया ॥ पजूसन० ॥

यह पर्युषण पर्व हमारे लिए अहिंसा का पवित्र सदेश लेकर आया है। भाइयो ! और बाइयो ! खूब धर्म ध्यान करो, अपनी आत्मा को पहचानने का प्रयत्न करो, वीतराग प्रभु की वाणी सुनो, अपने विकारो का अवलोकन करके उन्हे दूर करने का दृढ़ सकल्प करो, अपनी बहिर्मुखी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाओ; मानव-जीवन की सफलता की राह खोजो।

इन पवित्र दिनो मे क्या गुजरात, क्या काठियावाड़, क्या मेवाड, क्या मारवाड, क्या उत्तर भारत और क्या दक्षिण भारत मे सर्वत्र धर्मध्यान का ठाठ लग रहा होगा। कई जगह पचरगिया और नौरगिया हो रही होगी। भाइयो ! तुम भी अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या करो। यह पर्व तपस्या का पर्व है, यह आत्मानन्द को प्राप्त करने का महामगलमय पर्व है, यह परम शान्ति का झरना है इसकी आराधना करने से आत्मा की कुण्ठित शक्तियां तीक्ष्ण हो जाती हैं चमकने लगती हैं।

ससार मे त्यौहार बहुतेरे हैं और पर्व भी बहुत-से आते हैं, परन्तु यह पर्युषण पर्व अपने ढङ्ग का अनोखा पर्व है। नवरात्रि मे जीवों की बलि दी जाती है और दशहरा तो हिन्दुओ की बकरा-ईद के समान ही बन गया है दीपावली पर विकलेन्द्रिय-कीट-पतग आदि का स्वाहा होता है। इस प्रकार यह त्यौहार जहा कुछ लोगो के लिए आनन्ददायक होते है तो हजारो-लाखो जीवो की निर्दय मौत का रूप भी धारण करके

आते हैं। उनके लिए भयानक अभिशाप बन जाते हैं !

होलिका के त्यौहार पर मनुष्य बिलकुल पागल बन जाते हैं ! सभ्यता और शिष्टता को भी भूल जाते है। तीज विषय-वासना की वृद्धि करने वाला त्यौहार है। रक्षा बन्धन पर्व करोड़पति की पत्नि को भी भिखारिन बना कर भाई के सामने हाथ पसारने की प्रेरणा करता है। इस प्रकार एक मात्र पर्यूषण पर्व ही आध्यात्मिक दृष्टि से हितकारक पर्व है। इसी कारण वह त्यौहारो का शिरोमणि है।

इस पर्व के अवसर पर ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्राप्ति एवं अभिवृद्धि करनी चाहिए। सामायिक के द्वारा समभाव के संस्कारो से आत्मा को समुज्ज्वल बनाना चाहिए। पौषध व्रत का आचरण करके आत्मिक शक्तियो का पोषण करना चाहिए। हरितकाय एव सचित्त जल का त्याग करके एकेन्द्रिय जीवो तक अपनी करुणा का विमल स्रोत बहाना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करके आत्मा को सबल और शक्ति सम्पन्न बनाने का प्रयास करना चाहिए। व्यापार-धन्धा तो जिंदगी का साथी है। वर्ष मे आठ दिन के लिए यदि उससे छुटकारा ले लिया जाय और वह समय स्वाध्याय, ध्यान, आत्म चिन्तन, तत्त्व-मनन, शास्त्रचर्चा आदि मे लगाया जाय तो महान् लाभ हो सकता है।

रात्रिभोजन तो सर्वदा ही त्याज्य है। यह अंधा भोजन है। तथापि वर्षाकाल मे वह और भी अधिक हानिकारक है, क्योंकि उस समय मे जीव जन्तु बहुतायत से उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव जो लोग सदा के लिए रात्रि भोजन का त्याग न कर सकते हो, उन्हे भी वर्षाकाल मे अवश्य त्याग देना चाहिए।

जो लोग इतना भी नही कर सकते उन्हे कम से कम पर्यूषण पर्व के दिनो मे तो त्यागना ही चाहिए।

प्रतिक्रमण के सम्बन्ध मे लोगो की धारणा भ्रमपूर्ण बनती जा रही है । वे प्रतिक्रमण जैसी अत्यन्त पावन क्रिया को भी ढोग या दिखावा कहते सकोच नही करते । यह उनका भ्रम है। मगर हमे यह भी देखना चाहिए कि लोगो मे इस प्रकार का भ्रम क्यो उत्पन्न होता है? कदाचित् प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने वालों ने ही तो इस भ्रम को उत्पन्न करने का अवसर प्रदान नही किया है? हम दूसरो का दोष देखने चले, इससे अच्छा तो यही है कि पहले अपने ही दोषो पर विचार करे। बात यह है कि प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने वाले भाई जब केवल रूढि के रूप मे ही प्रतिक्रमण के पाठो का उच्चारण कर लेते हैं, उन पवित्र पाठो का जब उनके जीवन-व्यवहार पर कोई प्रभाव पड़ा नही दिखता तो लोग प्रतिक्रमण को महत्त्वहीन समझने लगते है। इसी कारण प्रतिक्रमण जैसी आत्मशोधक क्रिया के प्रति अश्रद्धा व्यक्त करने का अवसर आता है। अतएव जो भाई दैनिक प्रतिक्रमण करते है, उन्हे मेरी सूचना है कि वे प्रति-क्रमण करते समय जिन पापो के लिए 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहते हैं, उन पापो को दूसरे जीवन-व्यवहार के समय मे भी त्याज्य समझे और उनसे बचें । तभी उनकी आत्मा का भी उत्थान होगा और तभी प्रतिक्रमण का महत्त्व बढ़ेगा और फिर किसी को उसके विषय मे गलत धारणा बनाने का अवसर भी नही मिलेगा ।

इसी प्रकार सामायिक करने वालो के अन्तःकरण में समभाव का कुछ न कुछ विकास होना चाहिए। सामायिक न

न करने वालों की अपेक्षा सामायिक करने वालो के जीवन मे जब विशेष समभाव औदार्य एवं पवित्रता दिखाई देगी तो स्वतः लोग सामायिक की महिमा समझने लगेंगे। सामायिक करने वालो का जीवन ही सामायिक की महत्ता का प्रतीक बन जायगा। अतएव सामायिक अवश्य करो, प्रतिक्रमण भी अवश्य करो, परन्तु ऐसा करके अपनी वृत्तियो को भी पवित्र बनाओ।

उत्तम करणी कीजे, पुण्य से मनुज–जन्म पाया।
बेला तेला करो पचोला, पचखो अठायां ॥

भाइयो जो शूर वीर होगा, वही इस कठिन कार्य मे सहयोग दे सकेगा। कायरों की यहाँ दाल नही गल सकती। उनका काम नही कि वे तपस्या के उग्र मार्ग मे आगे कदम बढ़ा सकें।

भगवान् महावीर संसार में असाधारण तपस्वी हो गये हैं। उनकी तपस्या महान् और आदर्श थी। उनकी तीव्रतर तपस्या का वर्णन मात्र सुनने से रोमांच हो आता है। भगवान् का निर्वाण हुए २४७२ वर्ष हो चुके हैं। उनसे पहले भगवान् पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थङ्कर हुए और उनसे भी पहले भगवान् नेमिनाथ, जिनका दूसरा नाम अरिष्टनेमि भी है, हुए हैं। सक्षेप में आज उनका पावन चरित आपको सुनाने की इच्छा है। उससे आपको पता चलेगा कि राग का त्याग किस प्रकार किया जाता है!

अन्धकवृष्णि और भोजकवृष्णि दो भाई थे। भोजकवृष्णि का शासन मथुरा में था और अन्धकवृष्णि का सौरीपुर में। अन्धकवृष्णि के दस पुत्र थे। सबसे बड़े का नाम समुद्रविजय

और सबसे छोटे का नाम वसुदेव था। श्रीकृष्ण इन्ही वसुदेव के पुत्र थे। वसुदेव का दो रानियो मे से देवकी से कृष्णजी और रोहिणी से बलरामजी का जन्म हुआ था।

सौरीपुर के राजा समुद्रविजय की पत्नी का नाम शिवादेवी था।

श्री नेमि जिनंद का चरित, मनोहर श्रोता सांभलो !
उसी समय सौरीपुर मांही, समुद्रविजय दरबार।
महारानी सिवा देवीजी, सूती सेज मंझार ॥

भाइयो ! कृष्ण का जन्म मथुरा मे हुआ था। उनके जन्म का वृत्तान्त मैं बतला चुका हू। नेमिनाथजी का जन्म सौरीपुर में हुआ था।

रानी शिवा देवी ने एक बार पिछली रात्रि के समय चौदह महास्वप्न देखे। वे चौदह स्वप्न यह थे—(१) ऐरावत हाथी (२) वृषभ (३) सिंह (४) लक्ष्मी (५) हार (६) चन्द्र (७) सूय (८) ध्वजा (९) पद्म (१०) क्षीर सागर (११) देव विमान (१२) रत्नो की राशि (१३) निधर्म अग्नि और (१४) पुष्पमाला।

इन महान् शुभ स्वप्नों को देखने के कारण महारानी शिवा देवी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह उसी समय जागृत होकर शय्या से उठ बैठीं और अपने पतिदेव समुद्रविजयजी के शयनागार मे पहुँची। मगलगान गाकर पतिदेव को जागृत किया।

समुद्रविजयजी के जागने पर महारानी ने अपने स्वप्नों

का वृत्तान्त कहा । महाराज को भी अतीव प्रसन्नता हुई । उन्होने कहा अपने यहाँ कोई बड़ा सौभाग्यशाली चक्रवर्ती पुत्ररत्न उत्पन्न होगा ।

कार्तिक कृष्ण द्वितीया के दिन, चित्रा नक्षत्र मे, चौथे अनुत्तर विमान से चव कर शख राजा का जीव शिवा देवी की कुक्षि मे आया और श्रावण शुक्ला पचमी की अर्ध निशा मे, चित्रा नक्षत्र मे महारानी ने पुत्र का प्रसव किया ।

भाइयों ! कथा को कहानी के रूप मे, दिल बहलाने के लिए नही सुनना चाहिए, किन्तु उसमे से फलित होने वाले आदर्शों की ओर ध्यान देना चाहिए । इस कथा से प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में पति और पत्नी भी एक शय्या पर शयन नहीं करते थे । इतना ही नही, बल्कि उनके सोने के कमरे भी अलग-अलग होते थे । एक ही कमरे में सोने से भी विषय-वासना की जागृति होती है तो जो लोग एक ही शय्या पर शयन करते है, उनकी कैसी दयनीय दशा न होती होगी ! ऐसा करके वे अपने शरीर को निर्बल, निस्तेज और निकम्मा बना लेते हैं । कहते है, पहले अकाल मृत्यु नही होती थी और आजकल की मौत न बचपन देखती है, न जवानी देखती है । वह क्या बूढे, क्या बालक और क्या युवा, सबको समान रूप से अपना ग्रास बना लेती है ! इस प्रकार लोग मौत को तो दोष देते हैं, मगर अपनी करतूतो को नही देखते । स्वय न्योता दे-देकर मौत को बुलाते हैं और जब वह आ जाती है तो उसे कोसते हैं ! पति-पत्नी का एक शय्या पर सोना मौत को बुलावा देना ही है । इससे आयु क्षीण होती है और सन्तान इतनी

निर्बल, निष्प्राण और निस्तेज होती हैं कि वह भी प्रकृति के हल्के से आघात से चल बसती है ।

वीर्य का नाश करना जीवन का नाश करना है और वीर्य की रक्षा करना जीवन की रक्षा करना है । कहा भी है—

मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात् ।

अतएव जो दीर्घ जीवन की अभिलाषा रखते है, जो अकाल मृत्यु के पंजे मे नही फँसना चाहते और साथ ही जो हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ सन्तति देखना चाहते हैं, उन्हे एक ही भवन मे एक ही शय्या पर नही सोना चाहिए ।

हाँ, तो इधर भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ और उधर शकेन्द्र का आसन कपायमान हुआ । इन्द्र ने अपने अवधि-ज्ञान का उपयोग लगाकर देखा तो पता चला कि त्रिलोकीनाथ का जन्म हुआ है ।

इन्द्र तत्काल चलकर माता शिवादेवी के पास आया । छप्पन दिक्कुमारियो ने अशुचिनिवारण किया । इन्द्र ने कहा—

"धन्ने णं रयणकुक्खिधारए"—(ज्ञाता)

हे रत्न कुक्षिधारिणी ! तुझे हमारा प्रणाम है !

इसके अनन्तर माता को निद्राधीन करके इन्द्र भगवान् को मेरु पर्वत पर लाया । वहां ६४ इन्द्रो ने मिलकर भगवान् का जन्माभिषेक मनाया । तत्पश्चात् उन्हे माताजी के पास लाकर सुला दिया । इन्द्र ने स्वर्ग को प्रस्थान किया और वहा जाकर अठाई उत्सव मनाया ।

जब देवगण चले गये तो महाराजा समुद्रविजय को खबर मिली कि पुत्ररत्न का जन्म हुआ है।

अब तो आनन्द चौ चन्द हुआ,
राजा को परमानन्द हुआ ।
सम्पूर्ण देश में हर्ष मना,
ऐसा अपूर्व आनन्द हुआ ॥

अन्तःपुर में सन्नारियां उल्लास के साथ मंगलगान गाने लगी। बड़े ही ठाठ के साथ उत्सव मनाया जाने लगा। सम्पूर्ण नगर अत्यन्त सुन्दरता के साथ सिगारा गया। मनुष्य की उत्कृष्ट कलाप्रियता मानों सजीव हो उठी। जिधर देखो, हर्ष, उल्लास और आनन्द ही आनन्द बिखरा पड़ा था।

महाराज समुद्रविजय ऐसे अपूर्व और असाधारण अवसर पर भी दान और परोपकार को न भूले! वह बड़ा आदमी किस काम का जो हर्ष के अवसर पर स्वयं ही खा-पी लेता हैं, स्वयं ही विनोद कर लेता है और मौज उड़ा लेता है। सच्चा बड़ा आदमी वही है जो अपने हर्ष मे दूसरों को सम्मिलित करता है, जो सुख के समय मे दीन--दुखियो का स्मरण करता है। समुद्रविजयजी ऐसे ही विवेकशील थे। उन्होने इस अवसर पर दानशालाएं खुलवा दी। कारागार से समस्त बन्दी मुक्त कर दिये गये महाराजा ने हर्ष विभोर होकर मोती लुटवाये!

धीरे-धीरे वारह दिवस वीत गये। कुंवर का नामकरण संस्कार हुआ। कुमार की माता को अरिष्ट रत्न का स्वप्न आया था, अतएव उनका नाम भी अरिष्टनेमि रक्खा गया।

अरिष्टनेमि का नाम वेदो में भी आया है। कहा है–'ॐ रक्ष, रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा।' इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अरिष्टनेमि वेदों की रचना होने से पहले ही हो चुके हैं। जैन गणना के अनुसार उनका समय बहुत प्राचीन है।

भगवान् अरिष्टनेमि के नाम का मन्त्र समस्त पापो और विघ्नों को दूर करने वाला है !

भगवान् का शरीर अत्यन्त सुन्दर था। उनके शरीर पर १००८ शुभ लक्षण थे।

लगभग दो या अढ़ाई वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन माता शिवादेवी वसन्तोत्सव मनाने के लिए बगीचे में गई। कुमार अरिष्टनेमि भी उनके साथ ही थे। उनके लिए पलना भी साथ ले जाया गया था। पलना भी साधारण नही. राजसी था। रत्नो का बना था। सोने की सांकले उसमे लगी थी। किसी छायादार वृक्ष की शाखाओ मे पलना डालकर कुमार को लिटा दिया गया। माताजी चित्त-विनोद के लिए अपनी सहेलियो के साथ बगीचे मे कही इधर-उधर चली गई।

उधर स्वर्गलोक मे इन्द्र की सभा जुडी थी। इन्द्र ने अपने ज्ञान से जाना कि भगवान् अरिष्टनेमि आनन्द के साथ सो रहे हैं। उसने प्रसन्न होते हुए कहा—इस समय संसार मे अरिष्टनेमि के समान शक्तिशाली कोई दूसरा नही है। शिशु अवस्था होने पर भी उनकी शक्ति अजेय है।

सभी देवों ने इन्द्र की बात का समर्थन किया, किन्तु एक देव की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न हुआ। उसे इन्द्र के कथन पर विश्वास न हुआ। उसने अरिष्टनेमिजी की परीक्षा लेने की

ठानी। देव उसी समय स्वर्ग से चल पड़ा और उस बगीचे में आकर, पलने मे से उन्हे उठा कर आकाश मे चल दिया। जब अरिष्टनेमिजी की नीद खुली और उन्हे अपने अवधिज्ञान से पता चला कि देव उठा कर मुझे ले जा रहा है तो उन्होने अपना अंगूठा दबाया। देव वजन के कारण घबरा उठा और धड़ाम से धरती पर जा गिरा।

देव की इस दुर्बुद्धि का पता इन्द्र को लगा। वह भी उसी समय भगवान् के पास आ पहुचा। उसने भगवान् से क्षमा-याचना की। भगवान् को पूर्ववत् पलने मे शुला कर, उस देव के साथ इन्द्र स्वर्गलोक लौट गया।

लोक मे कहावत है— दुबला देख कर लड़ना नही और मोटा देख कर डरना नही। लम्बा--चौडा डीलडौल हो जाने में ही पराक्रम नही है पराक्रम तो कुछ और ही वस्तु है।

एक तेलन और एक तेली तेल पी-पीकर मोटे--ताजे हो रहे थे और उस गाव का ठाकुर दुबला--पतला था।

एक दिन तेलन ने ठकुरानी से कहा—ठकुरानी साहिबा ! आपके पति बहुत दुबले--पतले है। वे क्या गाव की रक्षा कर सकते हैं ? तेलन की बात सुनकर ठकुरानी चुप रही। उसनें कुछ भी उत्तर नहीं दिया। जब ठाकुर साहब भीतर गये तो ठकुरानी ने तेलन की बात उनसे कह दी। ठाकुर ने उपेक्षा प्रकट करते हुए कहा—उँह ! छोटो की बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

थोडे दिन बाद उस गाँव मे डकैत आ धमके। ठाकुर कवच, टोप, तलवार, बन्दुक आदि से लैस होकर घोड़े पर

सवार हुआ। दुबला-पतला शरीर था और शौर्य चढा हुआ था। ठाकुर अपने जवानो को साथ लेकर चला। नगाड़े बजने लगे। निशान फहराने लगे। धूमधडाके की ध्वनी सुनकर, घानी मे से खल निकालता हुआ तेली भी हाथ में लोहे की सब्बल लेकर बाहर आया।

ठाकुर घोडे से नीचे उतरा। उसने तेली के हाथ से सब्बल छीन ली और मरोड कर उसी के गले मे डाल दी। अब उसका बाहर निकलना मुश्किल हो गया। ठाकुर डकैतो के सामने गया और उन्हे भगाकर वापिस लौट आया।

तेली बेचारा परेशान हुआ। वह लुहार के पास पहुंचा। लुहार ने कहा—न तो यह निकल सकती है और न कट ही सकती है; क्योकि यहां घन की चोट नही लगाई जा सकती।

तेली बड़ा निराश हुआ। निराशा में क्रोध का पारा चढ आता है। उसने घर आकर अपनी औरत से कहा—रांड कही की तू ने ही यह बलाय मेरे गले में डलवाई है! अब जा, ठकुरानीजी के निहोरे कर। वही मेरा पिण्ड छुड़ाएगी।

राजपूत रमणियां अगर सिहानी के समान होती हैं, तो दयालु भी होती हैं। ठकुरानी ने तेलन की बात सुनकर और उस पर दया करके तेली के गले की बलाय निकालने की ठाकुर से प्रार्थना की। ठाकुर बोले—अब यह मेरी शक्ति के बाहर की बात है। जब वैसा ही कोई दूसरा अवसर आएगा तभी वह सब्बल सीधी हो सकेगी।

आखिर कुछ वर्षों बाद एक अवसर फिर आ गया। ठाकुर युद्ध के लिए जाने लगा और शौर्य के रस मे डूब गया

तो तेली उसके सामने पहुंचा। प्रार्थना की--महाराज मेरे प्राण बचाइए। ठाकुर ने जोर लगाया और सब्बल सीधी कर दी।

तात्पर्य यह है कि शक्ति बाहरी डीलडौल में नही रहती। वह तो आन्तरिक पराक्रम पर निर्भर है।

तो अरिष्टनेमि कुमार बालक्रीडाएं करते हुए बढने लगे। क्रमश; पांच, दस और पन्द्रह वर्ष के हुए। एक दिन खेलते-खेलते वे आयुधशाला मे जा पहुचे। वहाँ के अधिकारियो ने, मित्रो के साथ अरिष्टनेमि का स्वागत किया और सारंग धनुष तथा पाचजन्य शख आदि का परिचय दिया। साथ ही उन्होंने कहा-आप इन्हे हाथ न लगाइएगा। इनका उपयोग वासुदेव कृष्ण महाराज के सिवाय और कोई नही कर सकता।

नेमिकुमार ने सोचा--हम इतने निर्बल हैं? और उन्होंने सारग धनुष चढा कर पांचजन्य शंख फूंक दिया। सारी द्वारिका नगरी गूंज उठी। तहलका मच गया। उस समय कृष्णजी सो रहे थे। शखध्वनि सुनकर उनकी निद्रा टूट गई और चौक उठे। सोचने लगे यह मेरे समकक्ष कौन विजेता खड़ा हो गया? जल्दी-जल्दी आयुधशाला मे पहुचे। देखा तो नेमिकुमार वहाँ मुस्कराते हुए खड़े थे। कृष्ण को नेमिकुमार की इस अद्भुत शक्ति का पता नहीं था। उनके विस्मय का पार नही रहा। पूरी तरह कुमार की शक्ति का पता लगाने के लिए कृष्ण ने हंसकर अरिष्टनेमि से कहा--चलो नेमि, अखाड़े मे चलें।

दोनों भाई अखाडे मे पहुँचे। कुमार ने कृष्णजी की भुजा झुका दी परन्तु कृष्णजी नेमिकुमार की भुजा तिल भर भी नही झुका सके।

यह सब देखकर कृष्णजी को चिन्ता होने लगी। उन्होंने बलराम से कहा – भैया, अरिष्टनेमि मे तो बडी ताकत है। जान पड़ता है, वह तीन खण्ड का नही, सम्पूर्ण छह खण्डों का राज्य करेगा !

बलराम बोले—सम्भव है !

कृष्ण ने कहा—अरिष्टनेमि का शीघ्र से शीघ्र विवाह कर देना चाहिए, ताकि उसकी बढ़ती हुई शक्ति पर नियन्त्रण लग जाय।

इसके बाद श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमि के विवाह के सम्बन्ध मे ही सोचने लगे। उन्हें खयाल आया–अरिष्टनेमि अत्यन्त सुन्दर हैं। उन्हे अनुरूप ही कन्या न मिली तो वह विवाह करने से इन्कार कर देंगे। उन्हे उग्रसेन की कन्या राजुल का ध्यान आया। राजुल से अरिष्टनेमि का विवाह कर देना श्रीकृष्ण ने मन में निश्चित कर लिया।

उग्रसेन को सन्देश भेजा गया। उन्होने उत्तर दिया आप यदुवंशी लोग सामने डोला मँगवाते है। मैं ऐसा नही करना चाहता। आप मेरे यहा बरात लेकर आना स्वीकार करें तो मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है।

श्रीकृष्ण ने बरात ले जाना स्वीकार कर लिया। बराती सज-सज कर तैयार हुए। यदुवंशियो की यह पहली बरात थी। साथ मे कृष्ण, बलराम, समुद्रविजय आदि सभी प्रमुख व्यक्ति थे। इस बरात की शोभा का वर्णन करना सम्भव नहीं।

रास्ते में शक्रेन्द्र ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके

कृष्ण से कहा—महाराज ! क्यों वृथा बरात ले जाने का कष्ट कर रहे हैं ? अरिष्टनेमि तो विवाह करने वाले हैं नही !

ब्राह्मण का अयाचित परामर्श सुनकर कृष्णजी चिढ गये। उन्होने कहा—आप अपना रास्ता लीजिए। आपसे किसने भविष्य पूछा है ? किसने आपको विवाह का निमन्त्रण दिया है ? शुभ प्रसग पर अशुभ बात कहना विद्वानो को शोभा नही देता।

बरात चलती-चलती उग्रसेन के राजमहल के निकट आई। राजमहल के एक बाड़े मे बहुत-से पशु-पक्षी बन्द थे। अरिष्टनेमि की दृष्टि उन पर जा पडी। उन्होने सारथी से पूछा - यह पशु-पक्षी क्यो इकट्ठे किये गये हैं ?

सारथी ने उत्तर दिया—नाथ ! आपकी बरात में जो मांस-भोजी बराती हैं, उनके भोजन के लिए।

अरिष्टनेमि का करुणा कलित अन्तःकरण कांप उठा ! बोले—अररर ! यह सारा पाप मेरे निमित्त से होगा ? क्या इन पशुओं को मुक्त नही किया जा सकता ?

अरिष्टनेमि कुमार की आन्तरिक अभिलाषा का अनुमान करके सारथी ने बाड़े का द्वार उन्मुक्त कर दिया। सब पशु भर-भराकर भाग खड़े हुए। सारथी के कार्य से प्रसन्न होकर कुमार ने उसे अपने शरीर पर धारण किये हुए आभूषण उतार कर पुरस्कार मे दे दिये। स्वय तोरण पर से वापिस लौट गये।

कृष्ण आदि समझा-समझा कर हार गये, परन्तु अरिष्टनेमि के चित्त मे वैराग्य की प्रबल हिलोर उठ पड़ी थी। भव-

भव की साधना के संस्कार, उनकी आत्मा पर गहरा असर डाल रहे थे। उनका अन्तःकरण वासनाविहीन था। वे अलिप्त भाव से ही रहते थे। पहले ही से उन्हे ज्ञान था कि मेरा विवाह होने वाला नही है। वे विवाह करना भी नही चाहते थे। परन्तु पहले ही इन्कार कर देते तो करुणा और दया का ऐसा प्रबल आन्दोलन न होता। उस समय की प्रजा के सामने दया का अनूठा आदर्श उपस्थित करने के लिए ही उन्होने बरात की आयोजना का विरोध नही किया। सचमुच, अरिष्टनेमि के इस महान् त्याग से लोगों की आँखे खुल गई। जगत् ने जीवदया का सबल सन्देश सुना नेमिकुमार ने मौन भाव से जो सदेश फैलाया; उसका जादू का सा प्रभाव पड़ा। जनता के सामने एक नवीन दृष्टिकोण उपस्थित हो गया। बड़ी भारी क्रान्ति हुई। आखिर अरिष्टनेमि अविवाहित ही रहे और गिरिनार पर्वत पर जा कर दीक्षित हो गये। उनके साथ १००० राजाओ और राजपुत्रो ने भी दीक्षा ली।

अरिष्टनेमि के तोरण से लौट जाने का सम्वाद सुनकर राजुल कुमारी की क्या दशा होगी, यह अनुमान करना भी कठिन है। उसका नवनीत मृदुल हृदय आहत हो गया। उसकी व्याकुलता और व्यथा का क्या ठिकाना था? राजुल एक तो मूर्छित हो गई। शीतोपचार से होश मे आने पर उन्हे जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। उस ज्ञान से उन्होने जाना कि हम दोनो नौ भवो के साथी हैं। पिछले नौ जन्मो मे हम पति पत्नी के रूप मे रहते रहे है।

राजुल ने अरिष्टनेमि के पास सन्देश भेजा– हम नौ भवों के साथी हैं। अब इस दासी का परित्याग क्यो करते हैं ?

अरिष्टनेमि ने उत्तर भेजा - परित्याग कैसा ? मैं तुम्हारे महल तक जाकर तुम्हें निमन्त्रण दे आया हूं। मैं न दीक्षा ली है और तुम भी इसी पथ पर आ जाओ।

राजुलजी की आत्मा भी उज्ज्वल थी। उनका चित्त भी वैराग्य के गहरे पक्के रंग में रंग गया। उनके माता-पिता ने दूसरा सुयोग्य वर खोजने का आश्वासन दिया, विवाह के लिए आग्रह किया, मगर राजुलजी तो उसी समय से वैरागिन बन चुकी थी, जिस समय नेमिकुमार वापिस लौटे थे ! राजुलजी ने किसी के अनुरोध और आग्रह को स्वीकार नही किया। दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। आखिर ७०० राजकन्याओं के साथ उन्होंने भी दीक्षा धारण कर ली।

भगवान् नेमिनाथ के कुल १८००० साधु थे और ४०००० साध्वियां थीं।

भगवान् नेमिनाथ ने दीक्षा लेकर तीव्र तपस्या आरम्भ की थी। अब आपको भी अपने विषय में विचार करना है। आप माल खा-खाकर मोटे हो होना चाहते हैं या तपस्या करके अपनी आत्मा को बलवान बनाना चाहते हैं ? यह निर्णय करना आपके ही जिम्मे है। तपस्या करके आत्मा को तेजोमय बनाओगे और भगवान् अरिष्टनेमि की तरह राग का त्याग करोगे तो आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

इन्दौर }
४-९-४५ }





द्वेष-दावानल

स्तुति—

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्त शक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहां तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहां तक आपके गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! आपका स्वर्ण-वर्ण का शरीर, कुन्द के फूलों के समान सफेद रङ्ग के चामरों से इस प्रकार शोभायमान होता है, जैसे सुमेरु पर्वत का ऊंचा सुनहरा शिखर, उदीयमान

चन्द्रमा के समान धवल वर्ण की झरने की धाराओ से सुशोभित होता है ।

भाइयो ! इस पद्य में बहुत ही सुन्दर उपमालंकार से भगवान् ऋषभदेव की शारीरिक सम्पत्ति का वर्णन किया है। भगवान् आदिनाथ का शरीर सुनहरे रंग का था। उस सुनहरे रंग के शरीर पर सफेद रंग के चँवर देवता ढोर रहे थे। उस समय का दृश्य ऐसा मनोहर लगता था, मानों सुमेरु पर्वत के सुनहरे शिखर पर चन्द्रमा के समान निर्मल और धवल झरने को धारा प्रवाहित हो रही है ! यहां भगवान् के शरीर को सुमेरु के ऊंचे तट के समान कहा है। वह इस कारण कि भगवान् का शरीर सर्वोत्कृष्ट अवगाहना वाला, अर्थात् पाच सौ धनुष का था ।

आपने कभी चँवर ढुलते तो देखा होगा ! चँवर नीचे आता है तो ऊंचा भी जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो नीचे झुकेगा नम्रता धारण करेगा, वही ऊपर उठ सकेगा । नम्रता कब आती है ? मैं पूछता हूँ—'आम्रवृक्ष कब झुकता है ?"

'जब उस पर फल आते हैं ।'

इसी प्रकार जब आप अपने जीवन को सफल बनाएंगे। अर्थात् पाप को त्याग कर धर्म की वृद्धि करेंगे, सद्गुणों से युक्त होंगे, तभी आप भी झुक सकेंगे। कहा है :-

साधु वन्दन जाइए, तज माया अभिमान ।
जेता जेता डग भरे, तेता यज्ञ समान ॥

जब आप सन्तों को वन्दना करने जाएँ तो कपट और और अभिमान को छोड़ कर जाइए। लोग समझते हैं कि आग मे वस्तुओं को जला देना यज्ञ है, परन्तु नहीं, यज्ञ तपश्चर्या का नाम है, जिसमें पापो को जलाकर भस्म किया जाता है और जिससे आत्मा निर्मल हो जाती है।

पिछले कुछ दिनों से मैं एक एक पाप के विषय मे प्रतिदिन किंचित् व्याख्यान कर रहा हूँ। कल राग के विषय मे कहा गया था। आज द्वेष पर थोडा विचार करना है। भगवती सूत्र में द्वेष को ग्यारहवां पाप बतलाया है।

किसी भी अनिष्ट वस्तु पर अप्रीति या घृणा पूर्ण भाव होना द्वेष कहलाता है। द्वेष आत्मा को विवेकहीन बना देता है। अविवेक की स्थिति मे मनुष्य न करने योग्य काम करता है, न बोलने योग्य शब्दों को बोलता है। और नही विचारने योग्य बातों का विचार करता है।

द्वेष एक प्रकार की अग्नि है। यह अग्नि जब हृदय में भड़कती है तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है। वह उस आग से दूसरो को जलाना चाहता है। दूसरे जले अथवा न जलें, वह स्वयं तो बुरी तरह जल ही जाता है।

द्वेषी पुरुष दूसरे का उत्कर्ष सहन नही कर सकता। उसने किसी की बडाई सुनी और उसके दिल में द्वेष का दावानल दहक उठा! जैसे चुपचाप चले जाते राहगीर को देखकर कुत्ता निष्कारण ही भौंकने लगता है, उसी प्रकार किसी भी सौभाग्यशाली को देखकर द्वेषी जलने लगता है!

अरे भले मानुसो! क्यो व्यर्थ द्वेष करते हो? भाग्यवान्

अपने साथ पुण्य लाया है! तुम्हारे जलने से क्या उसका पुण्य भस्म हो जायगा? तुलसीदासजी कहते हैं—

खोलन हिरदय अति ताप विसेखी।
जरइ सदा पर सम्पति देखि ॥

द्वेषी के दिल में, परकीय सम्पदा देख--देख कर निरन्तर जलन होती रहती है।

सीताजी की प्रशंसा सुनकर कुछ दुष्टा स्त्रियाँ जलती हैं! धर्मात्माओं को कीर्त्ति सुनकर कितने ही दुःख मनाने लगते हैं! यहां तक कि वे धर्म को ही ढोंग या धुर्तिग कहकर अपने द्वेष की आग को बुझाना चाहते हैं! द्वेषी पुरुष को किसी का कोई सद्गुण पसन्द नहीं आता। वह सद्गुण मे भी दुर्गुण का आरोप कर देता है।

कुछ लोग कहते हैं—धर्म के इस ढकोसले ने हमारे देश को डुबा दिया! पर वे नही जानते कि धर्म नहीं होता तो जीवित रहना भी कठिन क्या असंभव हो जाता। माता अपने मातृधर्म का पालन न करती, पिता अपने पितृधर्म का पालन न करता, तो तुम्हारी क्या हालत होती?

भाइयो! यदि सब अपना-अपना धर्म त्याग दें तो संसार की सारी ही व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाय! आंखें देखना छोड़ दें, कान सुनना छोड़ दे। इसी प्रकार सभी अंगोपांग अपना--अपना धर्म छोड़ दे तो कितने दिनो तक आप जिंदा रहने की आशा करते हैं?

मानव समाज से धर्म उठ जाय तो मनुष्य की हालत

कुत्ते से भी बदतर हो जायगी। माता और पत्नी, पति और पुत्र मे फिर क्या अन्तर रह जायगा ? धर्म उठ जाने के पश्चात् क्या मर्यादा शेष रह जायगी ?

धर्मद्वेषियों की तरह कोई-कोई साधु द्वेषी भी होते हैं। वे साधु महात्माओं की निन्दा करने पर उतारू रहते हैं। कहते हैं—अजी यह साधु मुंह बांध-बाँध कर हराम का खाते हैं। यह समाज पर बोझ बने हुए हैं। परन्तु महात्मा उन पर भी द्वेषभाव धारण नही करते। भले ही साधु उन पर भी समभाव रक्खें, परन्तु अपने पाप का प्रायश्चित्त तो उन्हे करना ही पड़ता है।

एक बार कुछ महात्मा एक साधुद्वेषी के घर आहार-पानी के लिए चले गये। यो साधु ऐसे घर मे भिक्षा के लिए नहीं जाते, जहां वह अप्रीतिकर हों। शास्त्र मे ऐसी जगह गोचरी के लिए जाने का निषेध है।

अचियत्तं कुलं न पविसे, चियत्तं पविसे कुलं।

अर्थात्—जिस घर में जाने से, घर के स्वामी को अप्रीति हो उस घर में साधु को भिक्षा के लिए प्रवेश नही करना चाहिए। सिर्फ उसी घर में प्रवेश करना चाहिए, जहां जाने पर गृहस्वामी को प्रीति उत्पन्न हो, उसका रोम-रोम हर्षायमान हो जाय।

मगर उन महात्माओं को पता नहीं था कि इस घर का स्वामी साधुद्वेषी है, अतएव वे उसके घर मे चले गये। महात्माओं के लौट जाने के पश्चात् उसने सारे घर को धुल-

वाया। परिणाम यह हुआ कि वह लखपति से दरिद्र हो गया। दाने-दाने को मोहताज हो गया। यह द्वेष का फल है। हमारी आंखो देखा यह किस्सा है।

पत्थर की चट्टान से सिर टकराने वाले का ही सिर फूटता है। पत्थर का कुछ नही बिगड़ता।

मिश्री की डली मीठी होती है। बालक, युवा और वृद्ध, सभी को समान रूप से मीठी लगती है। किसी को कटुक नही लगती, सबको आनन्दायिनी है। वह जात-पांत का विचार नही करती, अमीर-गरीब में भेद नही करती, जो भी उसका सेवन करता है, उसी को माधुर्य प्रदान करती है। परन्तु कोई मूर्ख मिश्री के कु जे से अपना ही सिर फोड़ ले तो इसमे मिश्री का क्या दोष है?

इसी प्रकार महात्मा पुरुषो की सेवा-भक्ति की जाय तो आनन्द ही आनन्द हो जाता है और उनके विरुद्ध व्यवहार करने से सर्वनाश भी हो सकता है। इसमे महात्मा का किया कुछ नही होता, क्योकि महात्मा सब पर समभाव रखते हैं। वे किसी का बुरा करने का तो सोच ही नहीं सकते। करने वाले का पाप ही उसका सर्वनाश करता है।

आपको ईश्वर से मिलना है तो द्वेष को छोड़ दो। द्वेष की पोशाक पहनने वालों से ईश्वर मुलाकात नही करता।

देखो, कुत्ते आपस में लड़ते हैं तो उनकी जाति एक २ कुत्ती के चार २ आठ २ बच्चे होने पर भी अधिक सख्या बढ़ती नही है परन्तु बकरे आपस में नही लड़ते। इतना ही नही, उनमें आपस में इतनी सहानुभूति होती है कि एक बकरा दूसरे बकरे पर पैर रखकर भी पत्ते खाता है। इस सहानुभूति के

कारण, हजारों बकरों का प्रतिदिन कत्ल होने पर भी उनकी संख्या बढती ही चली जाती हैं।

भाइयो! तुम मानव हो। मानव, प्राणी जगत् का शिरोमणि है। उसका मन अधिक विकसित है, उसकी विचार-शक्ति प्रबल है, उसको व्यक्त भाषा प्राप्त है। इन सब विशिष्टताओं के होते हुए उसकी आदतो मे भी कुछ विशिष्टता-ऊँचापन होना चाहिए। कम से कम कुत्तो की आदतों से तो बचना ही चाहिए।

चाहो अगर आराम तो तुम द्वेष करना छोड़ दो।
कुछ फायदा इसमे नही, तुम द्वेष करना छोड़ दो॥
द्वेषी मनुज की देख सूरत, खून बरसे आंख से।
नसीहत लगती नही तुम द्वेष करना छोड़ दो॥

भाइयो! शान्ति चाहते हो, आराम चाहते हो तो द्वेष करना छोड़ दो। द्वेषी के दिल मे दहकती हुई आग उसकी आंखों मे चमकती है, इसी कारण तो उसकी आंखो मे ललाई झलकती है।

अच्छे कपड़े पहने तो सासूजी नाराज हो गई। बढ़िया गहने पहने तो जेठानी अकड़ गई। यह सब द्वेष का ही परिणाम है।

द्वेषी का दिल कभी आकुलता रहित नही होता। उसका हृदय मानों धूनी है, जिसमे आग सदा धधकती ही रहती है। वह हमेशा दूसरे का बुरा सोचता है। 'अच्छा हो, अमुक के घर चोरी हो जाय, अच्छा हो, अमुक का बच्चा मर

जाय।' इस प्रकार का दुर्ध्यान उसके मन में होता रहता है। वह दूसरों का भला नही सोचता !

पर हे द्विष्ट ! दूसरे का बुरा होने से तेरे हाथ मे क्या आ जायगा ? तू ईश्वर से दूसरे के बुरे के लिए कितनी ही प्रार्थनाएं कर; परन्तु ईश्वर तो वीतराग है। वह तेरी प्रार्थनाओं को कदापि स्वीकार नही करेगा। उसे ऐसे कामों के लिए अवकाश ही नही है। ईश्वर ऐसी प्रार्थनाएं सुनने लगे और स्वीकार करने लगे तो वह ईश्वर ही न रह जाय !

कोई किसी की तारीफ करे और द्वेषी वहाँ बैठा हो तो वह मुंह फिरा लेगा। उसे तारीफ शूल सी चुभेगी।

किसी दूसरे का लडका आपके वस्त्रों पर धूल उछाल दे तो बतलाओ; आप क्या करेंगे ?

'दो-चार थप्पड़ लगाएंगे !'

और जब आपका ही बालक आपके वस्त्रों पर टट्टी-पेशाब कर देता है तब आप क्या करते हैं ?

'धो-धुला लेते हैं !'

बस, यही राग-द्वेष का प्रत्यक्ष उदाहरण है। पराये लड़के को धूल उछालने के बदले ही थप्पड़ मारने को तैयार हैं और अपने लड़के को मल मूत्र कर देने पर भी चुपचाप बर्दाश्त कर लेते हैं।

देख कर सरदार को सखी या धनवान को।
क्यों जले ऐ बेहया, तू द्वेष करना छोड़ दे ॥

दूसरे को धनवान, दानी या अधिकारी के रूप मे देख कर तू क्यों जलता है ? अगर उनके पास सामग्री है तो इसका कारण यही है कि वे पुण्य कमा कर आये है। तू भी पुण्य कर। द्वेष करके क्यों आत्मा को जलाता है ?

धवल सेठ ने श्रीपाल से द्वेष किया। उसने श्रीपाल को हजारो प्रयत्न करके मारना चाहा। पर आपने सुना होगा कि उसका कुछ भी न बिगड़ा। आखिर धवल सेठ की ही हानि हुई। इसीलिए मैं आपसे बार-बार कहता हू कि द्वेष करना छोड़ दो।

एक बार एक कबूतर सकट मे पड गया। उसके ऊपर बाज चक्कर लगा रहा था, नीचे से शिकारी ने निशाना ताक रक्खा था और तीसरी ओर से नाग आक्रमण करने को तैयार था। परन्तु—

जाको राखे साइयां, मारि सकै ना कोय।

साप ने विचार किया-कबूतर को डंसने ऊपर जाऊंगा, तब तक वह उड़ भी सकता है, तो फिर इस भूचारी मनुष्य को ही क्यो न डस लिया जाय ? ऐसा सोचकर सांप ने शिकारी को ही अपना शिकार बना लिया। घबराहट मे शिकारी का हाथ तिर्छा हो गया और तीर हाथ से छूट गया। वह तीर ऊपर की ओर जाकर बाज को लगा और बाज परम धाम पहुँच गया। इस प्रकार व्याध और बाज दोनो के समाप्त हो जाने पर कबूतर संकटरहित होकर उड़कर चला गया।

उड़ती चिड़िया फंसी जाल में, उसका प्रभु रखवाला।
कोई किसी का बुरा न चाहो, होवेगा मुंह काला॥

भाइयो ! क्यों किसी का बुरा चाहते हो ? सब का बुरा भला उनके अपने कर्मों के अनुसार होता है। तुम दूसरे का बुरा चाहकर अपना ही बुरा कर सकते हो। अतएव अपनी भावना को कलुषित मत करो।

भगी, चमार, बलाई आदि के प्रति भी द्वेष न करो। वे भी तुम्हारे भाई हैं। वे भी तुम्हारी सेवा-सहायता करते है। याद रक्खो, उनसे द्वेष किया तो तुम्हे भी भगी, चमार आदि बनना पड़ेगा। एक महात्मा ने द्वेष किया था तो उन्हें चाण्डाल कुल मे जन्म लेना पड़ा था। मालूम है आपको उनका नाम ? उनका नाम 'मेतार्य' था।

हाकिमी गर अफसरी, गर नौकरी किसकी लगे।
क्यों बने नाराज तू, तुम द्वेष करना छोड़ दो।

अगर दूसरें की पद--मर्यादा बढ़ती है तो आपके अन्तःकरण मे आग क्यो जलती है ? कोई हाकिम बनता है जज बनता है या और कोई ऊंचा पद पाता है तो आपका क्या बिगड़ता है ?

कोई पंच बनाया जाता है तो दूसरा सोचता है-वाह, वह पंच कैसे बन गया ? उसे सभापति क्यों बनाया गया ? पर भाई, तेरा इसमें क्या बिगड गया ? मगर द्वेषी आदमी पर उपदेश का भी तो कोई असर नही पड़ता ! उसके हृदय मे तो निरन्तर आग जलती रहती है !

कृष्णजी ने कस का क्या बिगाढ़ा था ? फिर भी कंस उनसे द्वेष ही करता रहा ! अन्त मे उसी को परिणाम भुगतना पड़ा !

जो लोग साधुओं से द्वेष करते हैं, उन्हे भी थोड़ा सोचना चाहिए। साधु एक घर से लाकर खाते नही हैं। वे अपना बोझा उठाने के लिए मजूर रखते नही हैं—स्वयं अपना बोझा लादते हैं। नाई से बाल बनवाने के लिए पैसे भी मागते नही हाथ से बाल उखाड लेते हैं। कभी गाजा, भग, अफीम, चरस, चण्डू आदि का उपयोग करते नही हैं। वे न आपसे हाथ--पैर दबवाते हैं, न कभी सवारी की फरमाइश करते हैं। भगवान् ने उन्हे लघुभूत विहारी बतलाया है। उनका आपके ऊपर कुछ भी तो भार नही है। फिर उनसे क्यो द्वेष करते हो? मगर द्वेषी लोग तो इन बातो पर विचार ही नही करते। उन्होने रामचन्द्र और सीता जैसी सन्नारी को भी नही छोडा।

कुछ लोगों ने श्रीराम पै जादू डाला,
सती सीता को दिलवाया देशनिकाला।
क्या कुसूर था कहो सीता महारानी में ?
ये लोग लगा देते है आग पानी में ? ॥

और हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन भाइयों! तुम धर्म या जाति के नाम पर आपस मे द्वेष मत करो। विभिन्न धर्मों के अनुयायी होने के कारण द्वेष करने की क्या आवश्यकता है? दुनिया का कोई भी धर्म द्वेष करना नही सिखलाता। फिर भी धर्म के नाम पर द्वेष किया जाता है! वस्तुतः धर्म की आड़ लेकर द्वेष करना अपने धर्म को बदनाम करना है। इसी प्रकार अपनी जाति और समाज से भी द्वेष मत करो।

न हो प्रेम आपस में, मुहब्बत हो न भाई की।
वह मुर्दा कौम है जिसमें न बू हो एकताई की॥

भाइयों ! आप उनसे द्वेष करते हैं जो गोरक्षा में धर्म समझते हैं। आप उन हिन्दू भाइयो को गैर समझते हैं जो अछुत कहलाते हैं ! परन्तु जब वे आर्य धर्म का परित्याग कर देते हैं और ईसाई धर्म को अंगीकार करके गोभक्षक बन जाते है, तब आप उनसे परहेज नही करते। उनसे हाथ मिलाने मे अपना अहोभाग्य मानने लगते हैं। अरे, यह सब क्या है ? यह तुम्हारा कैसा विवेक है ? तुम होश में हो या नहीं ?

लो अछूतों को छाती लगा हिन्दुओ,
वर्ना ये लाल गैरों के घर जाएंगे ॥

भाइयो ! यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही हैं। इनके प्रति घृणा-द्वेष करोगे तो वे विधर्मी बन जाएंगे। अगर तुम्हें धर्म से प्रेम है तो उस धर्म के अनुयायियो से भी प्रेम होना चाहिए। यह तुम्हारे धर्म प्रेम की अचूक कसौटी है।

और—

खिदमते धर्म पर जो कि मर जाएंगे,
नाम दुनिया में रोशन वे कर जाएंगे।
टूट जाये न माला कहीं प्रेम की,
वरना अनमोल मोती बिखर जाएंगे ॥

गांधीजी ने अछूतों में बैठ कर उन्हे अपने गले लगाया। यही कारण है कि आज नौ करोड़ अछूत, ईसाई मुसलमान बनने से बच गये।

भाइयों ! तुम्हें जातिगत द्वेष का परित्याग करके मनुष्य

मात्र से प्रेम करना सीखना होगा। मानव मात्र को भाई समझ कर गले लगाना होगा।

बुजदिलो छोड़ के मैदान में आना होगा,
हिन्दुओ ! अब तुम्हें कुछ करके दिखाना होगा।
मर मिटो शौक से पर धर्म न छोड़ो भाई,
बेजबानों की तरह, मार न खाना होगा।।

आपका किला टूट चुका है। केवल दरवाजे बच रहे हैं। दुश्मन तुम्हारे घर मे घुस रहे हैं। सोचो, समझो सावधान हो जाओ।

मैं यह नही कहता कि आप भगी और चमार के साथ बैठकर भोजन करे। यह भी नही कहता कि ऐसा नही करें। इस सम्बन्ध मे आप स्वतन्त्र हैं। मैं तो सिर्फ यह कहता हूं कि अविवेक को त्याग कर विवेक से काम लो। उनके प्रति घृणा मत रक्खो, द्वेष धारण न करो। उनके प्रति मानवोचित व्यवहार करने मे तो कोताई मत करो।

ख्वाबे गफलत से उठो, भाइयो ! आंखें खोलो।
संगठन कौम का मजबूत बनाना होगा।।

अब तक आपने क्या किया है ? किसी ने किसी के साथ खाना खा लिया या किसी के हाथ का पानी पी लिया तो बस, कर दिया उसे जाति से बाहर ! अरे, खाना खा लिया है तो क्या जुलाब नही दे सकते हो, पानी पी लिया है तो मूत्रविरेचन नही करा सकते हो; जाति से बाहर क्यो करते हो ? यों कर-करके आपने अपने पथ को कंटकाकीर्ण बना लिया है !

आपने न मालूम कितने भाइयों को विधर्मी और विजातीय बना दिया है! और अब भी कहाँ सावधान हो रहे हो? अब भी तो उसी रफ्तार से चल रहे हो! मगर आँखे खोलो। वह जमाना बीत गया है!

भाइयों! धर्म का आधार समाज है। समाज सुव्यवस्थित होगा तो धर्म का पालन यथोचित रूप से हो सकता है। अगर समाज ही विशृंखल हुआ तो धर्म का पालन होना कठिन हो जाता है। इसी दृष्टिकोण से धर्मोपदेशको को भी समाज की स्थिति पर विचार करना पडता है और सामाजिक स्थिति को सुधारने की प्रेरणा करनी पड़ती है।

जिस समाज की स्त्रियां विधर्मी हो रही हो, जिस समाज मे अनाथो और वृद्धों के लिए कोई व्यवस्था न हो, उस समाज की रक्षा किस प्रकार हो सकती है? यह उपेक्षा और अव्यवस्था समाज का घुन हैं, जो समाज को कुतर-कुतर कर खोखला कर देगा। अतएव आपको धर्म की रक्षा के लिए अपनी सामाजिक स्थिति का सावधानी के साथ अवलोकन करना चाहिए। जहां कही त्रुटियां दिखलाई दे, वहाँ सुधार करना चाहिए। सच्चे धर्म-प्रेम का तकाजा है कि उस धर्म के अनुयायियों से भी प्रेम किया जाय। अगर आप इस नीति पर चलेंगे और धर्मात्माओ के प्रति वात्सल्य की भावना रक्खेगे तो आपका समाज भी सुव्यवस्थित रहेगा।

होकर मनुष्य मनुष्य क करते अगर दया नहीं।
फिर कहां रही मनुष्यता, कहती है दुनिया यही॥

भाइयों! मनुष्य का कर्त्तव्य बहुत ऊंचा है। उसे न

केवल मनुष्य पर ही, बल्कि समस्त प्राणियो का बडा भाई होने के कारण, प्राणी मात्र पर दयाभाव रखना चाहिए। उसके विशाल हृदय मे प्राणी मात्र के प्रति सहानुभूति की सद्भावना होनी चाहिए। कदाचित् इतनी मनुष्यता न आ पाय तब भी कम से कम मनुष्य के प्रति तो दयाभाव रहना ही चाहिए। जो प्राणी मात्र पर करुणा भाव रखता है वह मनुष्य के रूप मे देवता है। जो मनुष्य, मनुष्य मात्र पर दया करता है, वह मनुष्य है। जो मनुष्य होकर भी मनुष्य पर दया नही रखता, उसमे मनुष्यता नही है। वह मनुष्य के रूप मे पशु से भी बदतर है। और जो मनुष्य, मनुष्य पर घृणा-द्वेष रखता है, उसके विषय में क्या कहा जाय ?

देख गजसुकुमाल को, द्वेष सोमल ने किया।
दुर्गति उसको हुई, तू द्वेष करना छोड़ दे ॥

सोमल ब्राह्मण ने गजसुकुमार मुनि को देखकर द्वेष किया। उनके मस्तक पर कच्ची मिट्टी की पाल बाध कर दहकते हुए अगार रख दिये। मुनि ने तो सोमल की करतूत को भी अपनी मुक्ति का साधन समझा; परन्तु सोमल की क्या दशा हुई? उसे नरक का कीट बनना पडा।

पाण्डवों से कौरवो ने, कृष्ण से फिर कंस ने।
विरोध करके क्या लिया, तू द्वेष करना छोड़ दे ॥

भाइयो! कौरवो ने पाण्डवो से द्वेष करके अपने कुल के सर्वनाश को निमंत्रित किया। कंस ने कृष्णजी से द्वेष करके राजपाट ही नही, अपने प्राणो से भी हाथ धोए। यह सब बातें आपसे छिपी नही हैं। जानते आप सब कुछ हैं, परन्तु उस

जानकारी से क्या लाभ उठा रहे हैं, यह भी विचार करो।

द्वेष करके कभी किसी ने लाभ उठाया है? जिससे द्वेष किया, वह अपने द्वेष की आग मे स्वय जल मरा। अतएव द्वेष सदा हानिकारक ही है।

आधुनिक युग में द्वेष का एक नवीन रूप उत्पन्न हो गया है। उसे राजनीतिज्ञ लोग वर्ग-विद्वेष कहते हैं। इस वर्ग विद्वेष के मूल मे आर्थिक वैषम्य की प्रधानता है। गरीबो की संख्या अधिक है और अमीर थोडे हैं। अमीरो के भोग--विलास और आनन्द को देखकर गरीबों के हृदय मे असहिष्णुता उत्पन्न हो रही है। इसमे सन्देह नही कि यह विषमता प्रशस्त नही है। जो लोग रात-दिन कड़ी मेहनत करते हैं उन्हे खाने को रूखी रोटी और पहनने को मोटा वस्त्र भी न मिले और जो मसनद के सहारे बैठे–बैठे ऊंघते रहते हैं, वे मौज करें, इस व्यवस्था का अन्त आने वाला है। मगर अमीर वर्ग और गरीब वर्ग में परस्पर द्वेष का उत्पन्न होना और भी बुरा है। समाज के ढाचे में प्रेमपूर्ण परि-वर्त्तन होना ही वाञ्छनीय हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि व्यक्तिगत, जातिगत, धर्मगत और वर्गगत द्वेष हानिकारक ही है। उससे अशान्ति की वृद्धि होती है और दूसरी–दूसरी बुराइयाँ भी उत्पन्न होती हैं अतएव द्वेष का प्रत्येक क्षेत्र में परित्याग किया जाना ही श्रेयस्कर है। जो द्वेष के दावानल से दूर रहेगा वह शान्ति का, सुख का और श्रेयस् का भागी होगा। उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

इन्दौर }
५-६-४५ }

किरणो से युक्त सूर्य का विम्व सुशोभित होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे उदयाचल के शिखर पर सूर्य का विम्व सुन्दर प्रतीत होता है, उसी प्रकार मणियों से झिलमिल झिलमिल करते हुए सिंहासन पर भगवान का शरीर शोभा पाता है। (यह भगवान का दूसरा प्रातिहार्य है)

भगवान तीर्थंकर सिंहासन पर विराजमान होकर चराचर जीवो के कल्याण के लिए धर्म का उपदेश करते थे। धर्म वह है जो आत्मा को पतित होने से बचाता है। आत्मा के पतन के कारण अठारह पाप है। अतएव पापों से बचना ही धर्म की आराधना कहलाती है। कल उनमे से द्वेष के विषय में कहा गया था। द्वेष के पश्चात् वारहवां पाप कलह है। आज इसके सम्बन्ध मे कुछ कहना है।

कलह अनर्थों का मूल है। आपस के कलह से लड़ाई झगड़े से क्या-क्या हानियां होती हैं और कितने भयानक अनर्थ होते हैं, यह बात लोक में घटित होने वाली घटनाओ से ही जानी जा सकती है। कलह के परोक्ष फल की बात थोड़ी देर के लिए जाने भी दीजिए और प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक फल का ही विचार कीजिए तो भी यह विदित हुए विना नही रहेगा कि कलह कितना दुष्फलदायक होता है। कलह की वदौलत कई घरों का सर्वनाश हो गया।

देखो भाई—भाई झगड़े,
कोर्टो के बीच रखड़े।
अभिमान बीच अकड़े,
निर्लज्जपन यह धारा॥

इस फूट ने बिगाड़ा,
मिटे फूट हो सुधारा ॥

खानदेश का जिक्र है। भाइयों-भाइयों मे कलह हुआ। मुकदमेबाजी हुई! बर्बाद हो गये। लड़ते-लड़ते परेशान हो गये, थक गये तो आपस मे फैसला हुआ।

कलह के कारण मनुष्य ऐसा बेभान हो जाता है कि कुछ न पूछो। भाई, भाई को मां को गाली तक देने लगता है! कितनी शर्म की बात है! कुत्ते भौंकते हैं, एक दूसरे को काटते है, पर गाली, तो नही देते! कुत्ता कहता है—रे मानव तू सभ्यता और शिष्टता की दुहाई देता है, धर्म और नीति की बातें बनाता है, विवेक और विचार की डीग हाकता है, फिर भी आपस में गालिया देने से नही हिचकता! हम कुत्ते आपस मे लडकर ही रह जाते है, गालियां तो नही देते। पर तू तो लड़ता भी है और गालिया भी देता है!

भाइयो! बताओ, कलह करके गाली-गलौज करने वाले को कुत्तो से नीची और क्या उपाधि दी जाय?

भारतवर्ष—शूरवीरों की यह जन्मभूमि पराधीन क्यों हुई? इसकी पराधीनता का प्रधान कारण कलह ही है। पृथ्वीराज और जयचन्द के इतिहास का विचार करो। फिर राजपूताना के राजाओं के सम्बन्ध मे सोचो। सर्वत्र फूट और कलह का साम्राज्य ही नजर आएगा। इस कलह ने देश को तबाह कर दिया! उसकी समृद्धि का सत्यानाश कर दिया।

आगवत से डर जरा, तू क्लेश करना छोड़ दे,
महावीर का फर्मान है तू क्लेश करना छोड़ दे।
जहां लड़ाई वहां खुदाई हो जुदाई ईश से,
इत्तफाक गौहर क्यों तजे; तू क्लेश करना छोड़ दे ॥

भाइयों! सप के मोतियों को क्यो बिखेरते हो? कलह के कारण आप ईश्वर से दूर हो जाओगे। पारस्परिक प्रीति का नाश हो जायगा। फूट आकर अड्डा जमा लेगी।

ना बंटे लड्डू लड़ाई बीच कहावत जगत में,
वेजा कहे बेजा सुने, तू क्लेश करना छोड़ दे ॥

लडाई में लड्डू नही मिलते। आप जैसे शब्दों का उच्चारण करेंगे वैसे ही शब्द, प्रतिध्वनि की भांति आपके कानो मे आकर टकराएगे। इसलिए अपशब्दो का उच्चारण न करो। कलह न करो। कलह का भूत सिर पर सवार हो जाता है। तो मनुष्य पागल होकर अंटसट बकने लगता है। माँ बहिन और बाप-बेटे की गालिया देने लगता है। एक कहता है तू ने घर का लोटा बेचा तो दूसरा कहता है— तू ने अपनी लुगाई का लँहगा बेचा! भाई क्या यह भलमनसाहत है? यह शिष्टता है? क्या इस प्रकार लड़ाई—झगड़ा करने से किसी की प्रतिष्ठा बढ़ी है? सभी लोग ऐसे कलह प्रिय व्यक्तियों पर घृणा बरसाते हैं। उन्हें तुच्छ समझते हैं। वे दूसरो की निगाह मे गिर जाते हैं। यही नहीं कलहखोर मनुष्य के मस्तिष्क में से जब कलह का भूत निकल जाता है तो वह स्वय ही अपने दुर्व्यवहार के लिए लज्जित होता है। उसको पश्चात्ताप होता है।

क्लेश करने वाले लोग पहले बातों से झगड़ते हैं, फिर गालियों पर उतर आते हैं और फिर जूतो से लड़ते हैं। यहां तक कि कभी-कभी तलवारें और लाठियां भी चल पड़ती हैं।

पूजा करे ले जूतियों से, बल्कि ले हथियार को।
सजा याफ्ता भी बने, तू क्लेश करना छोड़ दे ॥

जब किसी को गहरी चोट आ जाती है तो पुलिस हथकड़ी-बेड़ियाँ डालकर ले जाती है! मगर वह झगड़ाखोर फिर भी अकडकर कहता है—बेड़ियां पड़ गई तो क्या हुआ? उसके तो भरे बाजार मे जूते जमा दिये!

वाह भाई वाह! क्या बहादुरी है! ऐसे लोग अपनी नाक कटाकर भी दूसरो का अपशकुन करना अच्छा समझते हैं! अरे दूसरे की इज्जत लेने वाले! क्या तेरी इज्जत नही चली गई? तू ने अपने कुल मे दाग नही लगा लिया? याद रख, तुझे तो अपनी सन्तान का भले घर मे सम्बन्ध करना भी कठिन हो जायगा! मगर कलह का प्रेत यह सब सोचने का अवसर ही नही देता! कलह का आवेश बुद्धि को बेकार कर देता है।

श्वान कहे सुन मानवी, म्हे भी लड़ां भिड़ां।
म्हों तो पाछा एक वां, थांको न मिटै धड़ा तड़ां ॥

कुत्ते लड--झगड़ कर बाद में साथ--साथ रह लेते हैं, परन्तु मनुष्य तो वर्षों तक वैमनस्य रखते हैं, कभी—कभी तो जिन्दगी भर भी झगड़ा नही मिट पाता है। चाय-पार्टी में मुसलमान और ईसाई के साथ भोजन कर लेंगे, रेल की पटरी पर अछूत के पास बैठकर खा लेंगे परन्तु तड़ पड़ने पर अपने

ही भाइयों के साथ भोजन नही करेंगे ! यही नही, उनके साथ कलह करेगे, झगडा करेगे ! यह सब क्या है ? ऐसे लोगों की मानवता क्या उन्हे धिक्कार नही देती ?

जूतों को बगल मे दबा लेंगे, तीसरी श्रेणी के रेल के मुसाफिर खाने मे जूतों को सिरहाने रखकर सोएगे, मगर चमार से घृणा करेगे !

क्लेश और कलह से आत्मा मलीन हो जाती है। सास और बहू, देवरानी और जिठानी, श्वसुर और दामाद और समधी-समधी कलह की बदौलत एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं ।

एक बार दो भाइयों में आपस में झगडा हो गया । दोनों खूब लड़े। यह बात मेरे सामने आई। मैंने उन्हे समझाया। तब बड़े भाई ने तिजोरी की चाबियां लाकर छोटे भाई के सामने रख दीं और कहा—भैया, लो, यह सब संभालो और हमारे खाने-पीने का भी तुम्ही प्रबन्ध करो ।

छोटा भाई आंखों में आंसू भर कर बड़े भाई के पैरों में गिर पड़ा। उसने उत्तर दिया भाई, मैं क्षमा चाहता हूं। चाबियां मुझे नहीं चाहिए। आपको जैसा ठीक लगे सो कीजिए ।

भाइयो ! यह है प्रेम का नमूना ! कलह के अभाव में ऐसे देव-दुर्लभ दृश्य दिखाई देते हैं। परन्तु —

सेंट्रल जेल बीच तुझको, याद रख रखवाऊँगा !
ऐब तक जाहिर करे तू क्लेश करना छोड़ दे ॥

जब कलह का भूत भेजे में भर जाता है तो आदमी कहता है—मैं समझ लूंगा एक महिने का ब्याज नही आया! तीन महीने का वेतन नही मिला! पर तुझे जेलखाने की हवा न खिलाई तो मेरा नाम नही!

अरे भाई! तेरा नाम है ही कहां? तेरा तो बदनाम है और वही रहेगा। अपना भला चाहो तो क्लेश करना छोड दो।

जिन खेतो मे गेहूँ, चने, ज्वार आदि पैदा होते है, उनमें किसी वर्ष अनाज न बोया जाय तो क्या उगता है?

'धतूरा!'

बस, इसी तरह जब सज्जन पुरुष घर मे न हो तो कलहशील धतूरे घर मे पैदा हो जाते हैं।

जो भ्राता एक ही थाल में करते भोजन प्यार।
सरे सड़क पर उन्हें पीटते, न कोई चौकीदार॥
फूट अब कर जा मुंह काला, तू ने फूंक दिया संसार।
जिनके महलों में रातों दिन, लगा रहा दरबार॥
उन महलों में बोल रहे हैं, घुग्घू और सियार।
फूट अब कर जा मुंह काला, तू ने फूक दिया संसार॥

री फूट! अब भारत से विदाई ग्रहण कर। तूने सारे देश को बर्बाद कर दिया है। हजारो घर मिट्टी मे मिल गये हैं। सैकड़ो राजप्रासाद धूलि-बन गये हैं। तेरी ही कृपा से भारत दीन और दरिद्र हो गया है! लाखो-करोडो निर्धन बिना झोंपड़ी अपनी जिन्दगी बिता रहे है इस सब दुरवस्था का मूल पारस्परिक कलह ही है।

रावण विभीषरण से लड़ा, पहुचा विभीषण राम पै।
देखो नतीजा क्या मिला, तू कलह करना छोड़ दे ॥

लंका का प्रतापो राजा रावण सीताजी को हरण करके ले गया। उसके भाई विभीषण ने रावण से प्रार्थना की–बन्धुवर ! इस जलती गाड़र को घर बाहर निकाल दीजिए, अन्यथा सारी लंका भस्म हो जायगी।

रावण के सिर पर भूत सवार था। उसे हित–अनहित का विचार नहीं रहा था। उसने विभीषण का अपमान किया और झगडा करके उसे निकाल दिया। परिणाम यह हुआ कि विभीषण ग्यारह अक्षौहिणी सेना के साथ राम के साथ मिल गया।

उस अक्ल पै पत्थर पड़ जावे,
उस सभा से बिजली टूट पड़े।
वह घर ही क्या रह सकता है,
जहां भाई–भाई में फूट पड़े ॥

जहाँ भाई-भाई मे फूट पड़ जाय और एक भाई दूसरे भाई के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो जाय, वहाँ कुशलक्षेम कहां ? रावण को उस फूट का फल भुगतना पड़ा। भाई–भाई का कलह कितना बुरा होता है, यह समझने के लिए सैकडों पौराणिक और लौकिक उदाहरण विद्यमान हैं। एक उदाहरण और लीजिए:—

हार हाथी के लिए, कुणिक चेड़ा से भिडा।
हाथ कुछ आया नही, तू क्लेश करना छोड़ दे ॥

मगध के अधिपति राजा श्रेणिक के सबसे बडे लड़के का नाम कोणिक था और सबसे छोटे का नाम विहल्लकुमार था। राजगृह का राज्य कोणिक को मिला था। विहल्लकुमार को जागीरी आदि कुछ न मिलकर केवल एक मूल्यवान सुन्दर हार और एक असाधारण हाथी मिला था।

कोणिक की पत्नी का नाम पद्मा था पद्मा वस्तुत "बाका पग बाई पद्मा का" वाली कहवत के अनुसार कुछ अभिमानिनी भी थी।

विहल्लकुमार की रानियां उस हाथी पर सवार होकर जलक्रीडा करने जाया करती थी। हाथी बडा विनोदी था। जलक्रीडा के समय वह रानियो को सूंड मे पकड़ कर स्नान कराया करता था। विहल्लकुमार के सौभाग्य और वैभव को देखकर कुछ लोग जलने लगे।

कुछ स्त्रियो ने महारानी पद्मा के कान भरे - 'तुम भले ही राज्य की अधीश्वरी कहलाओ परन्तु विहल्लकुमार की पत्नियों का सा वैभव तुम्हारे पास कहा है ? कहा उतना बढिया हार और कहां वैसा सुन्दर हाथी है तुम्हारे पास ? राज्य का मुकुट तो असल मे यही दो वस्तुए हैं।'

पद्मा के दिल मे भी ईर्षा की आग सुलग उठी। उसने कोणिक से हार और हाथी प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। कोणिक ने सरल भाव से उत्तर दिया--विहल्लकुमार भी जब मेरा

ही है तो उसका हार और हाथी पराया कैसे हो सकता है ?

पद्मा ने उत्तेजित होकर कहा—रहने भी दीजिए यह आत्मीयता और यह उदारता ! जरा एक बार माग कर तो देखिए ! वे दे दे तो जानू ँ !

कोणिक—अच्छा कल ही लो ।

दूसरे दिन कोणिक ने अपने भाई से कहा—भैया ! हार और हाथी राज्य की शोभा हैं, अतएव यह दोनो राजा के अधीन होना चाहिए। तुम मुझे सौंप दो ।

विहल्लकुमार बोले—मुझे क्या ऐतराज ! पिताजी ने दोनों चीजें मुझे दी हैं। आप इन्हे लेते हैं तो बदले मे कोई जागीर दे दीजिए ।

कोणिक-नही, ऐसा नही हो सकता। हार और हाथी तुम्हें देना होगा।

विहल्लकुमार हार और हाथी लेकर अपने नाना के घर चले गये। वैशाली के राजा चेटक उसके नाना थे।

कोणिक ने चेटक के पास दूत भेजकर सन्देश पहुंचाया आप हार और हाथी के साथ विहल्लकुमार को शीघ्र मेरे पास भेज दीजिए ।

राजा चेटक ने विहल्लकुमार को आश्रय दिया था। उन्होने कोणिक को उत्तर दे दिया—बदले में जागीर दे दीजिए, हार और हाथी आपके पास पहुँच जायगा।

परन्तु कोणिक ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त हो रहा था। उसने राजा चेटक को युद्ध का निमन्त्रण भेज दिया।

राजा चेटक तत्कालीन गणतंत्र के प्रधान थे। उस गणतन्त्र मे अठारह देशो के राजा सम्मिलित थे। उन सब ने यह तय किया था कि जब कभी किसी एक सदस्य पर सकट आएगा तो सब मिलकर उसका सामना करेंगे। अन्याय का प्रतिशोध करने के लिए सभी अपनी--अपनी शक्ति लगा देंगे।

तदनुसार राजा चेटक ने अपने गणतन्त्र के अठारहों राजाओं को एकत्र करके प्रस्तुत घटना का वर्णन किया। सब ने एक स्वर से अनीति का मुकाबिला नीति के द्वारा करने का समर्थन किया।

आखिर भाई-भाई का युद्ध आरम्भ हुआ। दो-अढाई दिनों मे ही एक करोड़, अस्सो लाख सैनिक मारे गये। हार देवों ने उड़ा लिया और हाथी आग में जल कर भस्म हो गया। कोणिक को अपने दस भाइयो के प्राणो की वलि देनी पडी। यह हुआ भाई-भाई की लड़ाई का फल!

तुम्हारी फूट ने प्यारे! देश बरबाद कर डाला।
हजारो खो दिये भाई, जिन्हें बेदीन कर डाला॥
सुनो तुम हाल पृथ्वी का, पकड़ कर ले गया गौरी।
सलाई डाल आखों में, उसे अन्धा बना डाला॥

भाइयो इस कलह के परिणाम स्वरूप जयचन्द और पृथ्वीराज मे फूट हुई। परिणाम यह हुआ कि बहादुर पृथ्वीराज, भारतीय स्वाधीनता के साथ, मुहम्मद गौरी के हाथों में चला गया! तब से भारत जो गुलाम हुआ सो अब तक नहीं सँभल पाया!

जहा फूट है वहाँ लूट है । जहां लूट है, वहां झूठ है । वहाँ सर्वनाश है ?

हा ! शौक है ऐसे वैभव पर;
जिसमें भाई का मर्दन हो ।
हो एक भ्रात के हाथ छुरा,
दूसरे भाई की गर्दन हो ॥

एक बार दक्षिण प्रान्त मे अकाल पड़ा । जनता दाने-दाने के लिए तरसने लगी । दो सहोदर भाई थे और वे अलग-अलग रहते थे । उनकी माता बड़े भाई के साथ रहती थी । दोनों बाल-बच्चेदार थे ।

एक दिन छोटा भाई अनाज लेने गया था । इधर उसके बच्चे तड़फ रहे थे । बच्चों का तडफना माता से न देखा गया । वह अपनी सास के पास गई । दीनता दिखला कर बोली मां, थोड़ा अनाज दे दो; बच्चे भूख के मारे बिलबिला रहे हैं आने पर लौटा जाऊंगी !

बुढ़िया को तरस आ गया । उसने थोड़ा-सा आटा दे दिया । बहू आटा लेकर चली गई और रोटी बनाने लगी ।

इतने में बड़ा लड़का घर आया । उसने आटा देखा तो कम दिखाई दिया । मां से पूछा-मां, आटा कम क्यो दिखता है ? माता ने कहा-छोटी बहू को दिया है । वापिस आ जायगा ।

यह सुनते ही बड़ा लडका आग बबूला हो गया । बोला-उस दुष्ट के घर आटा क्यों दिया ? मरने दो उसके बाल-बच्चों को !

इतना कहकर वह सीधा छोटे भाई के घर जा पहुँचा। छोटा भाई वहा मौजूद नहीं था। एक रोटी तवे पर थी एक अंगारों पर सिक रही थी और एक बच्चो की थाली मे पहुँची ही थी। उस पाषाण-हृदय नर-पिशाच ने झपट कर तीनो रोटियाँ उठा ली और लाकर कुत्तो को खिला दी।

बच्चों की माता इस निर्मम-निर्दय आघात को सहन नहीं कर सकी। उसने रोते-चीखते हुए बालको से कहा—बेटा, रोना मत। मैं तुम्हारे लिए रोटी लाती हूँ। यह कहकर वह एक कुएं पर गई और कूद गई। उसके प्राण-पखेरू बन्धन-मुक्त हो गये।

अनाज लेकर उसका पति घर आया। बच्चो से पूछा—तुम्हारी मां कहां है? भोले बच्चो ने कहा--मां तो हमारे लिए रोटी लेने गई है!

पूछा—अरे कहां गई है?

बड़े लड़के ने उंगली से इशारा करके बतलाया-'इस कुएं में।'

पति मर्माहत हो गया! उसे अपनी जिन्दगी पर घृणा हुई। आखिर वह भी अपने बच्चो को गले से चिपटा कर उसी कुए मे कूद पड़ा। सारा परिवार भाई की ईर्षा की आग में भस्म हो गया!

गरीबों के खाने का इन्तजाम नहीं।
अगर सुबह खैर से गुजरी तो उम्मिदें शाम नहीं॥
जीमें भी तो कपड़ा नहीं तन के लिए।
अगर मर गये तो लाश रह गई कफन के लिये॥

एक बार हम अहमदनगर गये। वहा एक भाई ने कहा—महाराज, कोई गरीब भाई हो तो मेरी भावना उसकी सेवा करने की है। वहां से विहार करके हम गावो मे गये एक साधर्मी वृद्ध भाई और उसकी काको अनाथ थे। उनके पास किसी भी वस्तु का योग नही था। हमने सोचा-इनसे ज्यादा सेवायोग्य गरीब और कौन मिल सकता है? अतएव उक्त श्रावक को खबर दी। उनका मुनीम वस्त्र, भोजन आदि सामग्री लेकर आया और उन्हे सुखी बना गया।

भाइयों! मनुष्य को मनुष्य की दशा पर विशेष विचार करना चाहिए। आप गायों को घास डालते हैं तो साथ मे मनुष्य का भी ध्यान रक्खे। मगर देखा यह जाता है कि मनुष्य, मनुष्य को ही अधिक सताता है! उसके साथ कलह करता है। मगर कलह करने से कैसी दुर्दशा होती है?

किसी समय एक ठाकुर का लडका, एक कामदार का लडका, एक पुरोहित का लड़का और एक सेठ का लडका ईख खाने के लिए किसी खेत मे घुसे। चारो को जवानी का मद था, इसलिए वे किसी से भी नही डरते थे।

खेत का मालिक किसान जब कंबल और लाठी लेकर घर से आया तो उसने इन चारो को मस्त होकर ईख चूसते देखा। किसान यद्यपि उनमे से प्रत्येक की हैकड़ी भुलाने मे समर्थ था, मगर एक-साथ चारों का मुकाबिला करना उसके वश की बात नही थी। यह सोचकर किसान ने एक युक्ति खोज निकाली। उसने लट्ठ नीचे रखकर कंबल बिछा दिया और कहा—वाह साहब! आप मेरे खेत मे ईख खाने आये और

जमीन पर बैठो यह नही हो सकता लो, इस कंबल पर बैठ कर ईख चूसो । मै ईख लाता हूँ ।

चारो मित्र कंबल पर डटकर बैठ गये । किसान ईख लाने चला गया ।

साटे खिलाते खिलाते किसान ने कहा-आप तो राजाजी के कुंवर है, हम आपकी बस्ती मे रहते हैं, कामदार साहब के कुंवर भी काम के हैं और पुरोहितजी हमे मुहूर्त बतलाते हैं । मगर सेठजी चार गुणा व्याज लेते हैं और विना पैसा लिये कोई चीज नही देते है ! ऐसी हालत मे सेठ के लड़के को क्या हक था कि वह मेरे खेत मे से, विना पूछे ईख तोडता ?

शेष तीनो ने कहा—ठीक बात है ।

फिर क्या था ? किसान ने सेठ के लडके को तीन थप्पड़ लगाये और हाथ-पाव बांधकर वही पटक दिया ।

इसके बाद किसान ने कहा - राजा और कामदार तो हमारे काम आते ही रहते हैं पर पुरोहितजी मुहूर्त बतलाते ही दक्षिणा माग लेते हैं ! फिर उनके लडके को हमारे खेत मे से ईख तोड़ने का क्या अधिकार था ? यह तो साफ अन्याय है !

शेष दोनो बोले—बिलकुल ठीक !

बस, किसान ने पुरोहित-पुत्र की भी वही दशा की जो श्रेष्ठिपुत्र की की थी ।

थोडी देर बाद किसान ने कहा—आप राजकुमार हैं । आपकी ही सारी खेती है । परन्तु कामदार को तो तनख्वाह

मिलती हैं। अतएव उसके लड़के को भी ईख तोड़ने का अधिकार नही था।

राजकुमार ने किसान का समर्थन किया।

किसान ने कामदार के लड़के को भी पकड़ा और उसकी भी वही दुर्दशा की जो दो की कर चुका था।

अन्त मे बच रहा केवल ठाकुर का लड़का। किसान ने उसका हाथ पकड़ा और कहा—क्या तुम हमसे जमीन का हासिल नही लेते हो ? फिर खेत को उजाड़ने का तुम्हे भी क्या हक था ? यह कह कर किसान ने उसके भी हाथ बांध दिये।

इस प्रकार चारों को अपने कब्जे में करके किसान ने कहा—उठो, खड़े होओ और आगे-आगे चलो, वर्ना लट्ठ पड़ता है !

चारों अपनी मूर्खता पर पछताते हुए, मुंह नीचा किये खड़े हुए। आगे-आगे चारों लड़के चल रहे थे और पीछे लट्ठ ताने किसान चला जा रहा था। बाजार मे सैकड़ों तमाशबीन साथ हो गये। राजा के पास लेजाकर किसान ने कहा—अन्नदाता इन चारो ने मेरा खेत उजाड़ दिया है !

राजा विस्मय में पड़ गया। उसने पूछा—अरे किसान ! न्याय तो मैं बाद मे करूंगा, पहले यह बता कि इन चार हाथियो को तू ने किस प्रकार बांधा ?

किसान ने सारा हाल सुना दिया। राजा, किसान की सूझ पर बहुत प्रसन्न हुआ।

जिसके घर में एका है,
गुलजार वही घर देखा है ।
और रमा रमण भी वहीं करे,
यह आंखों देखा लेखा है ॥

× × × ×

चिड़िया को तो गुलाम जीते,
गुलाम बीबी से जावे हार ।
और बादशाह बीबी जीते,
एका सब का है सरदार ॥

× × × ×

अरज म्हारी सुनो सभी सरदार,
एको कर मेटो या तकरार ॥

भाइयों ! आपस का कलह, ईर्षा, द्वेष मिटाओ । देखो, ताश के खेल में भी एका सबको जीत ले जाता है । गोस्वामीजी ने कहा है—

जहां संप तहं संपति नाना ।
जहां फूट तहं विपति निदान ॥

भाइयों ! मत लडो । क्लेश न करो । फूट की बदौलत बहुत-सी विपत्तियां आती हैं ।

कैकई निज हाथ से ये बीज बोया फूट का ।
भरतजी नाखुश हुए, तू क्लेश करना छोड़ दे ॥

भरत को राज्य दिलवाने के लिए कैकेई ने कितना कलह फैलाया ! सब प्रकार से सुखी परिवार दुःखी हो गया। सब की शान्ति नष्ट हो गई। अयोध्या की प्रजा मे विषाद ही विषाद छा गया। मगर रामचन्द्र तो असाधारण पुरुष थे। वे राज्य त्यागने और वनवास अंगीकार करने के लिए तैयार हो गये। परन्तु लक्ष्मण धनुष हाथ मे लेकर खड़े हो गये। बोले--अवध का राज्य रामचन्द्रजी का है। देखे कौन उन्हे वनवास देता है। मैं उनकी खबर लिये बिना नही रहूगा। किसकी मजाल है जो मेरा सामना करे ? परन्तु राम कहते हैं—

वचन हमको पिताजी का निभाना ही मुनासिब है।
अवध को छोड़ जंगल में, हमें जाना मुनासिब है॥

इस प्रकार रामचन्द्र ने उदारता प्रदर्शित करके, त्याग का आदर्श संसार के सामने रख दिया और गृह कलह को भी समाप्त कर दिया ! क्योंकि वे पुरुष नही पुरुषोत्तम थे।

रास्ते मे कई लोग हमे 'राम-राम करते हैं, परन्तु हम उन्हें 'दया पालो' कहते हैं। इस पर कुछ लोग कहते हैं—ये साधु तो राम का नाम नही लेते। परन्तु हम तो—

जब बोलो तब राम ही राम,
राम सुधारे सब के काम।

वाली बात मानते हैं। राम बनने का काम न करो और राम का नाम मात्र बोलो इससे कल्याण नही हो सकता। राम बनने का उपाय दया पालना है। दया पालने से ही आत्मा परमात्मा बनता है। राम के अनेक रूप हैं—

एक राम घट-घट में बोले ।
एक राम घर-घर में डोले ॥
एक राम का सकल पसारा ।
एक राम दुनिया से न्यारा ॥
एक राम धोबी घर धोवे ।
एक राम खूणा में रोवे ॥

भाइयो ! किस राम को याद करना चाहिए ? असली राम तो वही है जो योगियों के हृदय मे रमण करता है। मगर साधारण जनता राम के वास्तविक मर्म को नही पहचानती । जो राम के स्वरूप को समझ लेगा वह भैरू, भवानी और चण्डी-मुण्डी के पास भीख मागने नहीं जायगा।

धन सम्पत्ति, जमीन-जायदाद आदि के लिए जैसे कलह होता है, उसी प्रकार धर्मों, सम्प्रदायों और पंथो के नाम पर भी कलह होता देखा जाता है। आग, पानी से बुझाई जाती है, परन्तु कदाचित् पानी ही आग लगाने लग जाय तो उसका क्या प्रतीकार होगा ? इसी प्रकार दूसरी वस्तुओ के लिए होने वाले कलह को धर्म शान्त करता है। ऐसी स्थिति में धर्म के नाम पर भी कलह और अशान्ति उत्पन्न की जाय तो संसार में शान्ति का स्थल कहाँ रह जायगा ? धर्म तो शीतलता प्रदान करने वाला निर्मल जल है; जो लोग उसे आग की ज्वाला के रूप में परिणत कर देते हैं, वे धर्म के शत्रु हैं, ससार के शत्रु हैं। ऐसे लोगो से सावधान रहना चाहिए।

धर्म का प्रांगण बहुत विशाल है। वह न किसी वेष में

रहता है, न किसी खास तरह के लौकिक बाह्य क्रियाकांड में ही रहता है। उसका सीधा सम्बन्ध आत्मा के साथ है। धर्म की आराधना के लिए कलह आदि कषायों का परित्याग करने की आवश्यकता होती है। जो जितना कषायों का त्याग करता हैं, वह उतना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भले ही वह किसी भी वेष में क्यों न रहा हो। कहा भी है—

नाशाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे,
न तर्कशास्त्रे न च तत्त्ववादे।
न पक्षसेवाश्रयणेन मुक्तिः,
कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव ॥

अर्थात्—न तो दिगम्बर होने से ही मोक्ष मिल सकता है और न श्वेत वस्त्र धारण कर लेने मात्र से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है! न तर्कशास्त्र पढ़ लेने मात्र से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है और न तत्त्ववादी होने से ही। किसी भी पक्ष का आश्रय लेने मात्र से—किसी भी पंथ के प्रति आग्रहपरायण होने से भी निर्वाण प्राप्त नहीं किया जा सकता।

असली मुक्ति तो कषायों से मुक्ति प्राप्त करना ही है।

कितना महत्त्वपूर्ण उद्‌गार है! सच पूछो तो धर्म का सम्पूर्ण सार इस श्लोक में समा गया है। कषायों का परित्याग किये विना कोई भी पंथ या सम्प्रदाय मुक्ति नही दिला सकता। ऐसी स्थिति में जो धर्म के नाम पर कलह के अड्डे रोपते हैं, वे स्वार्थसिद्धि भले कर लें, आत्मसिद्धि प्राप्त नही कर सकते और उनकी वह स्वार्थसिद्धि वस्तुतः अनर्थ की सिद्धि है, कषायो का पोषण है। धर्म शान्ति मे है, क्षमा में है, समभाव मे है।

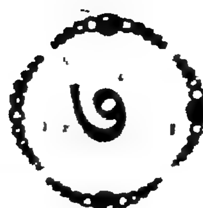
भाइयो ! आप किसी भी कलहप्रिय के चक्कर में न पड़े। रस्सी के तन्तु मिले हुए रहेगे तो टूट नही सकते। इसी प्रकार आप भी मिल कर रहेंगे तो आपका कोई बाल बांका नहीं कर सकेगा।

गुरु के प्रसाद से कहे चौथमल सुन लीजिए।
पाप द्वादशवां बुरा तू क्लेश करना छोड़ दे ॥

यह वारहवां पाप कलह बुरा है। यह आत्मा पर कूड़े-कचरे के समान है। आत्मा को पतित और मलीन बनाने वाला है। शीघ्र से शीघ्र इसका परित्याग कर देना ही उचित है। क्लेशहीन आत्मा निर्मल एव पवित्र बन जाती है। इसी कारण मेरा कहना है कि क्लेश करना छोड़ दो। क्लेश को छोड़ देने से तत्काल ही आत्मा में शान्ति और सुख का आविर्भाव हो जाता है। यह नकद धर्म है, तत्क्षण फल प्रदान करने वाला है। कलह को त्याग देने से आपकी आत्मा आनन्द ही आनन्द मे मग्न हो जायगी।

इन्दौर
६-६-४५





अभ्याख्यान

स्तुति—

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
विम्वं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्त शक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहा तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहा तक आपके गुण गाये जाएँ ?

तीर्थंकर भगवान् जव समवसरण मे विराजमान होते हैं तब देवनिर्मित अशोक वृक्ष भगवान् पर छाया करता है । उस ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित भगवान् के दिव्य शरीर की

किरणे ऊपर की ओर फैलती हैं। उस समय भगवान् का निर्मल रूप ऐसा शोभायमान होता है जैसे—अंधकार का विनाश करने वाला और स्पष्ट एव विकसित किरणों वाला सूर्य का बिम्ब मेघो के समीप शोभित होता है। (आठ प्रातिहार्यों में से यह पहला प्रातिहार्य है।)

भगवान् पर छाया करने वाला अशोक वृक्ष मानों यह सकेत करता है कि मैं तो नाम मात्र का अशोक हूँ, असली अशोक तो यह वीतराग सर्वज्ञ महाप्रभु तीर्थंकर देव है। जो पतितपावन प्रभु की शरण मे जायगा, प्रभु की भक्ति करेगा, वह सचमुच अभय-अशोक बन जायगा। उसके दु.ख, उसकी दरिद्रता, चिन्ता, आधि, व्याधि सब विनष्ट हो जायगा।

दयाधर्म के झंडे नीचे जो कोई शख्स भी आता है,
तप—संयम को धारण करके, सीधा मोक्ष मे जाता है।
भगवान और भक्तों के बीच नही जात-न्यात का नाता है,
गुड़ लगता है सबको मीठा, जो कोई उसको खाता है।

\+ + + +

इसी तरह से धर्मभक्ति, सब को तारणहार जो।
उठावे जिसके बाप को, भूमि पड़ी तलवार जो॥

भगवान् के पास अग्रवाल, खंडेलवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, पोरवाड आदि जातियो का कोई भेदभाव नही है। यह जातियां कल्पित हैं। इनमे कोई वास्तविकता नही है। इसी प्रकार भगवान् के भक्तो की भी कोई जाति नही हो सकती।

कोई भी व्यक्ति भगवान् की शरण ग्रहण कर सकता है और आत्मकल्याण कर सकता है ।

भाइयों ! यह दयाधर्म का झंडा है । आओ, इसके नीचे आओ । इसकी छाया में ही आपका कल्याण होगा । भगवान् के आश्रय में शोक नही रह सकता, सकट नही रह सकता, दुःख और दारिद्रय नही रह सकता ।

भगवान विपत्ति को हरण करने वाले हैं, अर्थात् उनकी भक्ति में विपत्ति का विनाश करने की शक्ति है, पर लोगों ने कुछ और ही समझ रक्खा है । जब किसी पर कोई आपत्ति आ पड़ती है तो वे कहने लगते हैं—हे रामजी ! चोखो कर्यो ! मानों रामजी ने ही उनके सिर पर सकट का शैल पटक दिया हो ! पर यह लोगों की मिथ्या धारणा है । भला, भगवान् को क्या पड़ी है कि वे किसी को दुःखी बनाएं ? दुःख का असली कारण तो वे स्वयं ही हैं । जो भगवान् की वाणी का समादर नहीं करते, भगवत्प्रदर्शित पथ पर नही चलते और उन्मार्ग पर चलने में ही आनन्द मानते हैं, वे अपने कर्मों के फलस्वरूप दुःख के भागी होते हैं । अतएव भगवान् को उपालम्भ या दोष देना अज्ञान है । भगवान् दुःख देने पर उतारु हो जाएं तो तुम लाख चेष्टा करने पर भी किस तरह बच सकते हो ? लेकिन भगवान् तो इन सब झगडों से अलग हैं ।

दुःख से बचना है तो सर्वज्ञ के उपदेशों पर चलो । पाप-पंक में आकठ निमग्न रहोगे और सुख भी चाहोगे तो ऐसा नहीं हो सकेगा । भगवान् का उपदेश पापों से बचने का है । अठारह पापों मे से तेरहवां पाप 'अभ्याख्यान' है । यह अभ्याख्यान पाप भी हिंसा आदि पापो का ही भाई–बन्द है ।

यह भी नरक मे ले जाने वाला है। किसी को मिथ्या कलंक लगाना झूठा इलजाम लगाना, तोहमत देना अभ्याख्यान कहलाता है ।

भाइयो ! सौ बात की एक बात यह है कि कोई कितना ही राम-राम क्यो न जपे, जब तक पाप का त्याग नही करता, तब तक उसकी आत्मा का कल्याण नही हो सकता। बिना जुते खेत मे आप कितना ही बढ़िया बीज डाल दीजिए, क्या होगा ?

'पक्षी चुग जाएंगे !'

ठीक इसी प्रकार अगर अपने अन्तःकरण रूपी खेत को आप जोतते नहीं है, अर्थात् निर्मल-कोमल नही बनाते हैं, तो उसमे राम-नाम का बीज अकुरित होकर पनप नही सकता ! फल-फूल लगने की बात ही दूर है ! अतएव सर्वप्रथम हृदय की निर्मलता आवश्यक है। अन्तस्तल को निष्पाप बनाओगे तो निस्ताप बन जाओगे ।

किसी को झूठा कलक लगा देना घोर पाप है । इस पाप मे अनेक पापो का समावेश है । हिंसा इसमें है झूठ आदि पाप इसमे हैं। इस पाप का सेवन करने वाले की आत्मा पतित हो जाती है।

इस तरफ तू कर निगाह, तोहमत लगाना छोड़ दे।
तूफेल है या तेरहवाँ, तोहमत लगाना छोड़ दे ॥
अफसोस है इस बात का, नासुनी देखी कहे ।
फौरन कहे तैने किया, तोहमत लगाना छोड़ दे ॥

खेद है उनकी दुर्बुद्धि के लिए जो अनदेखी और अनजानी बात को भी ऐसे शब्दो मे कहते संकोच नहीं करते, मानो वह उन्ही के सामने हुई हो ! उनके कहने का परिणाम क्या होगा, किसी निर्दोष व्यक्ति को उससे कितना आघात लगेगा, उसकी प्रतिष्ठा को कितनी क्षति पहुचेगी, अन्त मे सच बात प्रकट हो गई तो उसे किस प्रकार लज्जित होना पड़ेगा, लोगों के समक्ष उसे अविश्वास का भाजन बनना पड़ेगा, इत्यादि अनर्थपरम्परा की उन्हे कल्पना हो नही आती !

अरे गपोडीशख ! जो घटना तेरे सामने नही घटी है और जिसके साथ तेरी प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है, उसके विषय मे बढ़-बढ कर बातें बनाता है ? क्यो किसो के मत्थे झूठा कलंक क्यो मढ़ता है ?

कहते हैं—अजी, ये अण्डे खाते हैं, शराब पीते हैं । मैंने पूछा—आपको कैसे पता लगा ? तब बोले हैं है साहब ! लोग कहते हैं !!

भला यह भी कोई बात हुई ? इस प्रकार किसी को झूठा कलंक लगाने से, याद रखना, तुम्हारा घोर अहित होगा ।

तग हालत देख किसकी, तू बताता चोर है ।
बाज आ इस जुल्म से, तोहमत लगाना छोड़ दे ॥

भाई यह गरीबी भी बुरी बलाय है ! गरीब या मोहताज मनुष्य कितना ही प्रामाणिक और ईमानदार हो, लोग चटपट कह देते हैं-अजी, यह तो चोर है !

अरे ओ बेटी के धन को हड़प जाने वालों ! अरे ओ

धर्म के पैसों को डकार जाने वालो ! क्या तुम चोर नहीं हो ? उस वेचारे गरीब को चोर बनाते तुम्हे लाज नही आती ? उसकी गरीबी ही क्या इतना बड़ा दोष है कि तुम उसे चोर कह देते हो ? जरा विचार तो करो कि तुम्हारी तिजोरिया किस प्रकार भरी हैं ? क्या तुम्हारी तिजोरियाँ धन से भरने के साथ ही साथ तुम्हारी आत्मा पाप के कीचड़ से नही भरी है ? विचार के काच मे अपना मुंह तो देखो ।

धर्म के द्रव्य को हडप जाने वाले सावधान हो जाएं।—

औरों की धरी धरोहर को,
जो आप हड़प कर जाते हैं।
उनके सुत 'गौतम' ज्वान ज्वान
हो हो करके मर जाते है ॥

धर्म के धन को मजबूत तिजोरियों में वन्द करके लोग अपने आप को वड़ा अक्लमन्द समझते हैं और मूछो पर ताव देते हैं, परन्तु जब उसके फलस्वरूप घोर व्यथा भुगतनी पड़ती है तो छाती पीट कर रह जाते हैं। लडका बडा होता है, पढने को विलायत भेजते हैं हजारो रुपये खर्च करके विवाह करते हैं और इसके वाद उगती जवानी मे ही वह लड़का नीलाम बोल जाता है तो सिर पटक-पटक कर रोते है !

लेकिन रोने वाले ! पहले क्यों नही विचार किया ? जैसी पूंजी जोड़ी थी, वैसी चली भी गई और साथ में ब्याज ले गई, नसीहत दे गई !

तो कहने का आशय यह है कि जो लोग स्वयं चोरी

कर--करके धनवान बन बैठे हैं, वे गरीब को चोर कहते संकोच नहीं करते ! मगर मेरा कहना है—ऐसा न करो । जुल्म मत करो, आंख से देखो, कान से सुनो और बुद्धि से निर्णय करो। उसके पश्चात् ही कोई बात मुंह से निकालो ।

मर्द औरत जवान देखी, तू बताता बदचलन;
बुढ़िया को कहता डाकिनी, तोहमत लगाना छोड़ दे ।।

कोई नवयुवक सदाचारी होते हुए भी और न्यायनीति से चलते हुए भी अच्छे वस्त्र पहन लेता है तो लोग उसे बदमाश-बदचलन कहने लगते हैं ! इसी तरह कोई बहिन ठीक ढंग से रहे तो उसे भी वैसी ही कहते संकोच नहीं करते । किसी-किसी वृद्धा को डाकिनी घोषित करने में भी लोगों को संकोच नहीं होता !

भाइयों ! मैं आपसे पूछता हूं-आप आचारांग से लेकर आवश्यक सूत्र तक बत्तीस आगमों को और भ० महावीर को मानते हैं ?

'हां, मानते हैं।'

आप भगवान् को सर्वज्ञ भी मानते हैं ?

'हां, अवश्य ?'

जब हम मुसलमानों से कुरान शरीफ की बात कहते हैं तो वे गद्गद हो जाते हैं, उनकी आखों से अश्रु गिरने लगते हैं, परन्तु तुमसे शास्त्रों की बातें कहते हैं तो तुम्हारे ऊपर असर ही नहीं होता । बतलाओ, इसका क्या कारण है ?

'महाराज, आप ही बतलाइए।'

तुम्हारे हृदय की बात मैं ही बतलाऊं ? समझ लो स्वयमेव ! असल मे तुम नाते की औरत के समान हो । समझते हो, यह नहीं तो दूसरे भगवान् ही सही ! इसी कारण तुम्हें भगवान् की वाणी में रस नही आता ।

भगवतीसूत्र के पांचवे शतक के छठे उद्देशक में एक प्रश्नोत्तर आया है। गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया भन्ते ! कोई किसी को मिथ्या कलंक लगावे तो उसे क्या फल मिलता है ?

उत्तर– जो जिस पर जैसा कलंक लगाता है, उसे वैसा ही कलंक लगेगा और फिर उसे रोना पड़ेगा ।

एक राजा आंखों देखी बात पर ही विश्वास करता था। सुनी-सुनाई बात पर विश्वास नही करता था । उसका मन्त्री चतुर था । वह आँखों देखी बात पर भी कम विश्वास करता था । वह बुद्धि से सत्यासत्य का निर्णय कर लेने पर ही विश्वास करता था ।

एक बार राजा नें मन्त्री से पूछा—आप आंखों देखी बात पर तो विश्वास करते हैं न ?

मन्त्री–नही अन्नदाता !

राजा-वाह, आप तो अनोखे आदमी मालूम होते हैं ! आंखों देखी बात पर आपको विश्वास करना ही पड़ेगा ।

मन्त्री—आपका नमक खाता हूं, अतः आपकी आज्ञा मानने मे आनाकानी नही कर सकता, परन्तु हृदय की बात तो यही है कि मैं निर्णय की अपेक्षा रखता हूं ।

राजा–ठीक है, देखा जायगा ।

राजाओं का शयनागार बड़ा रमणीक होता है । सब प्रकार की विलास सामग्री उसमे सुसज्जित होती है । उक्त राजा का शयनागार भी प्रतिदिन फूलो की शय्या से सजाया जाता था । एक कुशल दास इसी कार्य के लिए नियुक्त था । एक दिन उस दास ने बड़े कौशल पूर्वक शय्या सुसज्जित की । तरह-तरह के इत्र छिड़ककर उसे सुगन्धित किया । तत्पश्चात् दास ने सोचा-मैं सदा सुन्दर सेज बिछाता हूँ । जरा लेट कर तो देखना चाहिए कि इस पर महाराज को कैसी निद्रा आती होगी !

ऐसा सोचकर वह गुलाम रजाई ओढ़ कर लेट गया । लेट गया तो जल्दी उठने का मन न हुआ । वह निद्रा देवी के अधीन हो गया ।

राज्य सम्बन्धी कार्य की अधिकता के कारण राजा आज जल्दी महल मे न आ सका । रानीजी शयनागार मे आई और उन्होंने देखा कि महाराज निद्राधीन हो चुके हैं । उन्होने धीरे से दूसरी रजाई ओढ़ी और वह सो गई ।

कार्य से निवृत्त होकर राजा ने अपने शयनागार में प्रवेश किया । एक पलंग पर दो व्यक्तियों को सोते देख राजा दंग रह गया । क्षात्र तेज के कारण उसे क्रोध आ गया । उसने तलवार कमर से निकाली और दोनो के सिर धड से अलग कर देने का विचार किया । अचानक उसे अपने मन्त्री की बात ध्यान मे आ गई । मन्त्री आंखों देखी बात पर भी विश्वास नहीं करता है ! क्यों न उसे बुला कर उसकी बुद्धि ठिकाने लाई जाय !

फिर इनका काम तमाम करना कौन-सी बड़ी बात है! भाग कर जा कहां सकते हैं!

राजा ने बाहर आकर दूसरे सेवक द्वारा मन्त्री को बुलवाया। मन्त्री के आने पर राजा ने कहा--मन्त्रिन्! देखो, रानी परपुरुष के साथ सोई हुई है। यह बात आंखो से देख लो। फिर क्या साबित कर सकते हो कि यह बात भी झूठी है? अब इन दोनो का सिर उड़ाता हूं।

मन्त्री—नही महाराज, जरा धैर्य रखिए। मुझे निर्णय कर लेने दीजिए। आप ज़रा आड मे छिप जाइए।

राजा कर लो निर्णय, कर लो।

मत्री दोनों हाथो मे सुए लेकर पलग के नीचे छिप गया और नीचे से सुए चुभोए। रानी ने चिल्लाकर कहा--महाराज, महाराज, उठिये तो सही!

दास की निद्रा भंग हुई और उसके प्राण सूख गये। बोला—माताजी, मुझे क्षमा कीजिए। मै सिर्फ यह देखने के लिए लेट गया था कि शय्या सुखद है या नही। अचानक निद्रा आ गई! माताजी क्षमा चाहता हूं।

रानी—हरामजादे कही के! मैं क्या जानूं कि तू इस शय्या पर सोने का साहस कर सकता है? मैं समझी, महाराज सो रहे हैं। महाराज पधार जाते तो क्या दशा होती? मेरा झालावंश कलंकित हो जाता।

दास—माता! इस बार तो प्राणदान मिल जाय!

रानी—जा, काला मुंह कर।

दास चला गया और रानी फिर सो गई।

राजा और मन्त्री ने विचार किया। मन्त्री ने कहा—हुजूर, आंखो देखी और कानों सुनी भी कभी--कभी झूठ हो जाती है। अतएव बुद्धि से निर्णय किये बिना किसी पर दोष लगा देना उचित नही है।

सत्य को झूठ कहे, ब्रह्मचारी को कहे लंपट।
कानून में इसकी सजा, तोहमत लगाना छोड़ दे॥

कुछ लोग सत्य को असत्य कहने मे जरा भी नही हिचकते। यहां तक कि ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले महात्मा को भी लम्पट कह देते हैं।

एक बार एक लखपति साहूकार, जिसे धर्म के प्रति कोई खास रुचि नही थी, एक महात्मा का दर्शन करने जा पहुंचा। महात्मा के आसपास बहुत-सी महिलाएं भी थीं। थोड़ी देर बाद जब महिलाएं चली गई तब सेठ ने पूछा—महाराज, सुन्दरी रमणियों को देखकर आपका चित्त विकृत नही होता?

महात्मा बोले—वत्स जिस निगाह से तू अपनी बेटियो को देखता है, उसी निगाह से मैं इन बहनों को देखता हूं।

ऊसर भूमि तृण नहीं जामा।
सत हृदय इमि उपजे न कामा॥

भाइयों! जैसे ऊसर भूमि में घास-पात नहीं उगता, उसी प्रकार सन्त--महात्मा के हृदय में काम-वासना जागृत नहीं होती।

अपने पर खुद जुल्म दुनिया, देख लो यह कर रही ।
मालिक की मर्जी कहे, तोहमत लगाना छोड़ दे ।।

लोग अपनी आत्मा को भी झूठा कलक लगाते है और भगवान् को भी झूठा कलक लगाने से बाज नही आते !

क्या हंसी आती है हमको, हजरते इन्सान पर ।
फैले बद तो खुद करे, लानत करे शैतान पर ।।

लोग स्वयं बुरे काम करते हैं और फिर कहते हैं-मेरे सिर शैतान सवार हो गया था ! शैतान ने ऐसा काम कराया है ! बताओ, वह शैतान कौन है ? अरे, तुम स्वयं शैतान हो, तुम्हारी दुर्वृत्तियों के सिवाय और शैतान कहा से आया ?

राम किसे दुःख दे नहीं सबसे मोटे राम ।
आप ही सब मर जाएंगे, कर-कर खोटे काम ।।

अरे भाई, खोटी बुद्धि देने वाला अगर राम है तो सद्बुद्धि देने वाला कौन है ? क्या कभी सूर्य भी अन्धेरा करता है ? भगवान् कभी किसी को खोटी बुद्धि दे ही नही सकते !

तुम ऐसी वस्तुएं काम में लेते हो जो तुम्हारे शरीर को पसन्द नही हैं, आत्मा को पसन्द नहीं हैं और परमात्मा को भी पसन्द नही हैं । गाजा, भाग, शराब आदि मादक पदार्थों को शरीर सहन नही करता, आत्मा भी भीतर से पसन्द नही करती और परमात्मा तो उन्हें चाहता ही नही । फिर भी जबर्दस्ती तुम उन्हे पेट मे ठूंस लेते हो !

जो कलंक दे और पर आवे उसी पर लौट कर।
जैनागम यों कह रहा, तोहमत लगाना छोड़ दे॥

कोई धर्म की दलाली करके, सेवा भाव से चन्दा करता है तो कई लोग कहते हैं—यह तो खा जाता है ! इस प्रकार आप से करते नहीं बनता और दूसरे करने वाले को झूठा कलंक लगाता है !

ना कीयो ना कर सके, ना कुछ करवा जोग।
मनुज—जन्म को पाय के, व्यर्थ हसाया लोग॥
और:—
गीता पुराण कुरान इंजिल, देखले सब में कहा !
इसलिए तू वाज़ आ, तोहमत लगाना छोड़ दे॥

संसार में विभिन्न धर्मों के जितने भी शास्त्र हैं, उनमें से किसी को भी देख लो। सब मे समान रूप से अभ्याख्यान को पाप बतलाया गया है। यही नही कोई भी शिष्ट पुरुष दूसरे को मिथ्या कलंक लगाना पसन्द नहीं करता। आप अपने हृदय से साक्षी लो तो वह भी बतला देगा कि ऐसा करना बडी से बडी बुराई है। इस बुराई का आचरण करने से कुछ भी लाभ नही होता। अतएव भाइयों ! ध्यान रक्खो, किसी पर मिथ्या दोषारोपण मत करो।

वीर जन्म:—

अकसर आज के रोज भगवान् महावीर के जन्म का वर्णन किया जाता है। प्रभु का जीवन ऐसा पावन है कि

किसी भी दिन उसका श्रवण करना और कराना कल्याणकारी है। अतएव: आज आपको वह भी सुना दिया जाय तो ठीक रहेगा ।

गुण गाओ सदा, गुण गाओ सदा,
वीर प्रभु के गुण गाओ सदा ।
जगद् गुरु के गुण गाओ सदा ।।गुण०।।

जगद गुरु भगवान् महावीर के अवतरित होने से पूर्व का समय बड़ा अन्धकार पूर्ण था। इस देश में बाह्य क्रियाकांडी लोग, पशुओं की तो बात ही क्या, मनुष्यों तक को आग की धधकती हुई ज्वालाओं में जला कर भस्म कर देते थे। सर्वत्र त्राहि-त्राहि की करुण ध्वनि श्रवणगोचर हो रही थी। जनता जनार्दन से पुकार कर रही थी:—

तुम्हे अब यहां पर आना पड़ेगा,
कि दुनिया को दुख से छुड़ाना पड़ेगा ।।

और:—

हे प्रभु ! तुम आओ, वसुधा को स्वर्ग बनाओ ।
अज्ञान यहां छाया है, फैली इसकी माया है ।।

प्रभो ! दया करो ! दीनो की सुधि लो। संसार संतप्त है, प्राणी-जगत् दुखी हो रहा है। आर्यावर्त की यह धर्मभूमि, अधर्म की भूमि बन रही है। यहां नारकीय दृश्य दिखलाई दे रहे । इस भूमि को फिर से स्वर्ग बनाओ।

वीर भगवान् ! तू फिर से दर्श दिखा दे आ जा.
ये हुआ देश दुखी, धर्म सुना दे आ जा !
मेजबानों के गले आज हैं चलते खंजर,
फिर दया धर्म का तो डंका बजा दे आ जा ॥

आप भी भगवान् को बुलाना चाहते हैं, परन्तु भाइयों ! पहले इसके योग्य तो बन जाओ । भगवान को बुलाने के लिए—

कौन सी मात है वह कूंख में जिसकी आवें ?
देवी त्रिशला सी कोई, मात बताओ तो सही ।
वीर के आने का सामान बताओ तो सही,
वीर के दर्शन के जरा पुण्य बताओ तो सही ॥

और:—

तुम ये कहते हो महावीर आते नहीं ।
चंदना सी विनय तुम भी सुनाओ तो सही ॥

भाइयो ! इतना तो तुम भी समझते हो कि एक बार मुक्त हुए जीव कभी संसार में अवतरित नहीं होते । फिर भी महावीर को बुलाने की जो भावना व्यक्त की जाती है, वह व्यक्ति की अपेक्षा नहीं वरन् शक्ति की अपेक्षा समझना चाहिए । अर्थात् भगवान् महावीर जिस शक्ति से सम्पन्न होकर अवतरित हुए थे, उसी शक्ति--वैसे ही सामर्थ्य से युक्त महापुरुष के पधारने की कामना की जाती है । सर्वत्र यही आशय समझना चाहिए । भगवान् महावीर पहले मोक्ष पा चुके थे और उन्हें

फिर से मोक्ष में से बुलवाया जा रहा था, अथवा आज बुलाया जा रहा है, ऐसा समझना अज्ञान का फल होगा।

हां तो भाइयो ! भगवान् को बुलाने से पहले, उन्हें बुलाने का सामान तो इकट्ठा करो ! एक साधारण राजा को अपने घर बुलाने के लिए कितनी तैयारियां करनी पड़ती हैं ! फिर त्रिलोकीनाथ को बुलाने के लिए कितनी गुनी तैयारियों की आवश्यकता है ? आपको अपना हृदय-मन्दिर कितना स्वच्छ बनाना चाहिए, जहां भगवान् का पदार्पण हो सके।

खैर। भगवान् महावीर दसवें स्वर्ग से चल कर माता त्रिशला की कुक्षि मे पधारे।

भगवान् के पधारने की तैयारी है। महारानी त्रिशला शयनागार में सोई हुई है। उन्हे चौदह महास्वप्न आये हैं। वे सिद्धार्थ की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन करती हैं—नाथ, मुझे यह चौदह स्वप्न दिखलाई दिये हैं।

महाराज ने उत्तर दिया—तुम्हें अवतारी पुत्र की प्राप्ति होगी।

+ + + +

क्षत्रियकुण्ड के महाराजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केशी श्रमण महाराज के शिष्य थे। केशी श्रमण महाराज चार ज्ञान के धारक थे। उन्होने ज्ञान से जानकर बतलाया था इस अवसर्पिणी काल मे तेइस तीर्थंकर तो हो चुके हैं, चौवीसवे तीर्थंकर का जन्म आपके घर मे होगा।

भाइयो ! इस भविष्यवाणी को सुनकर राजा और रानी

को कितना आनन्द हुआ होगा ? अनुमान करना भी कठिन है।

महारानी त्रिशला को बड़े सुन्दर--सुन्दर दोहद उठे। लोक में कहावत है--पूत के पग पालने मे दीख जाते हैं। परन्तु यहाँ तो पूत का प्रभाव पेट मे ही दिखाई देने लगा! प्रभु के पवित्र व्यक्तित्व का प्रभाव माता के मन पर होने लगा। देखिए:—

गुणवान् गर्भ में आवे, माता ने मेवा भावे।
संतों की सेवा भावे, नित उठ के धर्म कमावे॥

इसके विपरीत—

पापी जब गर्भ में आवे, माता ने केलू भावे।
संतो की निन्दा चावे, नित उठके क्लेश मचावे॥

जब महापुरुष गर्भ में आते हैं तो मधुर--मधुर दोहद उठते हैं। जब पापी जीव गर्भ मे आता है तो माता को अनिष्ट-कारी अभिलाषाएं उत्पन्न होती हैं। इसमे बेचारी माता का कोई दोष नहीं है। यह तो आने वाले जीव का ही प्रभाव समझना चाहिए।

कंस जब गर्भ मे आया था तो उसकी माता को यह दोहद हुआ कि मैं राजा उग्रसेन का कलेजा निकाल कर खाऊं!

धीरे-धीरे गर्भ का काल परिपूर्ण हो गया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को—

करने भारत का कल्याण,
पधारे वीर प्रभु भगवान्।

जनमे सिद्धारथ के घर में,
त्रिशला देवी के उदर में ।
सुरांगना गाया मंगल—गान,
पधारे वीर प्रभु भगवान् ॥

भाइयों ! उस समय—

जब जन्मे वीर प्रभु यहां पर, उस खुशी का पारावार न था।
संसार में ऐसा कोई नहीं, जिसके इस दिन त्योहार न था ॥

छप्पन दिककुमारी देवियों ने उपस्थित होकर, भगवान् का जन्म होने के बाद अशुचि--निवारण आदि कृत्य किये। शक्रेन्द्र ने आकर माता की और भगवान की स्तुति की। सुमेरु पर्वत पर ले जाकर भगवान का जन्माभिषेक किया। वहा से, लौटकर भगवान को माता के पास सुला दिया और इन्द्र ने स्वर्ग में जाकर अठाई महोत्सव किया।

भगवान का नाम उनके माता-पिता ने 'वर्द्धमान' रक्खा था। बाद मे इन्द्र ने 'महावीर' नाम रख दिया। भगवान् बाल्यकाल से ही बड़े शक्तिशाली और विरक्त थे। यौवन मे दीक्षा लेकर घोर तपश्चर्या की। केवल ज्ञान प्राप्त किया और बहत्तर वर्ष की उम्र मे मोक्ष पधार गये। जो भव्यजीव भगवान् के उपदेशों पर चलेगा और पापो का परित्याग करेगा, उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

इन्दौर
७-६-४५ }



चुगली

स्तुति—

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैः—
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहां तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहां तक आपके गुण गाये जाएं ?

हे मुनियों के नाथ ! आपको समस्त गुणों ने अपना ऐसा आश्रय बना लिया है कि दोषों के लिए तनिक भी जगह कहीं नहीं रह गई और अनेक आश्रय प्राप्त कर लेने के कारण

दोषों को अभिमान हो रहा है ऐसी स्थिति में दोष आपकी ओर आंख उठा कर भी नही देखते तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? गुणो को धारण कर लेने के कारण दोष स्वप्न में भी आपकी अपेक्षा नही करते, यह तो स्वाभाविक ही है।

तात्पर्य यह है कि भगवान् आदिनाथ समस्त आध्यात्मिक गुणों से युक्त है। भगवान् मे सभी गुण ऐसे ठसाठस भरे हुए हैं कि दोषो के लिए लेश मात्र भी जगह नही रही। दोषो ने देखा कि हमे क्या परवाह है! हमे आश्रय देने वाले दूसरे देव दुनिया में बहुतेरे हैं। एक ने जगह नहीं दी तो न सही! ऐसा सोचकर वे भी आप से दूर ही रहे। अर्थात् भगवान आदिनाथ दोषो से सर्वथा रहित हैं और समस्त गुणो से सहित हैं।

भाइयों! भगवान् आदि देव को दुर्गुण आंख उठा कर भी नही देखते हैं, परन्तु तभी जब कि उनमे गुण ठसाठस भरे हुए हैं। इसी प्रकार आप भी अगर अपनी आत्मा को गुणो का भंडार बना दें तो फिर दुर्गुण नहीं देख सकेंगे।

अनादि काल से साथ रहे दुर्गुण एक दिन मे दूर नही होते। धीरे-धीरे प्रयत्न करके एक दुर्गुण हटाइए और उसकी जगह एक सद्गुण को अपना लीजिए। यों करने से आप भी किसी दिन सद्गुणो के भंडार बन जाएंगे। तीर्थंकरो की आत्मिक पवित्रता भी कोई अन्तिम जीवन-उसी जन्म-की साधना का फल नही है। अनेक जन्मों की निरन्तर साधना के फलस्वरूप ही उनमें चरम सीमा की पावनता आती है।

भाइयो! कुछ गुण तो प्रत्येक व्यक्ति मे होते है किन्तु साथ मे रहे हुए दोष उन गुणों को भी मलीन करते रहते हैं।

आप उत्साह और प्रेम के साथ अपने हाथ से दान देते हैं, पर साथ ही कहते हैं--बताओ, हमारा सरीखा दानी क्या आपने कभी देखा है ? यह अभिमान आपकी सारी कमाई पर पानी फेर देता है ।

इसी प्रकार ज्ञान गुण है, पर ज्ञान का अभिमान दुर्गुण है, भक्ति गुण है, परन्तु भक्ति का अभिमान दुर्गुण है। इस तरह गुणों को मटियामेट करने वाले दुर्गुणों से बचते रहो और गुणों को विकसित करते रहो।

आपको अगर सुन्दर रूप मिला है, शरीर की शक्ति मिली है, धन मिला है, ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो यह सब आपके पुण्य का शुभ फल है। इन पर घमण्ड करना बुरा है। पुण्य के फल को पाप का साधन मत बनाओ। यह कमाना नहीं, गँवाना है।

दुर्गुणों का ही दूसरा नाम पाप है। भगवान् ने हिंसा आदि पापों के ही समान 'पैशुन्य' को भी महापाप कहा है। चुगली को पैशुन्य कहते हैं। यह भी ऐसा पाप है, जिसे संसार के सभी धर्मशास्त्र पाप ही बतलाते हैं।

कई लोग चुगली खाने में अपनी प्रशंसा समझते हैं; परन्तु चुगलखोर को नहीं मालूम कि उसकी इज्जत कितनी खराब हो जाती है ? चुगली खाना मानवधर्म से प्रतिकूल है। देखिए—

साफ हम कहते तुझे, चुगली खाना छोड़ दे,
चतुर्दसवां पाप है, चुगली खाना छोड़ दे।

इसकी उसके सामने और उसकी इसके सामने,
क्यों भिड़ाता है किसी की चुगली खाना छोड़ दे ॥

चुगलखोर किसी के पास जाता है और कहता है अमुक व्यक्ति आपके विषय मे यों कहता था ! तब सुनने वाला भी यदि बुद्धिहीन हुआ तो एकदम आवेश मे आ जाता है। कहता है—अच्छा, उसने मेरी निन्दा की है ! मैं देख लूंगा उसको ! और वह दो-चार गालिया सुना देता है !

बस बन गया चुगलखोर का काम । वह लौटकर फिर उसके पास जाता है और भिड़ाता है । इस प्रकार सिर-फुटौवल कराने वाले चुगलखोरो की इस ससार मे कमी नहीं है ।

जिसकी चुगली खाता है, इन्सान वह जो जान ले ।
बन जायगा दुश्मन तेरा, चुगली का खाना छोड़ दे ॥

किसी ने आकर कहा—अमुक आदमी तुम्हारी निन्दा करता था । यह बात सुनकर वह उसके पास चला जाय और पूछले—क्यों भाई, क्या तुमने मेरे सम्बन्ध में ऐसी बात कही थी ? तब उस चुगलखोर और उस आदमी मे जन्म भर का वैर हो जाता है ।

इसके जरिये हो लड़ाई, मर्द में और नार में ।
जहर खा कई मर गये, चुगली का खाना छोड़ दे ॥

इस चुगली की बदौलत कई लोग विष भक्षण करके मर जाते हैं । एक कथा याद आ गई ।

चम्पा नगरी में किसी मिथ्यादृष्टि के घर एक बहू थी। बड़ी समझदार, धर्म में अनुराग रखने वाली और प्रतिदिन सामायिक करने वाली थी। वह ईश्वराधना करके ही भोजन किया करती थी। उसका नाम सुभद्रा था।

सुभद्रा की एक ननद थी। ननदें कुछ तो अच्छी होती हैं, मगर कुछ को चुगली करने और झगडा कराने मे ही आनन्द आता है। सुभद्रा अपने कमरे में बैठकर, सामायिक करके ईश्वर-भजन करती तो उसकी ननद चुप-चाप मुंह पर उंगली रख कर बड़े आश्चर्य से उसकी सब क्रियाओं को देखती रहती और फिर माता के पास जाकर, नमक-मिर्च लगा कर वर्णन करती थी।

घर में मिथ्यात्व का साम्राज्य था ही। सुभद्रा की सास, ससुर और पति ने भी उससे धर्मक्रिया त्याग देने का आग्रह किया। बार-बार यही आग्रह किया जाने लगा।

सुभद्रा असमजस मे पड गई। वह सोचने लगी-मैं इनके घर मे विवाहिता होकर आई हूं, अतएव मेरे शरीर पर इनका पूरा-पूरा अधिकार है। ये जो भी चाहे, मुझसे काम ले सकते हैं। परन्तु धर्मक्रिया, ईश्वरभजन और सामायिक तो आत्मा के धर्म हैं। इन्हे किसी भी दशा में त्यागना उचित नही है।

एक दिन सास ने कहा—तू मुंह पर पट्टी बांध लेती है और हाथ मे झाडू ले लेती है, इससे हमे शर्म आती है। तू यह सामायिक करना छोड़ दे। यह जैनमत को क्रिया है। जैनमत झूठा है।

सासू—

वचन यह सत्य हमारा मान,
जैनमत झूठा मत कर कान।
जैनधर्म है नास्तिक जग में, बोले कई इन्सान।
दया दान ईश्वर नही माने, इस पर दे ध्यान ॥वचन०॥

अरी बहू जैनधर्म तो नास्तिकों का मत है वह दया, दान, ईश्वर आदि को नहीं मानता है।

सुभद्रा—

जगत में जैनधर्म परधान,
सासू ! मत कर खीचातान।
जैनधर्म की निन्दा सासू, मुझसे सुनी न जावे।
ईश्वर भक्ति दया दान सत्य सब जैनधर्म समझावे ॥सासू०॥

सासूजी, जैनधर्म में सर्वोत्तम मन्त्र नमस्कार मन्त्र है। उसके आरम्भ मे जिसे नमस्कार किया गया है वह कौन है? क्या कर्मों का अन्त करने वाले परमब्रह्म स्वरूप, निरजन, निरामय सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अर्हन्त और सिद्ध ईश्वर नही हैं ? अजी, यह तो असल मे ईश्वर हैं। फिर यह कहना कहां तक ठीक है कि जैनधर्म ईश्वर को नहीं मानता ? इसी प्रकार दया और दान तो जैनधर्म के प्राण है। जैनधर्म मे उनका निषेध नही है।

सासू—

मैं समझी थी भोली-भाली, तू निकली हुशियार
करे सामता उत्तर देती, लज्जा नही लगार ॥ वचन० ॥

अरी, मैं समझती थी कि तू सीधी-सादी है, पर तू तो मेरे मेरे भी कान कतरने को तैयार है ! अभी से मेरा सामना करने लगी है ! निर्लज्ज, तुझे तनिक भी लाज—शर्म नहीं है !

सुभद्रा—

सुनी-सुनी बातों पर सासू, दिया आपने कान ।
जैनधर्म है पूरा आस्तिक, माने है भगवान् ॥सासू०॥

सासूजी ! आप मेरे लिए पूज्य हैं, वड़ी हैं । परन्तु सच बात कहने मे क्या हानि है ? मैं विनम्र भाव से आपको कहती हूँ कि आप सुनी-सुनाई गलत बातो पर ध्यान मत दीजिए । जैनधर्म आस्तिक धर्म है । वह स्वर्ग नरक, ईश्वर, मुक्ति पुण्य, दया, दान आदि को मानता है । जो इन सबको मानता है वही तो आस्तिक कहलाता हैं ! जैनधर्म मे आत्मा का स्वरूप बहुत सुन्दर ढग से बतलाया गया है । आत्मवाद और जडवाद का पूरा-पूरा विवेचन है । आत्मा को परमात्मा बनने का सदेश देने वाला एक मात्र जैनधर्म ही है । फिर भी आप उसे नास्तिक मत कहती हैं । इसी कारण मुझे उत्तर देना पडा !

भाइयों ! आज की बात निराली है । आज क्या हो रहा है और मनुष्य क्या कर रहा है ? सुनिए:—

जो जान रहा है अन्तर की,
　　उस अन्तर्यामी को भूल गई ।
अफसोस गजब है घर वाली,
　　उस घर वाले को भूल गई ।

आज अध्यात्मवाद को लोग भूलते चले जाते है। यह भौतिकवाद का युग कहलाता है अणुओ और परमाणुओ की खोज के पीछे वैज्ञानिक पागल हो रहे है। उनकी खोजें मूल मे कैसी भी क्यो न हो, संसार के लिए अभिशाप बन रही हैं। इसका कारण आप खोजने चलेगे तो पता चलेगा कि धार्मिक भावना के अभाव से ही यह सब अनर्थ हो रहे हैं। विज्ञान के साथ धर्म का समन्वय हो जाय तो मानव जाति के लिए खतरा बना हुआ विज्ञान भी लाभदायक हो सकता है। पर आज धर्म की चिन्ता किसे है ?

जैन शास्त्रो मे बतलाया गया है कि जड़ भी क्रियाशील होता है और उसमे अनन्त शक्तियाँ विद्यमान हैं।

जिस प्रकार जड क्रमश: विकास पाकर परमाणु बम की स्थिति तक पहुँच जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी एकेन्द्रिय दशा से विकसित होकर कीडी, कुथवा, हाथी आदि होकर मनुष्य और फिर परमात्मा की दशा प्राप्त कर लेती है। यह परमाणु बम की तरह आत्मा का विकास है। आज का भौतिकवादी ससार जड-विज्ञान का अन्वेषण करता है, परन्तु जैन धर्म मे आत्मविज्ञान की प्रधानता है। तथापि वह जड पदार्थों की शक्तियों का भी भली भाति निरूपण करता है। जैन धर्म ने आत्मा और परमाणुओ की अन्तिम शक्ति हजारो वर्ष पहले ही सिद्धान्त रूप मे प्रकट कर दी है।

हाँ, तो सुभद्रा ने जब जैन धर्म की मान्यताएं अपनी सासू को बतलाई तो सासू कहने लगी –

सासू—

बांध मुहपति करे सामायिक, राख पूंजणी पास ।
वहुत बहू अच्छी नही लागे आवे हमको हांस ।। वचन० ।।

सुभद्रा—

जीवदया हित बाँधी मुखपत्ती, राखूं पूंजणी हाथ ।
जो नही करे सामायिक वो तो भोगे यम की त्रास ।।सासू०।।

सासू—

जैनधर्म के साधु तेरे, मुझे पसन्द नहीं आवें ।
मुख पर बांधें सदा मुखपत्ती, मांग-मांग कर खावें ।।वच०।।

सुभद्रा—

जैनधर्म के मुनि जगत में, होते हैं गुणवान ।
कनक-कामिनी के हैं त्यागी, नशा-पता पचखान ।।सासू०।।

और—

पाप उपदेश जबां पै कभी लाते ही नहीं ।
धर्मशिक्षा सिवाय कभी कुछ सुनाते ही नहीं ।।
पास कौड़ी भी नही रखते गुरु वे होते,
अच्छे भोजन पै कभी दिल को लुभाते नही ।।धर्म०।।
ज्ञान में ध्यान सदा जिनका लगा रहता है ।
जीव जितने हैं कभी उनको सताते नही ।।धर्म०।।
बोलते झूठ नही चाहे कलम सर होवे ।
ध्यान चोरी का कभी दिल में लाते ही नही ।।धर्म०।।

यह जैन साधुओं का आचार है। वे गुरुमन्त्र देने के बदले दक्षिणा नहीं लेते। एक बार एक भाई मेरे पास आया और तीन रुपया मेरे सामने रखकर बोला—महाराज, मुझे गुरुमन्त्र दीजिए। मैंने उत्तर दिया भाई, हम पैसा नहीं लेते। हमतो यो ही मन्त्र देते हैं। क्योकि—

लोभी गुरु तारे नही, तिरे सो तारणहार।
जो तिरना तू चाहता, निर्लोभी गुरु धार॥

× × × ×

लोभी गुरु लालची चेला, दोई नरक में ठेलमठेला।

× × × ×

गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेले दांव।
दोनों डूबे बापड़ा, बैठ पत्थर की नाव॥

गुरु निर्लोभ होना चाहिए। जिसके अन्त करण में से पैसे का लोभ नहीं गया, वह परमात्मा का सच्चा भक्त नही हो सकता। भागवत मे भी कहा है क असली साधु वही है जिसके पास दूसरे दिन का भोजन न हो।

भाइयों! इस प्रकार धर्मचर्चा में जब सासू जीत नही सकी तो वह सुभद्रा के ऐब ढूढ़ने मे लग गई।

संयोग की बात समझिए कि एक जिनकल्पी अनगार चम्पा नगरी मे पधारे और भिक्षा के लिए भ्रमण करते-करते सभद्रा के घर जा पहुँचे। जिनकल्पी मुनि की साधना बड़ी कठोर होती है। उनके शरीर में कांटा आदि लग जाय, तो वे

निकालते नही हैं। रास्ते में सामने सिंह मिल जाय तो भी वापिस नही लौटते। ऐसी कठिन साधना उन मुनि की थी।

उन मुनि की आंख मे फूस (घास का छोटा-सा तिनका) पड गया था। इस कारण उनकी आंखो से पानी झर रहा था। परन्तु मुनि को उसकी परवाह नही थी।

मुनि को आया देखकर सुभद्रा के घर वाले जल उठे, परन्तु सुभद्रा के हर्ष का पार न रहा। उसने तत्काल उठकर मुनिराज का स्वागत किया और आहार दान दिया। जब उसने मुनि की आंख की ओर देखा तो उसे फूस का पता चला। वैयावृत्य की पवित्र भावना से प्रेरित होकर सुभद्रा ने मुनिराज का सिर पकड़ लिया और अपनी जीभ से फूस निकाल दिया। इस प्रकार फूस निकालते समय सुभद्रा के कपाल की टीकी मुनि के कपाल पर भी लग गई।

सुभद्रा की सासू यह सब घटना देख रही थी। उसे सुभद्रा को बदनाम करने का अच्छा अवसर मिल गया। ज्यो ही मुनि घर के बाहर निकले कि उसने चिल्लाना शुरू किया-अरे मुहल्ले के लोगो! ऐ पुरा-पड़ौस वालो, देख लो, मेरी बहू सुभद्रा कितनी बदचलन है? देखो, इसने साधु को भी भ्रष्ट कर दिया! साधु के ललाट पर टीकी का निशान अब भी बना हुआ है! लोगों को ऐसी बात मिल जाय तो फिर पूछना ही क्या है! झुंड के झुंड इकट्ठे होकर सुभद्रा को धिक्कारने लगे।

छप्पर से खप्पर पड़ा, गंडक भूसा एक।
एक भूसता अनेक भूसा, सागे भूसा एक ॥

अरे कुत्तो ! तुम क्यों भौंकते हो ? एक कुत्ते के सिर पर चोट लगती है और वह भौंकता है तो मुहल्ले के सभी कुत्ते भौकने लग जाते है। फिर यह भी पता नही चलता कि किसको चोट लगी है ?

सुभद्रा की सासू भौक रही थी कि मुहल्ले के लोग भी उसके साथ ही साथ भौंकने लगे।

सुभद्रा को इस घटना, से मार्मिक व्यथा पहुँची। वह अपने ऊपर लगे कलक को कदाचित सहन कर सकती थी, परन्तु यहा तो एक पवित्रात्मा सन्त का भी प्रश्न था उसे अपने निमित्त से महात्मा को कलक लगना असह्य हो उठा। फिर महात्मा के साथ धर्म का भी सबध था। महात्मा के कलंक से धर्म भी कलकित होता था ! आखिर तो सर्वसाधारण जन किसी भी धर्म के अनुयायियो से ही उनके धर्म की अच्छाई बुराई का पता लगाते है ! यह सब सोचकर सुभद्रा का अन्तःकरण तिलमिला उठा। उसने निश्चय कर लिया कि प्राणों की आहुति देकर भी अपने, महात्मा के और धर्म के कलंक का निवारण करना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके सुभद्रा ने अपने कमरे में प्रवेश किया। दरवाजा बद करके वह तेला की तपस्या ग्रहण करके बैठ गई। नवकार मंत्र का जाप करने लगी। तीसरे दिन सत्य के अधिष्ठाता देवगण सती सुभद्रा की सेवा में उपस्थित हुए और बोले-सती ! तुम्हारे सत्य की रक्षा होगी !

चौथे दिन चम्पा नगरी के चारो दिशाओं के चारों फाटक बंद हो गये। देवो ने उन्हे ऐसी मजबूती के साथ बन्द कर दिया

कि लाख उपाय करने पर भी वे हिल न सके। प्रातः काल होते ही लोग बाहर जाने और भीतर आने के लिए फाटकों पर पहुचे, मगर फाटको के ताले तक न खुल सके ! सारी नगरी में हाहाकार मच गया। बाहर के लोग बाहर और भीतर के भीतर रह गये !

राजा यह समाचार सुनकर स्वयं फाटक पर आया। उसने भी अनेक प्रयत्न करवाये, पर न तो ताले ही खुले और न किवाड ही हिले। हाथियों से दरवाजा खुलवाने का भी प्रयास किया गया, मगर वह भी व्यर्थ हुआ। मनुष्य जितने भी प्रयत्न कर सकता था, किये गये और वे सब निरर्थक साबित हुआ।

इतने में देववाणी हुई–'अगर कोई पतिव्रता सती. चलनी को कच्चे सूत्र में बांध कर, कुएं में से पानी निकालेगी और किवाड़ों पर छिटकेगी तो फाटक खुलेंगे।'

यह सुन कर राजा ने कहा-मन्त्रीजी, रनवास में सभी रानियां सती है। किसी एक को बुलवा लीजिए।'

परन्तु मंत्री बड़ा चतुर था। वह किसी की इज्जत पर सीधा आक्रमण करना उचित नही समझता था। अतएव बात टालने के लिए उसने कहा–मालूम होता है, किसी सती पर संकट आ पड़ा हैं। उस संकट का निवारण करने के लिए ही यह देवी व्यवस्था की गई है अतएव नगर मे आम घोषणा करा देनी चाहिए कि जो अपने को सती समझे, वह आए और कच्चे सूत में चालना बांध कर कुए में से पानी निकाले।

राजा ने मंत्री की बात स्वीकार करली। घोषणा करवा दी गई कई स्त्रियों ने सोचा–पहले अपने बाड़े के कुएं में जांच

तो करले ! इस प्रकार जाँच करने में कई चालनियाँ कुएँ की शरण चली गई। उन स्त्रियो ने अपने मसूबे मन मे ही रख लिये।

सुभद्रा को भी इस घोषणा का पता चला। उसने अपने सत्य की परीक्षा के लिए जाना चाहा। सासूजी ने कहा-'सासूजी' मुझे दरवाजा खोलने के लिए जाने की आज्ञा दीजिए।'

सासू ने दाँत पीसते हुए कहा-अरी सीता ! चुपचाप बैठी रह क्यो रही-सही आबरू धूल मे मिलाती है ! पहले ही मुँह काला करा चुकी है !!

सुभद्रा ने कहा– सासूजी, इज्जत तो मेरी रही नहीं है, अब डर काहे का है ? मुझे एक बार जाने तो दीजिए।

सासू—अच्छा, तेरी मर्जी ! इच्छा हो सो कर।

सुभद्रा घर से चल पड़ी। सैकड़ों आदमी उसके पीछे हो गये। कई कहने लगे—देखना, चली है महासतीजी फाटक खोलने ! इसके विपरीत कई लोगों ने सुभद्रा के प्रति श्रद्धा व्यक्त की।

राजा ने कहा-यह आने वाली बाई सती मालूम होती है, वर्ना आने का साहस ही न करती। चलो, उसका स्वागत करे।

सब लोग आश्चर्य—चकित थे। सुभद्रा ने आते ही चालनी उठाई और कच्चे सूत में बाँधी। सूत जैसे लोहे का हो गया ! अब भी कई लोग शंका प्रकट कर रहे थे। मगर—

जमाना खुद बता देगा कि आगे क्या-क्या होगा है ?
कसौटी खुद बता देगी कि पीतल है कि सोना है ॥

सती ने चालनी कुएँ में डाली। खूब झकझोरी। पानी से भरी चालनी बाहर निकाली। एक भी बूंद न टपकी। फाटक पर ले जाकर अजलि मे पानी लेकर, नवकारमंत्र का जाप करके कहा—

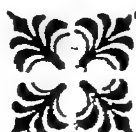
हे जिनदेव ! यदि मैंने अपने पति के अतिरिक्त किसी को मन, वचन, काय से न चाहा हो तो यह फाटक खुल जाय ! पानी फाटक पर गिरा और किवाड़ भड़ाभड़ खुल पड़े।

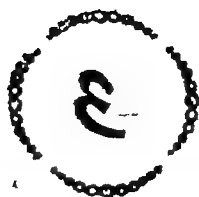
सती ने इसी प्रकार दो फाटक और खोले। जब वह चौथा फाटक खोलने चली तो देवो ने कहा—सती ! ठहर जा। नगर की कई स्त्रियाँ सासरे या पीहर गई होंगी। उनकी परीक्षा के लिए एक फाठक बन्द रहने दे।

इस प्रकार देवो ने सती के सत्य की रक्षा की। देवो ने और नागरिको ने पुष्पो की वर्षा की। सुभद्रा सती के जयजयकार से आकाश गूंज उठा सासू ने अब चुगली खाना छोड़ दिया। उसका सम्पूर्ण परिवार सच्चे वीतराग धर्म का अनुयायी हो गया।

सती सुभद्रा की भाँति धर्म पर दृढ़ रहने वाले आनन्द के भागी होते हैं।

इन्दौर
८-६-४५





परपरिवाद

स्तुति--

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान् पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ !

तीन लोक के समस्त प्राणियो की पीडा को हरण करने वाले नाथ ! आपको नमस्कार हो । पृथ्वीतल के निर्मल अलंकार आपको नमस्कार हो । हे तीन जगत् के प्रभु ! आपको नमस्कार

हे ससार-सागर का शोषण करने वाले जिनदेव ! आपको नमस्कार हो।

भाइयो ! मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि वह भगवान्-परमात्मा की स्तुति करे। कुछ लोगों के मन मे ऐसी शंका होती है कि स्तुति करने से क्या लाभ है ? क्या कलाकंद, पेड़ा, जलेबी आदि का नाम लेने मात्र से पेट भरता है ? पर भाइयो, कभी आपने यह भी सोचा है कि नीवू का नाम लेने से, उसका वर्णन श्रवण करने मात्र से आपके मु ह मे पानी आ जाता है ?

ज्यों नीबू का नाम लिये, मुंह में पानी भर आता है ?
उसी तरह प्रभु–नाम लिये जीवन पवित्र बन जाता है ॥

नीबू चाहे कूजड़े की दुकान मे रक्खा हो, चाहे आपके घर मे पड़ा हो उसका नाम लेने से ही मु ह मे पानी आ जाता है, इसी प्रकार परमात्मा का नाम लेने से-भजन करने से आत्मा में पवित्रता आ जाती है।

किसी का लड़का दस वर्ष पूर्व मरा हो, किसी को व्यापार मे दो वर्ष पूर्व घाटा लगा हो तो वह उस घटना को स्मरण करके 'हा' करके ठडी निश्वास नही छोड़ता ? क्या वह वेदना का अनुभव नही करता ? तो फिर क्या कारण है कि भगवान् का नाम याद आने से उन्हे आनन्द की प्राप्ति न हो ? और उनकी आत्मा पवित्र न बने ? इसलिए मेरी प्रेरणा है कि प्रतिदिन प्रातःकाल और सायकाल इस मत्र का जाप किया करो—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इस परमपावन, परमकल्याणकारी महामंत्र का जाप करने से आपकी सभी मनोकामनाएं सिद्ध होंगी।

भाइयो! मानव-जीवन की वास्तविक सफलता भगवद्-भक्ति में ही है। सदा भगवान् को अपने हृदय में स्थान दो और उसके नाम को अपनी जीभ पर रक्खो। अन्यथा—

कांटे से भी खराब है जिस गुल मे बू न हो।
वीरान की मीसाल है जिस दिल में तू न हो॥
गूंगी जबां हैं जिसकी, तेरी गुफ्तगू न हो।
जल जाय वो दिल जिसमें तेरी जुस्तजू न हो॥

वे फूल किस काम के हैं जिनमे सुगंध ही नही है? इसी प्रकार वह दिल ही क्या जिसमे परमात्मा का वास न हो? जिस जबान पर परमात्मा का नाम नही, वह तो गूंगी है। उस जबान का जल जाना ही कही बेहतर है, जिसके द्वारा परमात्मा का गुणकीर्त्तन न होता हो।

कल आपको सती सुभद्रा की पवित्र जीवनी सुनाई थी। सुभद्रा की जीभ और हृदय पर भगवान् का नाम न होता तो क्या वह निष्कलंक सिद्ध हो सकती थी? क्या सुभद्रा का सारा परिवार धर्मनिष्ठ बन सकता था? सारी चम्पानगरी मे धर्म की अपूर्व प्रभावना हो सकती थी? इसलिए भगवान् का भजन करने मे ही कल्याण मानना चाहिए।

यदि जैनधर्म मे ईश्वर की मान्यता न होती तो जैनधर्म के अनुयायी साधु को (मुझे) ईश्वर भजन का उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी?

ईश्वरवादी जैन सदा, अनीश्वरवाद मिटाता है।
ईश्वर बनने की आत्मा को यह युक्ति साफ बतलाता है।

जैनधर्म ईश्वरवादी है और ईश्वर का सच्चा स्वरूप बतलाकर अनीश्वरवाद का विरोध करता है। सच पूछिए तो जो लोग ईश्वर को मान कर उसके सिर पर दुनियादारी की जवाबदारी लाद देते हैं, उसे जगत् का कर्त्ता-हर्त्ता मान लेते हैं, वे ईश्वर के सच्चे स्वरूप को बिगाड देते हैं। जैनधर्म ने ईश्वर को सर्वथा निर्दोष वीतराग सर्वज्ञ और कृतकृत्य रूप में स्वीकार किया है। इतना ही नहीं, दूसरे लोक धर्म जब कि आत्मा को ईश्वर का दास होने तक की बात कहते हैं, तब जैनधर्म आत्मा को साक्षात् ईश्वर बन सकने का प्रेरणापूर्ण सदेश देता है। वह उपाय भी बतलाता है और असंख्य उदाहरण भी उपस्थित करता है। तीर्थंकरों के पावन जीवन ऐसे ही उदाहरण तो हैं, जो आत्मा होकर अपनी साधना द्वारा परमात्मपद के अधिकारी बने।

एक बार किसी जंगल में देवो और देवियों ने वनक्रीड़ा करने का विचार किया। वे सागर के तट पर क्रीडा करने लगे। वहाँ एक बदरिया का बच्चा बडा ही सुन्दर था। एक देवी उसे खिलाने लगी और बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद देवी जब स्वर्गलोक को जाने लगी तो बदरिया ने कहा—मै भी तुम्हारे साथ चलूगी। देवी तो यह चाहती ही थी कि बदरिया यदि मेरे साथ चले तो इसका बच्चा मुझे खिलाने को मिल सकेगा!

मगर बदरिया के जाने की बात जानकर बंदर बहुत

दुखी हुआ । उसने सोचा—मेरी सारी गृहस्थी चौपट हो जायगी ! बंदर ने उसे बहुत समझाया पर बंदरिया के मोटे दिमाग में एक न जची । आखिर बदर को एक युक्ति सूझी । उसने बदरिया से कहा—देख, अपना और देव-देवियो का मेल नही खा सकता । हम सब के पूंछ है, पर देवों के पूंछ कहा है ? फिर भी तू उनके साथ जाना चाहती है ? मर्जी हो तो भले जा ।

वन्दरिया ने अभी तक पूंछ के सम्बन्ध में विचार ही नही किया था । उधर उसका ध्यान ही नही गया था । अतएव उसने सोच विचार कर कहा—बात तो सच्ची है । इन बिना पूंछ वालों के साथ मैं नही जाउंगी ।

वस इसी प्रकार लोग अन्टसन्ट, असंवद्ध, बातें कह कर जनता को भुलावे में डाल देते हैं और कह देते हैं—जैन ईश्वर को नही मानते । जनता भोली बन्दरियों के समान उनकी बातो मे आ जाती है । इस तरह लोग जैन धर्म की निन्दा करते हैं । परन्तु वीतराग भगवान् ने निन्दा को भी पाप बतलाया है । शास्त्र मे कहा है—

> अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अन्तरा ।
> पिट्ठिमंसं न खाएज्जा, माया-मोसं विवज्जए ॥

कोई आपस मे बातचीत कर रहे हो तो बिना पूछे उनके बीच में बोलना उचित नही है । पीठ का मांस नही खाना चाहिए, अर्थात् पीठ, पीछे किसी की निन्दा नहीं करनो चाहिए । इसी प्रकार कपटपूर्वक मिथ्या भीषण भी नहीं करना चाहिए ।

यहाँ निन्दा करने को पीठ का मांस खाने के समान कहा है। इस कथन के सही आशय को न समझ कर अगर कोई कहने लगे कि जैन लोग तो सिर्फ पीठ का मास खाने का निषेध करते हैं, सामने का मांस खाने मे क्या हानि है ? ऐसा कहना भ्रमपूर्ण होगा। हमेशा प्रसग के अनुकूल वक्ता के भाव को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। कुरान शरीफ मे कहा गया है—

'किसी की गिब्बत करना अपने भाई का गोश्त खाना है।'

कहने का आशय यह है कि वक्ता के अभिप्राय को ठीक तरह से समझ कर ही उसके कथन का अर्थ लगाना चाहिए। यह बात दूसरी है कि उसकी बात किसी को मान्य हो अथवा न हो, पर किसी के कथन के आशय को तोड–मरोड़ करके विकृत रूप मे उपस्थित करना और फिर उसकी आलोचना करना अन्याय है। अगर आप किसी के सही आशय का खण्डन नही कर सकते तो ऐसा करने का साहस ही क्यों करते हैं ? और यदि साहस करते हैं तो फिर आशय को विकृत क्यो करते हैं ? स्मरण रखिए बुद्धिमानो के सामने आपकी यह दुर्बलता छिप नही सकती। अतएव किसी की मान्यता को गलत रूप मे पेश करना हेय है।

लक्षदोषान् परित्यज्य, गुणं गृह्णाति सज्जनः।
गुणलक्षान् परित्यज्य, दोषं गृह्णाति दुर्जनः॥

अर्थात्–सज्जन पुरुष लाख दोषों को छोड कर गुण ग्रहण कर लेता है। परन्तु दुर्जन व्यक्ति लाखों गुणो मे भी दोष को ही खोज निकालता है और उसी को ग्रहण करता है।

परन्तु जो लोग दोष न होने पर भी बलात् दोष का आरोप करके उसका ढिंढोरा पीटते है, उन्हें दुर्जन से भी हीन और क्या कहा जा सकता है ?

नीतिकारो का कथन है कि जिस दुर्जन को निन्दा करने की आदत पड जाती है, उसे निन्दा किये विना भोजन भी नही रूचता ।

कौवे को कितनी ही मिठाई खिलाओ, वह गंदगी पर बैठे बिना नही रह सकता । पर कौवे का कौन आदर करता है ? इसी प्रकार निन्दक की कही कद्र नही होती । निन्दक से पाला पडता है तो लोग कहते हैं–अजी जनाव, आप तशरीफ ले जाइए, कही आपके मुख से कीडे न झड पडे ! शास्त्रकार कहते हैं—

जहा सुणी पूइकण्णी निक्कसिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सीले पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जइ ॥

अर्थात्—जिसके कानों मे कीड़े पड़े हैं, ऐसी कुतिया घर-घर से निकाली जाती है, उसी प्रकार दुष्ट, अविनीत, वाचाल, निन्दक भी घर-घर से निकाल दिया जाता है ।

निन्दक की सर्वत्र कठोर शब्दों मे भर्त्सना की गई है । उसे जौंक की उपमा देते हुए एक कवि ने कहा है—

अवगुण को उमगे गहे, गुण न गहे खल लोक ।
पिये रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जौंक ॥

दुष्ट पुरुष गुणो का त्याग करके अवगुणों को ही बड़े उत्साह के साथ ग्रहण करता है । जैसे स्तन पर लगी

हुई जौक दूध नहीं पीती किन्तु रुधिर का ही पान करती है। तुलसीदासजी कहते हैं—

जहां कहिं निन्दा सुनहिं पराई।
हरसहिं मनु परी निधि पाई॥

निन्दक पुरुष दूसरे की निन्दा सुनकर ऐसा प्रसन्न होता है, मानो उसे अनायास ही खजाना मिल गया हो! परन्तु—

आबरू बढ़ जायगी निन्दा का करना छोड़ दे।
मान ले कहना मेरा, निन्दा का करना छोड़ दे॥
तेरे सिर मर क्यों धरे तू खाक लेकर और की।
दानिशमंद होवे अगर निन्दा का करना छोड़ दे॥

भाइयो! आप दूसरों के घर के पचड़े मे क्यो पड़ते हैं? अपनी ही निपट लीजिए। अगर आप अक्लमन्द हैं तो फिर दूसरे की निन्दा करके उसकी खाक अपने सिर पर क्यों डालना चाहते हैं?

नारायण तू बैठ कर, अपनो भवन बुहार।
तेरे भावे कछु करो, भलो बुरो संसार॥

आप अपना घर—अन्तःकरण स्वच्छ करो। दूसरो के घर के कूड़े-कचरे से आपको क्या मतलब है! भगवान् ने आपको सामायिक करने का उपदेश दिया है और उसमे पाठ आता है—

'तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि,
गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

अर्थात्—हे भगवान् ! मैं अपने उस पाप का चिन्तन करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूं और उस पाप से अपनी आत्मा को अलग करता हूँ।

इस पाठ का आशय आपने समझा ? यह पाठ हमें बतलाता है कि निन्दा करनी चाहिए, परन्तु अपने ही पापों की, अपने ही दोषो की, अपनी ही स्खलनाओ की आत्मनिन्दा करने से अपने दोषो के प्रति असन्तोष जागृत होता है और आत्मा की शुद्धि होती है। पर की निन्दा करने से आत्मा की मलीनता बढ़ती है, आत्मा का पतन होता है और लाभ कुछ होता नही। अतएव अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो पर-निन्दा के पाप से दूर रहिए।

गुलाब में अगर शूल है, माली को मतलब फूल से।

गुलाब के पौधे मे शूल भी होते हैं और फूल भी होते हैं। परन्तु माली शूल को नही फूल को ही ग्रहण करता है। इसी प्रकार तू मिट्टी के ठीकरे को मत देख, यह देख कि उसमे क्या रक्खा है ?

उत्तम विद्या लीजिए, यदपि नीच पै होय।
परो अपावन ठौर में, कंचन तजै न कोय॥

आप तो—

औगुण उर धरिये नहीं जैसे पेड़ बंबूल।
कालू कहे गुण लीजिए, नही छाया में शूल॥

बंबूल के पेड़ मे कांटे हैं तो रहने दो। उनसे तुम्हे क्या

प्रयोजन है ? उसकी छाया में तो कांटे नहीं हैं ? तुम उसकी छाया को ग्रहण कर सकते हो और कांटों से बच सकते हो। गुण ले लो, अवगुण को जाने दो।

अगर कोई हमें चोर या गुंडा अथवा नशेबाज कह दे तो हमारी क्या हानि है ? हमारा क्या बिगड जायगा ? हम निर्दोष है तो दूसरे के दोषी कह देने से ही हम दोषी नहीं हो जाएंगे। मैं तो आपसे कहता हूं कि यदि आपको मेरी निन्दा करने से मोक्ष मिल सकता हो तो मैं आज्ञा देता हू भरपेट मेरी निन्दा कर लो। मैं तो हर तरह से आपका कल्याण चाहता हू।

महात्मा अष्टावक्र बड़े उच्चकोटि के दार्शनिक माने जाते हैं। कहते हैं, राजा जनक ने एक बार महात्माओ की सभा बुलाई। अष्टावक्रजी सब के बाद में आये। उनके सब अग टेढ़े-मेढ़े थे। जब उन्होने सभा मे प्रवेश किया तो सब महात्मा खूब हसे। यह देखकर भी अष्टावक्रजी मौन रहे और वहा से जाने लगे। राजा जनक के बहुत अनुनय-विनय करने पर वे वापिस लौटे और लौट कर खूब जोर से, खिलखिला कर हसे।

राजा ने पूछा-आपकी हसी का क्या कारण है ?

अष्टावक्रजी बोले- पहले इन महात्माओ से पूछो-ये क्यों हसे थे ?

महात्मा आपका बाँका टेढा शरीर और कुरूप वर्ण देखकर हम लोगों को हसी आ गई थी।

अष्टावक्र —मैं इसलिए हसा कि मैंने महात्माओ के वेष मे इतने चमारो को आज ही देखा है।

राजा-महात्मन् ! महात्माओ की सभा को चमारों की सभा कहना क्या न्यायसगत है ?

अष्टावक्र – जो लोग ज्ञान–विज्ञान का आदर न करके केवल हाड–मास और चमड़ी की ओर ही देखते हैं. उन चर्म-दृष्टि लोगो को चमार न कहा जायगा तो किसे कहा जायगा ?

रूप न देखो साध का, जो देखो तो ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ॥

साथ ही—

जाति न पूछो साध को, जो पूछो तो ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ो रहन दो म्यान ॥

भाइयो ! जो हमे देख कर हसते हैं, उन्हे देख कर हमें भी हसी आती है । साथ ही दया भी आ जाती है कि हे भगवन् ! जो लोग साधु–सन्तो की ओर देख कर उनका उप-हास करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं, उन्हे किस नरक मे स्थान मिलेगा ? भगवान् ! इन्हे सद्बुद्धि प्राप्त हो ।

यह बडो गजब की बात सो आती है
हर वक्त मिले नही वह जिदगानी जाती है ।
क्यों ? कल्पवृक्ष को काट आक बोते हो ?
रत्नो का महल तज रोड़ी पर सोते हो !
अमृत अमोल से निज पग को धोते हो ।
सच्चे मोती तज झूठे को पीते हो ॥

भाइयो ! सोने के थाल में धूल क्यो भरते हो ? हाथी को कूड़ा-कचरा ढोने का वाहन क्यो बनाते हो ?

जिस प्रकार पर-निन्दा करना बुरा है, उसी प्रकार लोक-निन्दाजनक कार्य करना भी बुरा है । बुढापे मे विवाह करना अपनी हसी करना है और यह भयानक पाप है। ऐसा करने से लोगों को निन्दा करने का अवसर मिलता है।

एक बूढा विवाह करने के लिए बहुत उत्कंठित था । वह बीमार हो गया । जब डाक्टर उसकी नाडी देखने लगा तो वह बेसुधी की हालत मे कहने लगा—क्या मेरे हाथ में ककरण बाँध रहे हो ? इस प्रकार मरते-मरते भी विवाह करने की साध रखने वाले बूढ़े कहते हैं—

तीन रांड म्हने रंडुवा कर गई ।
एक रांड तो हूँ भी करस्यूं ॥

बूढ़े बनड़े का उपहास किस प्रकार होता है ? सुनिये—

बूढे बालम करें विवाह मौत के मुंह में जाने वाले ।
कमर मुड़ हुई तीर कमान, सेहरा बांधा सर पर तान ।
मुंह से चाबै नागर पान, मौत के पास सिधारने वाले ।

बुड्ढों ! विवाह मत करो, अन्यथा बालविधवाओं के पुनर्विवाह करने की लोग मांग करेंगे । विधवाओं को त्रास देने वालों ! बताओ विधुरो को विवाह करने की आज्ञा किसने दी है ? क्या कलदारों ने ? भाइयो ! उन भोली बाल-विधवाओ को देखो । सोचो—उनकी क्या दशा है ? बूढे विवाह कर-करके उन्हे रोने को छोड़ जाते हैं परिणाम स्वरूप भ्रूण

हत्याएं होती हैं और अनेको अनर्थ होते हैं। इसी कारण तो आज समाज दुखी हो रहा है और अशान्ति बढ़ रही है। किसी कवि ने कहाः—

व्याहन को कछु रीति करो तो,
पंदरह वीस पच्चीस में कीजे।
तीस भये सो तो खीस भये,
चालीस हुए पर नाम न लीजे॥
काम को वेग उठे तन माहीं,
लगाय के ज्ञान हृदय मे रमीजे।
पचास हुए पर व्याव करे तो,
काढ के जूतो कपाल में दीजे॥

कवि की यह उग्र सलाह है। पर मेरी सलाह तो है कि एक विवाह के बाद दूसरा विवाह करना ही नहीं चाहिए।

एक जमाना ऐसा था जबकि कन्याओ की सख्या अधिक थी! नवयुवको के विवाहित हो जाने पर भी कन्याएं बची रहती थी। इसी कारण उस समय एक से अधिक विवाह हो सकते थे। परन्तु आज कल तुम्हारे समाज मे हजारों कुंवारे विद्यमान हैं, फिर आपको दूसरा विवाह करने का क्या अधिकार है? मान लिया जाय कि आपके पास पैसा बहुत है परन्तु समाज मे आप और आपका गरीब भाई समान है।

भाइयो, यह उपदेश आज क्यों दिया जा रहा है? इस कारण कि कई लोग सिर्फ पर्युषण पर्व के अवसर पर ही

उपदेश सुनने आते हैं। उन्हे यह उपदेश सुनाना अत्यावश्यक था। जो उपदेश सुन कर और सत्संग करके भी अपने जीवन में कुछ सुधार नही करते, उनका जीवन निरर्थक हो जाने वाला है। देखिए:-

कासी में निवास कियो, मूढ़ को न खुलो हियो,
सूरज उद्योत भयो, अंध के अंधार है।
योग मिल गयो शुद्ध तो ही नहीं छोड़े रूढ,
ज्ञान नहीं पायो मूढ़, करमों की मार है॥
गंगा में भुलायो खर, तुरंग न होत पर,
अमृत से सींचे नीम मधु न निहार है।
समुद्र माही पैस प्यासो जो कोई रहे नर,
'हीरालाल' कहे तेने बड़ो धिक्कार है॥

भाइयों! आप भी इस सागर के निकट आये हो, वीतराग की वाणी रूपी सागर मे निमग्न हो रहे हो, तो प्यासे मत जाना। सत्संग पाकर अपना सुधार कर लेना। पराई निन्दा मत करना। उससे तुम स्वयं निन्दनीय बन जाओगे। अगर निन्दा करना ही है तो अपने दोषो की ही निन्दा करो। आत्म-निन्दा करने से अपने दोषों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और घृणा उत्पन्न होने पर उसको त्यागने की स्वयंस्फूर्त प्रेरणा मिलती है। अतएव अपने पापो की निन्दा करोगे तो कुन्दन बन जाओगे।

आत्मनिन्दा के प्रभाव से भरत चक्रवर्त्ती ने महल में ही

केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसी प्रकार प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने भी आत्मनिन्दा से सर्वज्ञता प्राप्त की थी।

आपकी आँख बाहर की ओर देखती है, उसे भीतर की ओर मोड़ लो। बहिर्मुख नेत्रों को अन्तर्मुख बनाओ। दूसरों के दुर्गुण देखने की आदत उनसे छुडाओ। उन्हे ऐसी शिक्षा दो कि वे अपने ही दुर्गुणों को देखने लग जाए और परकीय दोष देखने मे वद हो जाया करे।

कपडो के भीतर आदमी नंगा होता है। आपमें क्या-क्या दुर्गुण भरे हैं, यह बात आप स्वयं देखो और उन्हे दूर करके अपने आपको शुद्ध बनाओ। शुद्ध भूमि मे बीज अच्छा फलदायक होता है स्वच्छ स्लेट पर ही अक्षर सुन्दर आ सकते हैं। निर्मल काच में ही प्रतिबिम्ब ग्रहण करने की विशेष शक्ति होती है। अगर आपकी आत्मा पवित्र होगी तो उसमे संसार के सभी तत्त्व प्रतिबिम्बित हो उठेगे। फिर केवलज्ञान को खोजने के लिए कही बाहर जाना पड़ेगा।

बुरा-बुरा सब कोइ कहे, बुरा न दीसे कोय।
जो घट देखूं आपणा; मो सम बुरा न कोय॥

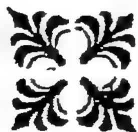
यह आत्मशोधक भावना है! उत्थान का यही मार्ग है। आपका उद्देश्य क्या है? अगर आप सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको आत्म बुद्धि करनी पड़ेगी। आत्म शुद्धि के लिए आत्मावलोकन आवश्यक है। आत्मावलोकन का अर्थ यह नही कि आप अपनी मौजूदा और गैर मौजूदा विशेषताओं का ढिंढोरा पीटे, अपना बड़प्पन जाहिर करने का प्रयत्न करें। नहीं, यह आत्मावलोकन नही, आत्मवचना है।

आत्मशोधन करता है तो, अपने दोषों को खोजो और खोज-खोज कर दूर करो। खाट में खटमल हो जाते हैं तो क्या आपको चैन मिलती है? घर मे सांप प्रवेश कर गया हो तो क्या आप निश्चिन्त हो सकते हैं? इसी प्रकार, अगर आपकी आत्मा में एक भी दोष मौजूद है और आपको उसके अस्तित्व का पता है तो आपको बेचैन हो जाना चाहिए। जब तक उसे निकाल बाहर न कर दे तब तक शान्त नहीं बैठना चाहिए। बस, यही सुख का मार्ग है यही कल्याण का राजपथ है।

इसके विपरीत अगर आप दूसरो की निन्दा करने चले है तो समझ लोजिए कि आप दुनिया की गंदगी को खोज खोज कर अपने भीतर भर लेने चले हैं। अपने आपको मलीन बनाने चले हैं। अपने मार्ग में कांटे बिछाने चले हैं। कल्याण के मंगल द्वार में ताला लगाने चले है।

यही कारण है कि भगवान् ने परनिन्दा को पाप में गिना है। इस पाप का परित्याग करो और आनन्द के भागी बनो।

इन्दोर
८-९-४५





रति-अरति

स्तुति--

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान् पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

भगवान् ! देवों ने आपके केवलज्ञान रूप बोध की पूजा की है, अतएव आप ही सच्चे बुद्धदेव हैं । तीन जगत् के समस्त प्राणियों को सुखकारी एवं कल्याणकारी होने के कारण आप ही

वास्तव में शकर है । आपने मोक्ष के मार्ग की रत्नत्रय रूप विधि को प्रकट किया है, अतएव आप सच्चे विधाता है ! प्रभो ! यह तो प्रकट ही है कि आप ही 'पुरुषोत्तम' अर्थात् विष्णु हैं ।

बौद्ध जिसे बुद्ध मानते है वह क्षणिकवादी है अर्थात् समस्त जगत् के पदार्थों को अनित्य-क्षण-क्षण मे सर्वथा नष्ट हो जाने वाले–मानते हैं । परन्तु अनुभव इस मान्यता को स्वीकार नही करता । अतएव परिपूर्ण ज्ञानी होने के कारण आप ही सच्चे बुद्ध हैं ।

शैव लोगो ने जिसे शंकर माना है, वह सृष्टि का संहारक है । जो शंकर अर्थात् कल्याणकारी होगा, वह जगत् का संहारक नही हो सकता । अतएव कल्याणकर मार्ग प्रदर्शित करने के कारण आप शकर हैं ।

रम्भा की विलासपूर्ण चेष्टाओं से जिसका तप नष्ट हो गया, उसे सच्चा विधाता कैसे कहा जा सकता है ? सच्चा विधाता वही है, जिसने मुक्ति की विधि सर्व प्रथम जगत् को बतलाई है ।

इसी प्रकार वैष्णव लोग अपने विष्णु के स्वरूप को बिगाड़ लेते हैं । वे विष्णु को गोपियो का चीर हरण करने वाला तथा परवनितानुरक्त प्रकट करते हैं । यह विष्णु का वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकता । अतः जो अपने आत्मिक प्रकर्ष के कारण पुरुषो मे उत्तम है, वही सच्चा विष्णु है । वह प्रकर्ष आपमे विद्यमान है, इस कारण आप ही सच्चे विष्णु या पुरुषोत्तम हैं ।

ऐसे परमपुरुष, मोक्षमार्ग के आदि विधाता, कल्याण-

कारी भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है।

कई लोगों का ख्याल है कि जैनधर्म के आद्य प्रवर्त्तक भगवान् महावीर हुए हैं। यह उनकी गहरी अभिलाषा है। जैनधर्म के प्रथम प्रवर्त्तक अगर महावीर स्वामी थे तो बताओ उनसे पहले के तेईस तीर्थङ्करो ने कौनसा धर्म चलाया था ? किस धर्म का उपदेश दिया था ? संतोष की बात है कि अब इस भूलभरी मान्यता में सुधार होता जाता है।

बड़ी कठिनाई तो यह है कि आजकल जैनों को भी अपनी मान्यताओ का पूरी तरह पता नही है। कई स्थान तो ऐसे हैं जहाँ ५०-६० वर्ष से साधु पहुँचे ही नही हैं। हमारे यहाँ साधुओ के अतिरिक्त और कोई उपदेशक वर्ग है नही। ऐसी स्थिति मे वहाँ के लोग धर्म के तत्त्व या महत्त्व को किस प्रकार जान सकते है ?

भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर में लगभग २५० वर्षों का अन्तर है। भ० पार्श्वनाथ के बाद और भ० महावीर से पहले के इस काल में जैनधर्म का विच्छेद नहीं हो गया था। पार्श्वनाथ की शिष्य-परम्परा भ० महावीर स्वामी तक बराबर चली आ रही थी। भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य-परम्परा के कई साधु महावीर स्वामी की परम्परा में सम्मिलित हुए थे, यह बात जैनशास्त्रों से स्पष्ट ज्ञात होती है।

एक बार पार्श्वनाथ के एक साधु महावीर की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान् को वन्दना नहीं की, क्योंकि उस समय महावीर और गोशालक—दोनों के शिष्य अपने-अपने गुरु को तीर्थङ्कर घोषित करते थे। मुनि ने आकर

भगवान् से चार प्रश्न किये। भगवान् ने उसका यथोचित्त समाधान किया। तब मुनि ने पूछा—आपने जो उत्तर दिये हैं सो सीखकर, सुनकर दिये हैं अथवा अपने ज्ञान से जान कर दिये हैं ? तब भगवान् ने फर्माया—ऋषभदेव से लेकर पार्श्वनाथ तक तेईस तीर्थङ्करो ने जो कहा है, वही मै कह रहा हूँ।

इस पर वह मुनि भगवान् के शिष्य बन गये और मोक्ष के अधिकारी बने। भगवती सूत्र मे यह वृत्तान्त आया है। इससे यही प्रतीत होता है कि जैनधर्म की परम्परा बहुत पुरानी है।

जैनागमो की सूक्ष्म और सतर्क दृष्टि से अगर छानबीन की जाय तो उसमे इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी है। पर इस दृष्टिकोण से उनका अध्ययन-अध्यापन नही किया जा रहा है।

जैनागमों में जो बारह अंग हैं, भगवती सूत्र उनमे पॉचवॉ है। उसमे उल्लिखित पापो का वर्णन आपको सुनाया जा रहा है। कल परपरिवाद अथवा निन्दा के सम्बन्ध मे कहा गया था। आज रति-अरति नामक सोलहवे पाप के विषय मे विचार करना है।

पाप-जनक कार्यों मे प्रीति होना और धर्म कार्यों मे अप्रीति होना रति-अरति कहलाता है।

वीर ने फरमा दिया है, पाप ये ही सोलवां।
अख्त्यार इसको मत करो है,पाप ये ही सोलवां॥
सत्सग तो खारा लगे, कुसंग में रहे रात-दिन।
जुवेबाजी बीच राती, पाप ये ही सोलवां ॥

सत्संग का नाम लेते ही अज्ञानी नाराज़ होते हैं। कहते हैं—इन बाबाओ के पास क्या धरा है? हम कहते हैं—हाँ भाई, तेरे लिए यहाँ क्या रखा है! तेरे लिए तो रामजनी के यहा रसगुल्ले पडे हैं। तू वही जाना चाहता है तो तेरी मर्जी! पर यम के जूतो तो मत भूल जाना। खोपडी गजी हुए बिना नही रहेगी!

ऐसे लोग सत्सगति की महिमा को नही समझ पाते। कहा है—

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी सगत साधु की, हरे कोटि अपराध॥

मान लीजिए, आपके सामने एक कटोरा दूध का, एक कटोरा शक्कर का और एक कटोरा नमक का भरा हुआ है। यदि दूध मे शक्कर डाल दी जाय तो क्या होगा?

'दूध मीठा हो जायगा'?
अगर उसमे नमक डाल दिया जाय तो?
'फिर तो उसे कुत्ते भी नही चाटेंगे!

बस, यही बात इस जीवन के विषय मे समझ लो। जो कोई अच्छी सगति करेगा वह गुणवान् बन जायगा और जो कुसगति में पड़ जायगा। उसका जीवन ही बर्बाद हो जायगा।

कुसंगति के कारण रईस का लड़का गोरक्षक से गोभक्षक बन गया। एक क्या, खोजने से सैकड़ो ऐसी घटनाएं मिलेगी।

एक बाई धर्म की अच्छी जानने वाली थी। उसे चौवि-

हार का खद था। और भी कई प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान उसने कर रक्खे थे। परन्तु कुसंगति में पड़ने से उसके समस्त त्याग-प्रत्याख्यानों पर पोता फिर गया! एक बार हम उसके गाँव मे गये और उसे उपदेश दिया तो उस बाई ने रो-रो कर कहा—महाराज, कुसग से मेरा पतन हुआ है। अब मैं संभल गई हूं। मुझे फिर त्याग प्रत्याख्यान करा दीजिए।

भाइयों! कुसगति में पड़ कर लोग लज्जा, कुल की मर्यादा और अपने हित-अहित के विवेक को भुला देते हैं। कई लोग गाँजा, भग, शराब और यहाँ तक कि अडे तक खाना सीख जाते हैं।

बदों के पास रहने से, शरारत आ ही जाती है।
सुसगति से बदो में भी, शराफत आ ही जाती है॥

आप अच्छे हैं तब भी बुरी सोहबत से बिगड़ जाएगे। जब आपको सुसग बुरा लगे और कुसग प्रिय लगे तो समझो कि आप सोलहवाँ पाप अपने सिर पर लाद रहे हैं।

दया दान सत्य शील की नसीहत करे वर्जे उसे।
देखो पसन्द आती नहीं, है पाप ये ही सोलवां॥

दया का नाम लेने पर शिकारी की आंखे लाल हो जाती है। दान का नाम लेते ही कजूस की नानी मर जाती है। सत्य का नाम लेने पर झूठी साक्षी देने का धधा करने वाला कहता है—इन बाबाओं के पास कहां आ गये! शील का नाम लेने पर लम्पट भौंहे चढ़ाता है! परन्तु भाइयो सच्चा उपदेशक इन सब से डरता नही है। हम इन चीजो की बुराई बतलाएंगे,

क्योंकि हमें डाक्टर का काम करना है। सडाँद को आपरेशन करके हटाना है। हम ऐसा चाकू घुसेड़ेंगे कि तुम भी याद रक्खोगे !

एक बार हम धार रियासत के एक गांव में गये। वहाँ बाहर गांवों के तीन-चार सौ चमार इकट्ठे हुए थे। उनका कोई जातीय काम था। जब हम जंगल गये तो रास्ते मे कुछ चमार मिल गये। उन्होंने हम से पूछा महाराज, हमें भी उपदेश सुनाओगे ? हमने कहा—क्यों नही ? हमारे लिए तो सभी मनुष्य समान हैं। तुम खुशी से उपदेश सुन सकते हो।

आखिर रात्रि के समय चमार उपदेश सुनने आये। हम भी वैद्यो की तरह नाड़ी-परीक्षा करना जानते हैं। रोग का निदान करके औषध देते हैं। हमने उन्हे शराब के सम्बन्ध में उपदेश देने का विचार किया। सब ने उपदेश सुना और हाथ जोड़कर शराब पीने का त्याग किया। उन्होने हमे एक पंचनामा लिखकर दिया, जिसमे कइयो ने हस्ताक्षर किये थे और कइयों ने अंगूठा लगाया था। उस पंचनामे में लिखा था-हमारी जाति मे कोई शराब नही पीएगा। इस नियम का उल्लंघन करने वाले पर ग्यारह रुपये दण्ड किया जायगा और उन रुपयों की जाति मे मिठाई बाँट दी जायगी। इन्दौर के चमार भी उस सभा में मौजूद थे।

दूसरे दिन ठेकेदार की शराब की कोठियाँ भरी धरी रह गई तो वह बहुत झल्लाया। उसने एक्साइज इन्स्पेक्टर को दरख्वास्त दी कि यहां एक जैन साधु आये हैं। उन्होंने शराब पीना छुड़ा दिया है। इससे सरकार को बहुत हानि पहुंचेगी।

इन्स्पेक्टर मेरे पास आये। मैंने कहा—बात सच है। मैंने शराब छोड़ने का उपदेश दिया और चमारों ने पीना छोड़ दिया। आपको भी मेरा यही उपदेश है। यह सुनकर वह चला गया।

इन्स्पेक्टर ने चमारों को इकट्ठा किया। वह उन्हें शराब पीने के लिये मजबूर करने लगा। परन्तु चमारों ने साफ इन्कार कर दिया। कुछ चमारों को जबर्दस्ती शराब पिला दी गई। उन बेचारों ने ग्यारह-ग्यारह रुपयों की मिठाई खरीद कर बाँटी। यह सत्संगति का ही प्रताप है!

एक बार उपदेश देते समय मैंने उदयपुर के महाराणा फतहसिंहजी से कहा था—आपकी प्रजा हमारे उपदेश के अनुसार चलने लगे तो फिर हथकड़ी, बेड़ी, जेल, पुलिस और कचहरियों की आवश्यकता ही न रहे। महाराणा ने इस बात को स्वीकार किया!

एक महात्मा ने एक वेश्यागामी को उपदेश देकर उसे वेश्यागमन का त्याग करा दिया। उसने वेश्या के घर जाना बंद कर दिया। उस वेश्या को जब इसका कारण मालूम पड़ा तो वह उन महात्मा के पास आकर बोली—महाराज! तुमने मेरा ग्राहक छीन लिया है, इस कारण मैं तुम्हारे माथे कुए में गिर कर मरती हूँ।

महात्मा ने कहा—प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह नर हो या नारी, बुराई से बचने का उपदेश देना हमारा कर्त्तव्य है। मैं तुम्हे भी यही उपदेश देना चाहता हूं। प्राण त्याग देने की अपेक्षा पाप का धंधा ही क्यों नहीं त्याग देती?

एक वार जोधपुर में हमारा चातुर्मास हुआ। उस समय वहाँ सात तडे थी। जिनेश्वर देव की कृपा से वहाँ एकता हो गई। वहाँ के भाइयों ने सात नियम स्वीकार किये। उनमें एक नियम रण्डी का नाच न कराना भी था।

जब हम जंगल जाने के लिए शहर के बाहर निकले तो हमें रंडियो ने घेर लिया और कहा-महाराज, आपने हमारे पेशे पर क्यो हाथ डाला ?

मैंने उनसे कहा—बाइयो ! मेरा तुमसे भी यही कहना है कि इस धन्धे को छोड़ दो। पेट के लिए आत्मा को गिराना उचित नही है।

गांजा चरस चंडू तमाखू, बिड़ी सिगरेट भंग कई।
पी-पी मगन रहते सदा, है पाप ये ही सोलवां ॥

गाँजा पीने वाले कहते है—

जिसने न पी गांजे की गोली।
उस मर्द से औरत भली ॥

परन्तु भाइयो ! इन मादक वस्तुओ का सेवन करने से अत्यधिक हानि होती है। वे इहलोक और परलोक को बिगाड़ने वाली वस्तुएं है।

एक बार एक आदमी से पूछा गया--क्यों भाई कुछ सत्संग करते हो ?

उसने कहा—जी हाँ ! छह महीने से कुछ सत्संग शुरू किया है।

'क्यों भाई ! कुछ नवीन सीखे भी हो ?'

क्यो नही, पहले तो मैं जर्दा भी नही पी सकता था, अब गाँजे की चिलम भी मजे से खीच लेता हूँ।'

लो, हो गया, सत्संग हुआ कि कुसंग ? भाइयों !

कभी भंग का रगड़ा लगाओ, मतो,
अपने पैसे को मुफ्त लुटाओ मतो ।

गाँजा, भाँग आदि मस्तिष्क को विगाड़ने वाली वस्तुएं हैं। इनसे रति करना और इनका सेवन करना अपने जीवन को नष्ट करना है।

ज्ञान ध्यान ईश्वर भजन में-नाराज तू रहता सदा ।
गोठ नाटक में मगन है, पाप ये ही सोलवाँ ॥

ज्ञान, ध्यान आदि आत्मकल्याणकारी कार्यों से विरक्त रहना और नाटक, सिनेमा, गोठ आदि में अनुरक्त रहना ही सोलहवाँ पाप है।

नाटक, सिनेमा आदि व्यापारिक दृष्टि से, धन कमाने की गर्ज से चलाये जा रहे हैं। अतएव उनमें शिक्षाप्रद अंश तो कही नाम मात्र के ही होते हैं, प्राय. अश्लील और विकार वर्धक तत्त्व ही प्रधान रूप से रहते हैं। इन्हें देखकर लोग दुराचार चोरी, डकैती, बेईमानी और बदमाशी ही प्राय. सीखते हैं। खेद है कि आजकल सिनेमा का प्रचार बढ़ता ही चला जाता है। कोमल-व्यस्क बालकों के लिए तो सिनेमा जीवन घातक ही साबित हो रहा है। इन्हे देख-देख कर वे कुसंस्कारी

बन रहे हैं। परन्तु इस ओर किसी का ध्यान नहीं है। सरकार का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा के हित के लिए इस ओर ध्यान देकर सिनेमा-प्रवृत्ति पर अकुश लगाए और हानिजनक फिल्म को बनाने से रोके। पर न जाने क्यो वह कुछ करती नहीं है। वास्तव मे यह सिनेमा टी. बी. (राजयक्ष्मा) की बीमारी के समान हैं। जैसे राजयक्ष्मा लागू होने पर शायद ही पिण्ड छोडता है, उसी प्रकार सिनेमा का शौक भी एक बार लग कर छूटने का नाम नही लेता !

भाइयो ! इस बीमारी से बचो और अपनी सन्तान को बचाओ। आप लोगों को ऐश आराम मे रति मालूम होती है, परन्तु इस रति से दुर्गति होती है।

एक नवयुवक अपनी दुकान पर बैठता था। वह छोटे गाँव का रहने वाला था। बड़ा चालाक था। आपको विदित ही है कि छोटे गाँवो की स्त्रियाँ स्वयं पानी लेने जाती हे।

एक सरदार फौज मे अफसर था। उसकी नवविवाहिता पत्नी रूप-रंग की अच्छी थी। वह भी पानी भरने जाया करती थी। नवयुवक दुकान परबैठा-बैठा सरदार की पत्नी की ओर घूरता और उसे लक्ष्य करके खखारता था। शुरू मे कई दिनो तक सरदार की पत्नी ने इस हरकत की ओर ध्यान नही दिया। पर एक बार उसका ध्यान आकर्षित हुआ। वह समझ गई कि यह नौजवान मुझे देख कर ही ख़खारता है।

सरदार की पत्नी सदाचारिणी थी। उसने सोचा—मेरा हृदय शुद्ध है, अतः इसकी किसी भी हरकत से मेरी कोई हानि नहीं हो सकती। फिर भी यह दुनियाँ बड़ी विषम है।

किसी दूसरे को पता चलेगा तो मेरी बदनामी होगी, मुझे कलंक लगेगा ! अतएव इसका कुछ न कुछ इलाज करना ही चाहिए।

घर आकर वह उदास होकर बैठ गई जब उसके पति ने उदासी का कारण पूछा तो स्त्री ने साफ-सा बतला दिया तुम सरदार हो और सेना के अधिकारी हो और तुम्हारी औरत को देख देख कर लोग खखारते हैं। यह कहाँ तक सहन किया जा सकता है ?

पत्नी की बात सुनते ही सरदार की आँखों से खून बरसने लगा। उसने कहा—नाम बताओ, मैं उसका सिर काँट लूंगा।

पत्नी और यदि आपको फाँसी हो गई तो मैं जिन्दगी रोती-रोती काटूंगी ! ऐसा उपाय कीजिए कि न साँप मरे, न लाठी टूटे।

पत्नी ने युक्ति बतला दी।

दूसरे दिन सरदार घोडे पर सवार होकर बाजार मे निकला। वह नवयुवक दुकान पर बैठा-बैठा सरदार को देख रहा था। बाद मे उसकी पत्नी पानी भरने निकली। नवयुवक ने प्रतिदिन की भाँति आज भी खाँसना शुरु किया। तब सरदारनी उसके पास जाकर बोली-यहाँ बैठे-बैठे खाँसने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? आज सरदार घर पर नही है। चाहो तो घर पर आना।

नवयुवक यही चाहता था। उसने सरदार को घोड़े पर बैठ कर जाते देख लिया था। उसकी प्रसन्नता का पार नहीं

रहा। उसने सारा दिन श्रृंगार करने मे व्यतीत किया। भोजन भी रूचिकर नही लगा। सूर्यास्त की राह देखते-देखते ऊब गया। ज्यो त्यो करके शाम हुई और नवयुवक सरदार के घर जा पहुचा। दरवाजा खटखटाया तो स्त्री ने आकर किवाड़ खोल दिये और उसे अन्दर बुला लिया।

अन्दर पलग बिछा था। नवयुवक पलग पर जा बैठा। सरदारनी ने मुस्किरा कर कहा-यह सारी रात अपनी ही है। चलो, चौपड खेले। नवयुवक इसके लिए तैयार हो गया। थोड़ी देर चौपड़ खेलते हुए ही थे कि किसी ने बाहर से किवाड़ खटखटया।

सरदारनी—कौन है?

सरदार ने कहा—खोलो दरवाजा, मैं आ गया हूँ।

नवयुवक को काटे तो खून नही! उसके प्राण सूख गये। घबराकर बोला-अब क्या होगा?

सरदारनी—होना क्या है! तुम्हारा और मेरा सिर धड़ से अलग होगा।

नवयुवक कांप उठा। बोला-देवी, तेरे पैरों पड़ता हूँ। किसी प्रकार मेरे प्राणो की रक्षा करो। कही छिपा दो।

स्त्री—कहाँ छिपाऊं! यहाँ तो मत्कुण के छिपने की भी जगह नही है।

नव०—कोई उपाय करो।

स्त्री—देखो, यह मेरी दासी का लहंगा और ओढ़ना पड़ा है। इसे पहनलो और चने दलने बैठ जाओ। मैं कह दूंगी-दासी है।

मरता क्या नही करता ? नवयुवक को यह युक्ति भी पसन्द आ गई। वह चक्की चलाने लगा।

उधर दरवाजा खुला। सरदार पलंग पर लेट गया। उसकी पत्नी पैर दबाने लगी। थोडी देर के वाद नवयुवक सुन सके, इस तरह सरदार ने कहा—कौन चला रही है चक्की ?

स्त्री—अपनी दासी दल्लड़ी है।

सरदार--यह भी कोई समय है चक्की पीसने का ?

स्त्री – घोड़े के लिए दाना दल रही है।

सरदार—तो दिन भर क्या करती रही हरामजादी ?

स्त्री--और काम भी तो करती है। तुम तो यो ही लड़-झगड़ कर नौकरानियो को भगा दिया करते हो।

'न जाने दिन भर क्या करती रहती है नालायक' यह कह कर सरदार ने नालदार जूतों से दल्लड़ी की खूब पूजा उतारी ! मगर दल्लड़ी ऊंह भी न कर सकी। चुपचाप जूतों की मार खाती रही। इस प्रकार मरम्मत करने के वाद सरदार ने उसका हाथ पकड़ कर वाहर निकाल दिया और ऊपर से दो लातें और जमाई !

दल्लड़ी ने इसे भी गनीमत समझा। सोचा-जान बची, लाखो पाये !

नवयुवक, दल्लड़ी के वेष में अपने घर पहुँचा। द्वार वन्द था और घर के सब लोग सो चुके थे। उसके द्वार खटखटाने पर उसकी स्त्री ने आकर द्वार खोला और पतिदेव की यह हालत देखकर आश्चर्य किया। नवयुवक ने कपड़े बदले

और कान पकड़ कर प्रतिज्ञा की कि आगे फिर कभी ऐसी चक्कर मे नही पड़ूंगा।

दूसरे दिन सरदार की पत्नी नवयुवक के कपड़े लेकर उसके घर आई। उससे कहा—क्यो आज खाँसी नही आ रही है?

नवयुवक लज्जित होकर बोला-अब बीमारी मिट गई है!

भाइयो! कहने का अभिप्राय यह है कि पाप का आचरण करने से परलोक के साथ-साथ यह लोक भी बिगडता है। अतएव पापो के प्रति रतिभाव और धर्म के प्रति अरति-भाव धारण न करो।

पापाचरण करने वाला स्वयं ही पतित नही होता, वरन् वह दूसरो को भी पतित होने की प्रेरणा करता है।

एक दुराचारो पुरुष की पत्नी बड़ी चतुर थी। उसने जब देखा कि पति सीधी तरह राह पर आने वाले नही तो एक दिन एक युक्ति की। उसका पति जब सज-धज कर वेश्या के यहाँ जाने लगा तो वह भी शृंगार करके साथ ही निकलने लगी। पति ने पूछा-तुम कहा जा रही हो? पत्नी ने कहा—जहाँ आप जा रहे हैं वही मैं भी जाऊंगी। आप किसी प्रेमिका से मिलने जाते हैं तो मैं भी किसी प्रेमी की खोज करने जाती हूं। पत्नी, पति के अनुरूप ही होनी चाहिए। दोनों का शील-स्वभाव एक सरीखा होने से ही गृहस्थी अच्छी चलती है! आप मेरे समान नही हो सकते तो मुझे आपके समान होना चाहिए।

पत्नी का यह उत्तर सुनकर पति की वुद्धि ठिकाने आ

गई। उसे अपने आचरण के दुष्फल की कल्पना आ गई। स्त्री ने अपने कौशल से पति की रक्षा कर ली। कोई साधारण स्त्री होती और उसके मन मे भी वास्तव मे दुराचार की प्रेरणा जगी होती तो वह चुपके-चुपके दुराचार में प्रवृत हो गई होती। दुराचारी पुरुषो की पत्नियाँ प्रायः इसी मार्ग का अनुसरण करती हैं। सच पूछा जाय तो अपनी पत्नियो को बिगाड़ने मे पुरुषो का ही मुख्य हाथ रहता है। परन्तु मैं बहिनो से कहता हूं कि कदाचित् पुरुष गलत राह पर चलता हो तो तुम उसका अनुसरण मत करो। अपनी जिंदगी को कलंकित मत करो। बल्कि पति को ही सही राह पर लाने का प्रयत्न करो। याद रक्खो, पाप मे शक्ति नही होती। पापी की आत्मा सबल नही, दुर्बल होती है। अगर तुम दृढ निश्चय कर लो कि अधिक से अधिक मूल्य चुका कर भी अपने पति को सुधारना है तो कोई कारण नही कि वह न सुधर सके। पतिव्रता पत्नी का यही कर्त्तव्य है। ऐसी पत्नी सराहनीय है जो अपनी दृढ़ता से पति को भी सत्पथ पर ले आती है। उसकी गृहस्थी स्वर्ग बन सकती है।

जो माता पिता स्वयं सदाचारी होगे, उनकी सन्तति भी सदाचरणशील होगी। वे अपने बाल-बच्चों के सामने सुन्दर उदाहरण उपस्थित कर सकेंगे। इसके विपरीत अधर्मरत माता-पिता अपनी सन्तान के सामने बुरा उदाहरण पेश करके स्वयं भी डूबेंगे और अपनी सन्तान को भी डुबोएंगे।

भाइयों! सोचे समझे बिना कोई कदम न उठाओ। अपने हित-अहित को सोचो। ज्ञानी पुरुषों ने मनुष्य-जाति के

कल्याण के लिए जो मार्ग बतलाया है, उस पर चलो। धर्म पर प्रीति रक्खो और पापो का परित्याग करो। ऐसा करने से आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा और जीवन सार्थक हो जायगा।

इन्दौर
८-६-४५





माया-मृषा

(क्षमाप्रदान–दैवी चमत्कार)

स्तुति--

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं–हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान् पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ !

भगवान् सन्त पुरुष आपको अव्यय कहते हैं । आपने जो परम पद प्राप्त किया है, उस पद से कभी च्युत होने वाले

नही हैं। आपकी मुक्तदशा अव्यय है। साथ ही, हे वीतराग ! आप विभु अर्थात् व्यापक भी है। अर्थात् आपका ज्ञान लोक-अलोक मे सर्वत्र व्याप्त है।

कई लोग समझते हैं कि परमात्मा शरीर से सर्वत्र व्याप्त है। मगर उनकी यह समझ भ्रमपूर्ण है। परमात्मा को शरीर से सर्वव्यापी माना जाय तो ससार मे दूसरे पदार्थों को कही जगह नही मिलनो चाहिए। यह तो आप देख ही सकते है कि जिस जगह एक स्थूल वस्तु होगी वही दूसरी स्थूल वस्तु नही रह सकती जहा आप बैठे हैं वही दूसरा व्यक्ति नहीं बैठ सकता इस प्रकार विचार करने से स्पष्ट होता है कि परमात्मा शरीर से व्यापक नही है। उसकी व्यापकता ज्ञान की अपेक्षा ही है।

प्रश्न किया जा सकता है कि ज्ञान आत्मा का गुण है और गुण, गुणी मे ही रहता है। गुणी को छोड़कर गुण अकेला, कही नही रह सकता। ऐसी स्थिति मे परमात्मा का ज्ञान अगर सर्वव्यापी है तो परमात्मा भी सर्वव्यापी होना चाहिए।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि परमात्मा का ज्ञान परमात्मा को छोड़ कर बाहर नही रहता, फिर भी उसे जो सर्वव्यापी कहा गया है सो इस कारण कि वह लोक और अलोक को अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के पदार्थों को जानने की शक्ति से सम्पन्न है। इसी दृष्टिकोण से यहां भगवान् आदिनाथ को विभु अर्थात् व्यापक बतलाया गया है।

भगवान् का स्वरूप मन के अगोचर होने के कारण अचिन्त्य है। वह स्वरूप आत्मा के द्वारा अनुभव ही किया जा सकता है। भगवान् असख्यात प्रदेशमय आत्मस्वरूप है, अतः

असंख्य भी हैं। प्रथम तीर्थंकर होने के कारण 'आद्य' हैं। आद्य का दूसरा अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। श्रेष्ठपद को प्राप्त करने से भगवान् श्रेष्ठ हैं। सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओं का विधान करने के कारण ब्रह्मा है। ईश्वर हैं। अनन्त गुणो से विराजमान है और कामवासना को जीतने वाले हैं। भगवान् शुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं और समस्त विकारों से रहित होने के कारण निर्मल हैं। ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! इस समय, इस क्षेत्र में कोई तीर्थंकर विद्यमान नहीं हैं। तब भी उनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग शास्त्रों के द्वारा जाना-समझा जा सकता है। उस मार्ग पर चल कर आत्मा का कल्याण किया जा सकता है और समस्त दुःखों का अन्त भी किया जा सकता है। भगवान् महावीर के शिष्य-साधु भी आज मौजूद हैं और चन्दनबाला की चेलियां (महासतियां) भी मौजूद हैं। भगवान् के शिष्य भगवान् के चपरासी हैं। वे भगवान् के शासन के अनुसार यथाशक्ति चल रहे हैं और उनके उपदेशों-आदेशों का प्रचार कर रहे हैं।

श्रावक और श्राविकाओं की गणना भी तीर्थ मे की गई है। उन पर भी भगवान् के आदेशो का पालन करने की और उनका प्रचार करने की जिम्मेदारी है। अतएव जहाँ साधु नही पहुंच सकते वहां श्रावको और श्राविकाओ को भगवद्धर्म का प्रचार करना चाहिए।

जहाँ तक रेल जा सकती है, वहाँ तक जाती है। जहाँ नही जाती वहाँ दूसरे वाहनो से काम लिया जाता है। इसी प्रकार जहाँ तक साधुओ की मर्यादा उन्हे ले जाती है, वे जाते

और प्रचार करते है । उससे आगे का उत्तरदायित्व आप लोगो पर है ।

भाइयों! आज सवत्सरी महापर्व का पावन दिन है । पर्युषण के पूरे सप्ताह मे आपने धर्म की जो आराधना की है-समभाव की साधना की है, उसे आज चरितार्थ करना है । आज आपको प्राणी मात्र से अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा-याचना करनी है । इस अपूर्व अवसर को आप रिवाज के तौर पर न मनाएं, रूढि के रूप मे क्षमायाचना न करें, परन्तु अन्त:करण मे सच्चा समभाव लाकर, निष्कषाय होकर अपनी आत्मा को पवित्र बनाकर क्षमायाचना करे और अपने हृदय को नश्शिल्य बना लें । अगर आज के दिन भी आपने सच्चा प्रतिक्रमण न किया और कषाय के मल को न धो डाला तो आपके सम्यक्त्व मे बाधा उपस्थित हो जायगी ।

जीवन क्षण भगुर है । श्वास कब तक चलता रहेगा और कब अटक जायगा यह कोई नही जानता । कौन कह सकता है कि एक वर्ष के पश्चात् किसे यह अपूर्व अवसर मिलेगा और किसे नही ? अतएव भाइयो ! इस अवसर पर अब तक के समस्त पापों को धो डालो । अपनी आत्मा को पवित्र बना डालो ।

जैसा कि पहले भी मैंनें कहा था, आत्मा को पवित्र बनाने का उपाय पापो का परित्याग करना ही है । हिंसा आदि की भाँति माया-मृषावाद भी बड़ा पाप हैं । यह दगाबाजी और झूठ-इन दो पापो से बना हुआ मिक्स्चर है । मायामृषावाद का आशय है-कपट के साथ झूठ बोलना ।

फायदा इसमें नहीं क्यो झूठ बोले जाल से,
इसका नतीजा है बुरा, क्यों झूठ बोले जाल से।
दगाबाजी झूठ मिलकर, पाप सतरहवां बना,
जायज नही है ऐ सनम, क्यों झूठ बोले जाल से ॥

भाइयों ! कपट भी बुरा है और झूठ भी बुरा है, फिर कपट युक्त झूठ मे दोहरी बुराई क्यो नही होगी ?

अच्छी बुरी दोनों मिला, अच्छी बता कर बेच दे।
इसी तरह से वस्त्र दे, क्यों झूठ बोले जाल से ॥

लोग लोभ के वशवर्त्ती होकर घी में, दूध मे, जर्दे मे, हींग में और केसर आदि वस्तुओं मे मिलावट करके बेच देते हैं। पुराने कपड़े को धुलवा कर और नया कह कर बेच देते हैं।

भाइयों ! एक-दो सौ रुपया कमा भी लोगे तो क्या हो जायगा ? आखिर तो मझधार मे डूबना पडेगा। उस समय वे रुपये क्या लाभ पहुँचाएंगे ? तुम्हारे वे रुपये तो वकील, डॉक्टर आदि पहले ही खा जाएंगे।

कई लोग दूसरे का भेद लेने के लिए जाल-फरेब की बाते कहते हैं। कहते हैं-हमे सब कुछ मालूम है कह दो न, क्या बात है ?

अरे जालसाज ! तुझे मालूम है तो फिर क्यों पूछता है ?

इस प्रकार धोखा देकर दूसरे की बाते खुलवाई जाती हैं, परन्तु इसे भी मायामृषावाद समझना चाहिए।

भेष जवां दोनों को बदल, चाल भी देवे बदल ।
रूप को भी फेर दे, क्यों झूठ बोले जाल से ॥

धूर्त लोग ठगने के लिए पंजाबी, गुजराती, मुसलमान, पारसी, सिख आदि भी बन जाते है। वे अपना रूप और भाषा भी बदल लेते हैं। पर किसी को धोखा मत दो। धोखेबाज आदमी वास्तव मे अपने को ही धोखा देता है। इसलिए सद्गुरु की सीख को सुनो, समझो और मानो। कपट जाल मत रचो।

बड़े भाग्य मानव-तन पावा ।
सुर-दुर्लभ सतग्रन्थ निभावा ॥

यह मानव-देह देवो को भी दुर्लभ है। पुण्य के योग से आपको यह देह मिली है और आर्यभूमि, उत्तम कुल तथा निरोगता आदि की प्राप्ति तो सोने मे सुगन्ध के समान है। आपको हाथ मुंह आदि जो अवयव मिले है, उनका पाप-जनक उपयोन न करो।

मुख दिया तुझे भजने को क्यों नही भजता ।
तेरे दोनो हाथ से सुमिरन क्यों नही करता ॥
कानों से प्रभुजी की वाणी क्यों नही सुनता ।
तेरी छती शक्ति से तपस्या क्यों नही करता ॥

कानो से भगवान् की वाणी सुनो, आँखो से जीव-जन्तुओं की रक्षा करो, जिह्वा से जिनगुणगान करो, मीठे वचन बोलो। शरीर से तपश्चर्या करो, दूसरो की सेवा करो। ऐसा करने से ही तुम अपने मानव-तन को सफल बना सकोगे।

भाइयों! अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ धर्म पर आस्था रक्खो। देखिए चम्पा-नरेश की रानी धारिणी अपने धर्म पर कितनी दृढ़ रही!

चन्दनबाला–चरित

उस समय की बात है जब भगवान् महावीर तपश्चर्या करते हुए विचर रहे थे। एक बार आपने कठोर अभिग्रह ग्रहण किया था। उन्होने निश्चय किया-राजा की लड़की हो, हाथो मे हथकड़ियाँ और पैरो में बेडियाँ हो उसका सिर मुंडा हुआ हो, एक पाव दरवाजे के भीतर और एक बाहर हो, सूप मे उड़द के बाकले हो लड़की की आँखो में आँसू हों और वह आहार दे तो मैं लूंगा, अन्यथा छह मास का उपवास है!

भगवान् को यह अभिग्रह लिये ३-४ मास व्यतीत हो गये। प्रभु आहार के लिए पधारते हैं परन्तु कहीं भी अभिग्रह की पूर्ति नहीं होती। वे निराहार लौट आते हैं। भक्तो को यह देख कर चिन्ता होती है, परन्तु भगवान् तो उसी समभाव मे मगन हैं। उन्हे न खेद है न चिन्ता! इसीलिए तो भगवान् महावीर कहलाये! उनका धैर्य कितना महान् है।

वीर वीर मन रट ले रे, महावीर हरे सब पीर,
वो वीर की महिमा क्या जाने,
सम्यग्ज्ञानी ही पहिचाने।
महावीर जिसके मन में वो जन ही धारे धीर॥

भगवान् विहार करते-करते कौशाम्बी नगरी पधारे।

प्रतिदिन वे भिक्षा के लिए जाते है, परन्तु योग नही मिलता है ! यद्यपि भगवान् चार ज्ञान के धनी थे, परन्तु उन्होने कभी इस बात का विचार ही नही किया कि अभिग्रह कब पूरा होगा ? विचार करके जान लेते तो कर्मों की निर्जरा होने में बाधा पहुँचती ।

नित प्रति गोचरी जाते हैं पर,
विधिवत् आहार नही पाते हैं ।
स्वामी अनन्त बल के धारी,
मन में विषाद नही लाते है ॥

कौशाम्बी के नर-नारी अनेक उपाय करते हैं । कोई मोतियो के थाल लिये खड़े रहते है तो कोई जोड़े से खडे रहते है । भगवान् से आहार ग्रहण करने को प्रार्थना करते हैं, परन्तु भगवान् आते हैं और चले जाते हैं। भगवान् को निराहार देख सब लोगों को व्यथा होती है, परन्तु किसी का वश नही चलता । कोई नही जानता कि भगवान् ने क्या प्रण किया है ?

राजा दधिवाहन को राज्य लिप्सा ने बुरी तरह घेर लिया है । लिप्सा बढी तो उसके लिए कौशाम्बी का राज्य छोटा हो गया । वह चम्पा का राज्य भी हड़पना चाहता है । अतएव उसने अपने सेनापतियों को बुलाया और चम्पा पर धावा बोल दिया । चम्पानरेश को इस आक्रमण की संभावना तक नहीं थी । अतएव यकायक हुए हमले का सामना नही किया जा सकता । सेना अस्तव्यस्त हो गई और चम्पानरेश सुरग से निकल कर जगल मे चला गया ।

कौशाम्बी के सैनिको ने चम्पा में लूट मचा दी। जिसके हाथ जो लगा, उसने वही अपने कब्जे मे कर लिया।

दधिवाहन की सेना का सेनापति, जिसका नाम पायक था, चम्पा–नरेश के महल मे जा पहुँचा। वहां उसे महारानी धारिणी और उनकी कन्या वसुमती (चन्दनबाला) हाथ लग गई। साथ ही उनके पहनने के लाखो के आभूषण भी उसके हाथ लग गये।

पायक धारिणी और चन्दनबाला को रथ मे डाल कर जंगल मे ले गया। रास्ते मे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। वह कामान्ध होकर धारिणी का शील नष्ट करने को तैयार हो गया। परन्तु शेरनी का सतीत्व क्या कुत्ता छीन सकता था? सती धारिणी ने जब देखा कि या तो धर्म की ही रक्षा हो सकती है या शरीर की ही, तो उसने धर्म की रक्षा करना ही उचित समझा। रानी ने अपनी जीभ काट कर प्राण दे दिये!

आज हमारी बहिनें कह सकती हैं क्या करे, मजबूर थे! परन्तु

जाने न दूं धर्म को चाहे प्राण तन से निकले।
निकले तो एक निकले, जिनजी का नाम निकले॥

बहिनो और भाइयो! धर्म पर प्राण देने वाले वीर पुरुषों और नारियो की ही विरुदावली बखानी जाती है, उन्ही के गीत गाये जाते हैं। कायरो का क्या स्थान है इस दुनिया मे?

सती ने धर्म की रक्षा के लिए प्राणो का उत्सर्ग कर दिया तो पायक घबरा उठा! उसका पाप उसके कलेजे को कुरेदने

लगा। उसके होश ठिकाने आ गये। उसने चन्दबाला को, जो माता की मृत्यु से हतबुद्धि हो गई थी, साँत्वना देते हुए कहा-मेरी वुद्धि भ्रष्ट हो गई थी अब मैं चेत गया हूँ। तेरे साथ अन्याय नही करूंगा। तू निर्भय होकर मेरे साथ चल।

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ?

जो भाग्य मे लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है ? चन्दनवाला अपनी किस्मत का नाटक देखने के लिए पायक के साथ चल दी।

६

शौशाम्बी नगरी के एक मुहल्ले में पायक का घर था। पायक चन्दनबाला के लिए पानी लेने जब घर के भोतर गया तो वह अपनो पत्नी की सूरत देखकर चकित रह गया। वह रोष और असन्तोष की प्रतिमूर्त्ति बनो बैठी थी। समझ रही थी कि यह दुष्ट इस चुड़ैल को कही मेरी सौत न बना ले! उसे क्या पता था कि साथ आई हुई कन्या महती सती है! जब उसकी पत्नी से न रहा गया तो उसने साफ-साफ कह दिया—इस कन्या को अभी-अभी घर से बाहर कर दो, अन्यथा मे महाराज से निवेदन करूंगी कि मेरा पति एक कन्या को अनीतिपूर्वक उड़ा कर ले आया है ?

पायक के प्राण सूखने लगे। उसने चन्दबाला को घर से निकाल देने का निश्चय किया।!

चोर बाजार में ग्राहकों की क्या कमी ? एक लावण्य-मयी राजकन्या बाजार मे विकने आई। उसका मोल सवा लाख मोहरे था। रूप के व्यापारी (वेश्याएं) इकट्ठी हुई।

बोली बढ़ने लगी। आखिर एक वैश्या ने सवा लाख मोहरों में चन्दना को खरीद लिया। उसे विश्वास था कि इसके कारण कई सवा लाख मोहरें प्राप्त की जा सकेंगी।

जब सौदा तय हो गया तो चन्दनबाला ने पूछा— तुम्हारे यहाँ क्या धन्धा होता है? वेश्या बोली—

हकीकत मुझ घर की सारी,
कहूँ मैं तुझ से विस्तारी ॥
नित्य नमा है पहरना, नित्य नया भरतार।
कभी नही रांड बने प्यारी,
कहूँ मै तुझ से विस्तारी ॥

चन्दनबाला को समझते देर नही लगी कि यह वेश्या है। उसके कोमल और धार्मिक हृदय को ऐसा आघात लगा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ी। जब होश आया तो बोली—

हो शील-सहायक कोई तो,
संकट की बिरियां तुम आओ।
करुणा-निधान धर ध्यान इधर,
दुखियारो षर करुणा लाओ ॥
बिछुड़े माता-पितु बचपन में,
किससे जाकर फरियाद करूं ?
है सिवा आपके कौन मेरा,
भगवान्! जिसको मैं याद करूं?

चन्दनबाला कहती है—प्रभो ! हे दीनानाथ ! मैं कुंवारी हूं, मेरे शील की रक्षा करो। मेरे माता-पिता, राजपाट आदि सब चले गये परन्तु उनके लिए मुझे दुःख नही है। लेकिन हे दीनदयाल ! शील मेरे जीवन का सर्वस्व है, मेरे प्राणों का प्राण है। उसकी रक्षा करो। आपके अतिरिक्त मेरी फरियाद सुनने वाला अन्य कोई नही है।

नैया का तू ही खिवैया है,
इस निश्चय को नही छोड़ूंगी।
चाहे जिस तरह आजमा ले,
प्रण किया नही मैं तोड़ूंगी ॥
मिन्नतें मैं जितनी करती हूँ, तू उतनी देर लगाता है।
तुम-सा सच्चा साहब सुजान, नही और नजर में आता है ॥

विलम्ब कर रहा है और मेरी प्रतिष्ठा खतरे मे पड़ती जा रही है। भगवान् तेरे सिवाय मेरा और सहारा नही है।

क्या करूं सरे बाजार बीच, जाती है लाज इलाज नहीं।
मैं धार मार कर रोती हूँ, कोई धीर धरैया आज नहीं ॥

हाँ प्रभो ! क्या इस पृथ्वी पर से धर्म उठ गया ? क्या पुण्य और पाप सब एकाकार हो गया ? अब मैं क्या करूं ?

देती हूँ प्राण अपने कर घात हाथ से मैं।
पिल की लगी बुझा ले, ओ दिल जलाने वाले ॥

असहाय चन्दनबाला—राजकुमारी वसुमती—आज अपने

धर्म की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग करने को तैयार हो रही है ! वह विचार करती है–इस शरीर का क्या करना है ? शरीर तो धर्म की साधना के लिए है। यदि इससे धर्म की साधना नही होती, बल्कि यह अधर्म का साधन बनता हो तो फिर इसकी रक्षा करने से लाभ ही क्या है ? इस क्षण विनश्वर शरीर से शाश्वत धर्म का उपार्जन करना ही योग्य है। इस प्रकार सोच कर राजकुमारी जब प्राण त्यागने का उपक्रम करती है, तब वेश्या उसका हाथ पकड़ लेती और उसे घसीट कर अपने साथ ले जाना चाहती है। पर यह क्या ? हजारो बानरो के झुड के झुन्ड अचानक टूट पडते है, वेश्या के वस्त्रो के चिथड़े चिथडे कर डालते हैं, शरीर की चमड़ी नोच लेते हैं ! वेश्याए हाय-हाय करती भागती हैं ! सोचती हैं—यह तो कोई बलाय है !

देवगण प्रकट होते हैं और चन्दनबाला से कहते हैं:—

है अटल शील तेरा देवी !
इसमें किंचित् सन्देह नही।
भक्तों के सदा सहायक हम,
दुष्टों से हम को नेह नही ॥

अहो ! उस समय का दृश्य कैसा अनुपम रहा होगा ! वास्तव में जो धर्म पर अटल रहता है, दिव्य शक्ति उसकी सहायता करती है।

इसी समय उधर से एक सेठ निकला। सेठ धर्मात्मा था। उसने चन्दनबाला को रोती देखा तो सारा हाल पूछा। पायक ने कहा-यह लड़की बिकाउ है। वेश्याओं ने इसे खरीद

लिया था, पर देवी बाधा आ जाने के कारण वे ले नहीं जा सकी।

सेठ ने सोचा— हम गायों और बकरों की रक्षा करते हैं, तब यह तो मानव है, क्यों न इसकी रक्षा की जाय ? मानव-रक्षा करना मनुष्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है सेठ बोले–लाओ, इस कन्या को मुझे सौंप दो। कीमत हो, हमसे ले लो।

भाइयो ! सेठ ने उस कन्या का मोलतोल नही किया। बडे आदमियो मे ऐसी उदारता होती है कि वे किसी वस्तु की कीमत नही ठहराते। वे मुंह-माँगा दाम दे देते हैं।

हैदराबाद के मौजूदा नवाब के पिता मौजूद थे। एक बार कुंवर साहब आम वाले से भाव पूछने लगे। यह देख नवाब बहुत खफा हुए। बोले–भाव-ताव क्यो कर रहा है ? आम पसन्द हैं तो लो और आम वाला जितने पैसे माँगे, दे दो। मोल-तोल करने वाला क्या राज्य करेगा ?

इसी प्रकार मल्हार राव होकर एक बार गोखड़े में बैठे थे। उधर से मूंगफली बेचने वाला निकला। गरम मूंग-फली थी। वह आवाज लगा-लगा कर मूंगफली बेच रहा था। महाराज ने एक मुठ्ठी मूंगफली ले ली और एक मुट्ठी रुपया उसे दे दिये।

एक बार जैनोदय समिति की पुस्तके बेचने वाला महा-राणा भूपालसिंहजी के पास गया। पुस्तक भेंट की। पुस्तक की जो कीमत थी उससे कई गुना अधिक इनाम में रुपये दिए और हाथ मे उसे पोशाक दी !

इसे कहते हैं—बड़े आदमियों की उदारता !

हां, तो वह सेठ चन्दनबाला को अपने साथ लेकर घर पहुँचा। चन्दनबाला शान्ति से रहने लगी। प्रतिदिन सामायिक करती, प्रतिक्रमण करती और दानधर्म का आचरण करती थी।

सेठ की पत्नी का नाम मूला था। वह भी चन्दनबाला को वेटी की तरह मानने लगी। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये।

एक दिन सेठजी बाहर से आये उनके पैर कीचड में भरे थे। चन्दनवाला स्नान कर रही थी। सेठजी पैर धोने के लिये चन्दनबाला के पास चले गये। चन्दनबाला ने कहा-पिताजी, मै ही आपके पैर धो देती हूं। यह कह कर जब वह पैर धोने लगी तो उसके बाल- उसके मुंह के आगे आ गये! सेठजी ने अपने हाथ से बाल पीछे की ओर कर दिये। सेठानी मूला यह दृश्य देख रही थी। उसके चित्त मे शका ने स्थान ग्रहण कर लिया। वह सोचने लगी– मैं बूढी होने आई हूँ! कही इस छोकरी पर सेठजी की नीयत न बिगड जाय!

मनुष्य में न जाने कितनी कमजोरियाँ छिपी हैं! कुशंका करना भी उसकी एक बड़ी कमजोरी है। यह कमजोरी जब चित्त मे स्थान ग्रहण करती है तो मनुष्य अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा एक नवीन-सी सृष्टि रच लेता है।

संयोगवश सेठजी किसी प्रयोजन से वाहर चले गये। मूला सेठानी ने चन्दनवाला को पकड़ कर उसका सिर मूंड दिया। हाथो मे हथकड़ियाँ और पैरो मे वेड़ियाँ पहना दी। फटे-पुराने वस्त्र पहना दिये और तहखाने मे बन्द करके अपने पीहर चली गई। इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गये।

चौथे यिन सेठजी घर आये । घर को सूना देख कर उन्होने अपने सेवको से पूछताछ की तो मालूम हुआ—सेठानी अपने मायके गई है। सेठजी ने फिर पूछा—और चन्दनबाला कहाँ है ?

नौकर सिर्फ यही बतला सके कि वह सेठानीजी के साथ नही थी ।

सेठजी के चित्त मे कौन जाने कैसी अन्तःप्रेरणा जागृत हुई कि वह 'चन्दनबाला ! ओ चन्दनबाला !' कह कर जोर—जोर से पुकारने लगे। कई आवाजे लगाई। अन्त मे एक क्षीण किन्तु गम्भीर आवाज तहखाने मे से सुनाई दी—'पिताजी !'

सेठजी ने आवाज पहचानी और वे उसी ओर लपके । तहखाने मे पहुँच कर जो दृश्य उन्होंने देखा उससे वे दंग रह गये । उनके चित्त मे अपार व्यथा हुई। नेत्रो से पानी झरने लगा । आखिर चन्दनबाला को तहखाने से निकाल कर बाहर लाये। चन्दनबाला ने तेले की तपस्या कर रक्खी थी ।

बाहर आते ही सेठजी ने अपने सेवको से कहा-जाओ, लुहार को जल्दी बुला लाओ । चन्दनबाला की बेड़ियाँ कटवानी हैं।

सेठजी चन्दनबाला को भूखी—प्यासी समझ कर कुछ खाने को देना चाहते थे। मगर सभी कमरो मे ताले लगे हुए थे। वह परेशान हुए। नौकरो से पूछा तो मालूम हुआ-खाने योग्य कोई वस्तु बाहर नही है। घोड़ो के लिए उबाले हुए उडद के बाकले ही हैं। वही बाकले एक सूप मे भर कर चन्दनबाला के सामने लाये गये ।

चन्दनबाला धार्मिक सस्कारो से सम्पन्न थी। उसने विचार किया— मैं तेले की तपस्या का पारणा कर रही हूं। इस समय कोई मुनिराज पधार जाते और उन्हें आहारदान देने के अनन्तर मैं पारणा करती तो कितने सौभाग्य की बात होती ! इस भावना से प्रेरित होकर वह घर की देहली तक खिसक आई थी।

उधर भगवान् महावीर स्वामी भिक्षा के लिए पधारे। भगवान् को देख कर चन्दनबाला का हृदय, घोर विपत्ति के समय भी, प्रसन्न हो उठा। उसकी आँखों मे पहले आसू भर-भर आये थे, पर इस समय आँसू सूख गये। भगवान् ने विचार करके देखा—बारह बोल मौजूद हैं, सिर्फ एक बोल की कमी है—आखों मे आँसू नही हैं ! यह सोच कर भगवान् भिक्षा लिये विना ही वापिस लौटने लगे।

एक बोल घटतो जाणी—
सती की आँखों में नही देखा पाणी।
वीर जिनन्द फिरे तत्काला,
धन धन धन्न सती चन्दनबाला ॥

उस समय चन्दनबाला के मन की व्यथा का वर्णन कौन कर सकता है ? मानों कुवेर का भण्डार आँखो से दिखाई देकर अदृश्य हो रहा है ! समुद्र मे डूबते को अचानक आश्रय मिल गया और वह आश्रय गायव हो रहा है ! चन्दनबाला अधीर हो उठी। वह फूट-फूट कर रोने लगी। सोचने लगी—जिन त्रिलोकीनाथ का आसरा था, आज वही इस दुखिया के यहां से विमुख होकर जा रहे हैं ! हाय भाग्य का कुचक्र !

प्रभो ! इस अनाथ बालिका के हाथ से दो दाने ही स्वीकार कर लो। नाथ ! आप तो घट-घट की जानते हो ! क्या इस दुखिनी की पुकार न सुनोगे ? दीनदयाल ! आप करुणा के सागर कहलाते हुए भी क्या इस दीन अबला पर नही पसीजेंगे ? ससार मे जिसका कोई नही, उसके आप हैं। फिर मुझ पर अकरुणा क्यो ? प्रभो ! जब तक आप मेरे हाथ से अन्न ग्रहण न करेंगे, मैं तेले का पारणा न करूंगी।

इस प्रकार अपनी आन्तरिक वेदना को व्यक्त करके चन्दनबाला बिलख-बिलख कर रोने लगी। फिर बोली आओ नाथ ! पधारो मुझे उबारो, मेरो विपदा को टारो।

प्रभु ने ज्ञान लगा कर देखा तो सती की आँखो मे आँसू भी मौजूद थे। अब भगवान् के सभी अभिग्रह पूरे हो गये। भगवान् लौटे और सती के सामने भिक्षा के लिए हाथ फैला दिये ! चन्दनबाला ने उड़द के बाकले भगवान् को बहरा दिये !

उसी समय सती की हथकडियाँ और बेडियाँ झड़ पडी। सिर पर गज-गज लम्बे केश आ गये ! हर्ष के आवेग से उसका चित्त प्रफुल्लित हो गया ! चन्दनबाला उस समय ऐसी प्रतीत होने लगी, जैसे स्वर्ग से अवतरित हुई कोई देवबाला हो ! देवो ने साढे बारह करोड़ स्वर्ण-मोहरों की वर्षा की ! जयजयकार की गभीर गर्जना से गगन प्रांगण गूंज उठा !

कौशाम्बी मे सर्वत्र हर्ष की हिलोरें उठने लगी। आज प्रजा की मनमानी हुई। प्रभु का पारणा हुआ ! सेठ के हर्ष की सीमा न रही। उधर मूला सेठानी को यह संवाद मिला तो वह भी, पीहर से भागी-भागी आई और लोगो से कहने लगी-खबरदार ! मोहरो को हाथ न लगाना !

चन्दनबाला का व्यक्तित्व महान् था। उसकी विचार-धारा उदार थी। कोई दूसरी बाला होती तो प्राणों को संकट में डालने वाली मूला का मुंह देखना पसन्द न करती। परन्तु चन्दनबाला तो असाधारण थी। उसने माता मूला को अपनी महाउपकारिणी समझा। वह मूला के पैरों मे गिर कर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगी। कहा माताजी! आपने मुझे देवदुर्लभ सौभाग्य प्रदान किया है! मैं आपकी आजीवन ऋणी हूँ। आपने मेरा महान कल्याण किया है आपकी कृपा से मैं कृतकृत्य हुई हूँ। आपके प्रति मेरे मन मे किंचित् भी दुर्भाव नही है। हाँ, मेरे निमित्त से आपके चित्त मे जो क्षोभ हुआ है, उसके लिए मैं क्षमा चाहती हू।

सेठानी मूला ने चन्दनबाला को छाती से चिपटा लिया वह फूट-फूट कर रोने लगी। चन्दनबाला से अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करके बोली-चन्दना, तुम पारस हो। तुमने लोहे को सोना बना दिया! इस कुल की कीर्त्ति को अक्षय कर दिया!

चन्दना ने गद्गद् होकर कहा—माताजी! विषाद न करो। इसमे आपका कुछ भी अपराध नही। यह तो होनहार ही था। ऐसा न होता तो भगवान् अपने घर को कैसे पावन करते? माता, आपका उपकार तो असीम है। मेरा नही, सारे जगत् का कल्याण हुआ है। आज न केवल मध्यलोक मे ही, वरन् स्वर्गलोक मे भी अपार आनन्द छाया हुआ है।

चन्दनबाला के इस प्रशस्त और महान् दान की सर्वत्र ख्याति हो गई। महाराजा दधिवाहन, उनकी पटरानी और कौशाम्बी के गण्य-मान्य प्रतिष्ठित पुरुष सेठ के घर आये। रानी

ने सती चन्दनबाला के दर्शन की उत्कंठा प्रकट की। चन्दनबाला उपस्थित हुई।

चन्दनबाला को देखकर रानी को बड़ा विस्मय हुआ। वह चन्दनबाला की मौसी लगती थी। रानी ने अपनी बहिन का हाल पूछा और चन्दनबाला ने पूरी राम कहानी कह सुनाई। उस अतिशय करुण कथा को सुन कर रानी का गला भर आया। उसकी व्यथा उमड़ पड़ी। फूट-फूट कर रोने लगी। चन्दना भी रोयी और रानी भी रोयी। अन्त में रानी ने कहा-बिटया! तूने बड़ा कष्ट उठाया है। अब हमारे साथ चल और वही रहना।

चन्दना बोली—मेरी माताजी–साथ चलें तो मैं चलूं। क्या आप उन्हे भी साथ ले चलेगी?

रानी—अवश्य, अवश्य।

राजा-रानी के साथ सेठ-सेठानी और चन्दनबाला राजमहल को चले। पायक और वेश्या को गिरफ्तार कर लिया गया। राजा ने चम्पानगरी को स्वतंत्र घोषित कर दिया। चम्पानरेश ने फिर अपना राज्य प्राप्त किया।

चम्पा-नरेश ने अपनी पत्नी और पुत्री की खोज की, मगर कुछ भी पता न चला। बहुत खोज करने पर अन्त में मालूम हो सका कि चन्दनबाला कौशाम्बी-नरेश के पास है। चम्पा-नरेश पुराने विरोध को भूल कर कौशाम्बी आये। दधिवाहन ने उनका यथोचित स्वागत किया। बाप और बेटी के मिलन का दृश्य असाधारण था। दोनो नेत्रो से अश्रु धाराएं प्रवाहित होने लगी। धारिणी करुणापूर्ण प्राण समर्पण

श्रवण कर राजा एकदम और व्यथित हो गया। चन्दनबाला के साहस और धैर्य पर राजा ने उसे धन्यवाद दिया !

कुछ दिनों तक ठहर चम्पा-नरेश ने चन्दनबाला को चम्पा चलने का आग्रह किया। तब चन्दनबाला बोली-पिताजी ! मैं संसार त्याग करने का निश्चय कर चुकी हूँ। ज्यों ही भगवान् महावीर केवलज्ञान प्राप्त करके जगत् का उद्धार करने लगेंगे, त्यों ही मैं दीक्षा लेकर आत्मा का कल्याण करुंगी असार संसार की ओर मेरी जरा भी रुचि नहीं है। मैं इस चक्र में फंसना नहीं चाहती।

आखिर चम्पा-नरेश निराश होकर चले गये। चन्दना कौशाम्बी मे रहती हुई, धर्मध्यान और दान-पुण्य करती समय व्यतीत करने लगी।

× × × ×

राजा दधिवाहन ने चन्दना से पूछा-सती ! बताओ, इतना दुःख तुम्हे किसने दिया ?

चन्दना—कर्मों ने !

राजा—नहीं, उसका नाम बताओ। मैं उसे घानी में डाल कर पील दूंगा। उसकी चमड़ी उघड़वा लूंगा और उसे कत्ल करवा दूंगा।

चन्दना-नही महाराजा ! इसकी कोई आवश्यकता नहीं।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता,
परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥

हे मानव ! कोई दूसरा तुझे सुख देता है अथवा दुःख देता है, इस बुद्धि को त्याग दे। वास्तव में कोई किसी को सुख दुःख नही दे सकता।

भाइयो ! प्रत्येक प्राणी अपने किये कर्मों के फल के अनुसार ही सुखी या दुखी होता है। दूसरे पर आरोप करना भ्रम मात्र है।

चन्दनबाला बोली—महाराज ! मुझे जो दुःख सहन करना पडा है, वह मेरे ही कर्मों का फल है। मैं तो अनुरोध करती हूँ कि आप वेश्या और पायक को भी छोड़ दीजिए। यह तो मेरे कर्मों के औजार मात्र ही हैं।

चन्दनबाला का अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। दोनो मुक्त कर दिये गये। धर्मनीति ने राजनीति पर विजय प्राप्त की।

धन्य हो चन्दनबाला ! तुम्हारी उदारता और क्षमा-भावना धन्य है ! यही कारण है कि तुम छत्तीस हजार साध्वियों की गुरु बन सकी !

भाइयों ! चन्दनबाला का यह चारु चरित चन्दन से भी अधिक शीतलता प्रदान करने वाला है। इस चरित का आप सब को अनुकरण करना है। आज ही आपकी कसोटी होने वाली है। आज क्षमायाचना का दिवस है। चन्दनबाला ने अपने घोर दुश्मनों को भी उदारभाव से क्षमा कर दिया था। क्या आप भी उन्हे क्षमा प्रदान करेंगे जिन्होंने आपका अहित किया है, जिन्हे आप विरोधी समझते हैं और जिनके प्रति आपके अन्तःकरण मे कषाय मौजूद है ? अगर आपने

अन्तःकरण से क्षमा का आदान-प्रदान किया तो आप अपना महान् कल्याण करेंगे। आपके हृदय मे चुभने वाला शल्य निकल जायगा।

दैवी चमत्कार

चन्दनबाला के महान् दान पर देवों ने स्वर्ण वृष्टि की यह एक दैवी चमत्कार है। इस चमत्कार के विषय में कई लोग आशंका प्रकट करते हैं। उन्हे समझाने के लिए आज महाराज श्री ने दैवी चमत्कारो के कुछ आधुनिक उदाहरण उपस्थित करते हुए फर्माया:—

(१) पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज जब नाथद्वारे में पधारे थे तो आकाश से रुपयो की वर्षा हुई थी। उनमें का एक रुपया मैं स्वयं नाथद्वारे में देख कर आया हूं।

(२) रामपुरा की घटना है। एक बाई के हाथों मे ज़ंजीर पड़ी हुई थी जब उस बाई ने महाराजश्री को आहार बहराया तो उसकी जजीर अकस्मात् ही जड़ पड़ी।

(३) पूज्य धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय के एक साधु ने संथारा किया। संथारा करने के कारण उस साधु की तबियत ठीक हो गई। वह संथारा छोड़ कर उठने लगा। यह खबर पूज्य धर्मदासजी महाराज तक पहुंची। पूज्य श्री ने अपने शिष्य को कायर समझ कर स्वयं संथारा कर लिया। शिष्य उठ गया।

(४) नेतसिंह महाराज ने सैलान के जंगल में संथारा किया था। वहां देवता उनकी सेवा करता था।

(५) मेवाडी मुनि (पूज्य) मानजी स्वामी ने प्रत्यक्ष भैंरो को बुलाया था। उन भैरों के पुजारी अब भी जैनधर्म का पालन करते हैं।

(६) रत्नचन्द्रजी महाराज जब जावरा पधारें तो वहाँ रात्रि के समय रोज देवता आकर महाराजश्री से मांगलिक सुनता था।

(७) रोडजी स्वामी ने अभिग्रह लिया था कि हाथी आहार देगा तो पारणा करूंगा, अन्यथा जीवन-पर्यन्त आहार का त्याग करता हूँ। सयोग से उदयपुर के राणाजी का हाथी पागल हो गया। उसने हलवाई की दुकान से मिठाई की छाब उठाई और महाराज की ओर बढ़ाई। महाराज ने उसे अपने पात्र मे लेकर पारणा किया।

(८) एक बार इन्हीं रोड़जी स्वामी ने प्रतिज्ञा की कि साँड आहार दे तो लू गा, अन्यथा नही, कई दिनो बाद एक सांड ने गुड की भेली अपने सीग मे डाली। वह नीचा मुंह करके महाराज क सामने आया। महाराज ने अपना पात्र आगे बढाया। साँड ने सिर हिलाया और गुड़ पात्र में आ गिरा। महाराज ने उसी गुड़ से पारणा किया।

(९) जोधपुर मे पूज्य अमरसिहजी महाराज ने देव से साक्षात्कार किया।

(१०) दरियापुरी सम्प्रदाय के मुनि धर्मसिहजी महाराज अहमदावाद मे दरगाह मैं जाकर ठहरे। कहा जाता था-जो उस दरगाह में रात्रि मे रहता है, वह मर जाता है। परन्तु वहाँ के जिंद ने महाराज श्री की सेवा की थी।

(११) अम्बाला मे लालचन्दजी महाराज का अग्नि-संस्कार हुआ, परन्तु आश्चर्य की बात तो यह रही कि उनका चादर और चोलपट्टा नही जला। वे दोनो वस्त्र अब तक मौजूद हैं।

(१२) महान् तपस्वी वेलजीऋषि ने चौदह वर्ष या इससे भी अधिक समय तक केवल छाछ पीकर तपस्या की। इस तपस्या के साथ-साथ बेला तेला आदि की तपस्या भी चलती थी। उनके संबध में भी अनेक चमत्कार हैं।

सच तो यह है कि इस दृश्य जगत् के अतिरिक्त एक अदृश्य जगत् की भी सत्ता है। स्थूल दृष्टि लोग उसे नही देख पाते। मगर जिन्होने उस जगत् की सत्ता को देखा या उस पर विश्वास किया है, उन्हें ऐसी बातो पर शंका नहीं हो सकती।

कहो भाई—आनन्द ही आनन्द !

इन्दौर |
११-६-४५ |



राज्यभूषण, रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी का वक्तव्य

परमपूज्य गुरुदेव ! महासतियांजी ! वहिनो और भाइयो !

आज मैं अपना अहो भाग्य समझता हूं कि महाराजश्री की प्रेरणा पाकर मुझे आपके सामने कुछ शब्द कहने का अवसर मिला है। इसके लिए मैं महाराज श्री का ऋणी हूं।

हमारा सौभाग्य है कि बाईस वर्ष के बाद श्री (महाराज श्री) का इन्दौर मे चातुर्मास हो रहा है। आज जो आनन्द हम यहा देख रहे हैं, वह सब श्रीजी की ही तपस्या और त्याग का फल है।

श्रीजी की अमूल्य वाणी हम सुन रहे हैं। हम उसे सुनकर, सिर हिला-हिला कर प्रशसा भी करते है। जब कोई हम से पूछता है महाराज श्री का व्याख्यान कैसा हुआ, तो हम उनके सामने प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं और कहते हैं— बहुत ही अच्छा हुआ ! और बस !

भाइयों ! इतने मात्र से काम नही चलेगा। श्रीजी का उपदेश भंडारी मिल्स् मे हुआ था। श्रीजी ने समयोचित शराब निषेध पर व्याख्यान फरमाये थे उनका असर उन गरीब दीन और अशिक्षित भाइयो पर वह हुआ कि वे सैकड़ों की संख्या मे शराब छोड़ चुके हैं। उन्होने जो-जो प्रतिज्ञाएं की, उनका दृढता से पालन किया है। वे अपनी प्रतिज्ञा का हमसे अधिक ध्यान रखते हैं।

हम तो नगाड़े के घोड़े या मन्दिर के कबूतर हो गये है। हम उपदेश सुनकर अमल बहुत कम करते हैं। जैसे मन्दिर का कबूतर नौबत की आवाज की परवाह नही करता, उसी प्रकार हम अपने श्रीजी की वाणी की परवाह नही करते। यही कारण है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था छिन्न भिन्न हो रही है।

माता हमें प्रेम से दूध पिलाती है। उसके वक्षस्थल का अमृत हमारे उदर में पहुँचता है। उसका वात्सल्य हमारे उपर निछावर हो जाता है! हम उस माँ के लाल कहलाते हैं और उसी मे हम अपना गौरव मानते हैं। माता हमे आशीष् देती हैं, हम कार्य क्षेत्र मे उतरते हैं। वीरों की तरह मैदान को जीतते हैं और माता का गौरव बढाते हैं। माता ने ऐसे अवसर के लिए ही हमे दूध पिलाया था।

पर जब हम कायर बन कर अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं, तो लोग भी कहने लग जाते हैं–'अरे माता का दूध क्यो लजाया!'

मित्रों! आज हम इस (महाराज श्री की ओर सकेत करके) माता का दूध पी रहे हैं। अतः दो महीने पीते हुए हो गये। यह हमारे लिए ऊंचे से ऊचे तत्त्वो को ढूंढ़ कर, शास्त्रों का मन्थन करके एव घोर परिश्रम पूर्वक रासायनिक प्रक्रिया से पवित्र पय तैयार करके अपनी अमृतमयी वाणी का पान करा रही है। और हम? अगर इस विश्वविख्यात माता का दूध पीकर मैदाने जग मे कायर बन जाए तो ससार हमे क्या कहेगा? यही न कि इस दुष्ट ने माता का दूध लजाया!

क्या हम यही उपाधि पाने के अधिकारी हैं? क्या हम

अपने कर्त्तव्यो को समझ कर नहीं पालेगे ? मेरा विश्वास है, हम इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होगे । यह कलंक-कालिमा हमे लगने वाली नही । मेरा पूर्ण विश्वास है, इन्दौर का श्रीसंघ किसी बात मे पीछे रहने वाला नही है ।

हमारा संघ आपके दूध को नहीं लजायेगा । हमारा श्रीसंघ एक होकर, दृढ संगठन करके, आपको बता देगा कि इन्दौर का संघ भारतवर्ष के किसी भी संघ से पीछे नही है ।

इसके पश्चात् भंडारीजी ने चित्तौड के वृद्धाश्रम आदि संस्थाओं के लिए सफल अपील करके कहा-मित्रों ! भंडारी ने कभी पैसे की भीख नही माँगी । बुजुर्गों के आशीर्वाद और श्रीजी की कृपा से मैंने जहाँ दिमाग लगाया, वचन कहा और हाथ डाला कि धन का ढेर हो गया । परन्तु मैं पैसे को कोई महत्त्व नही देता । भाग्य और बुद्धि कौशल से दौलत दौडती आती है ।

इन्दौर मे मेरा एक बगीचा है । इन्दौर के एक सज्जन ने मेरे पास आकर कहा-इस बगीचे मे बहुत धन दबा-गड़ा हुआ है । मुझे उचित भाग मिले तो मैं निकालने की व्यवस्था कर सकता हूं ।

मैंने उन सज्जन को उत्तर दिया-मैं राज्य को इत्तला किये देता हूँ । राज्य-अधिकारियों के सामने आप खोद लें । राज्य का हिस्सा राज्य ले लेगा, बाकी आप ले लेना ! मैं तो राज्य के विधान के विरुद्ध कुछ भी नही करना चाहता । वे इस पर राजी नही हुए और उनके कथनानुसार वह धन वहीं गड़ा पड़ा है !

कहने का मतलब यह है कि मैं रुपये—पैसे को महत्त्व

नही देता। मैं चाहता हूं को समाज की व्यवस्था ठीक चले। हमारे यहाँ धार्मिक शिक्षण का ठीक प्रबन्ध हो। हमारे बच्चे सब शिक्षित हो और उनके संस्कार ठीक हो और साधुओ मे भी शिक्षा का प्रचार हो।

अन्त में मैं बाहर के ग्रामों और शहरों से पधारे हुए साधर्मी भाइयों से भी एक प्रार्थना कर लू। मुझे और इन्दौर श्रीसंघ को बड़ा हर्ष है कि आप लोगो ने श्रीजी के दर्शनो के बहाने हमें दर्शन देकर कृतार्थ किया। हमे अत्यन्त दुःख है कि कंट्रोल का जमाना होने से तथा यहाँ की जनसंख्या करीब ३½ लाख हो जाने से स्थान का अत्यन्त अभाव होने के कारण हम आपकी यथोचित सेवा नहीं कर सके। इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

हम मानव हैं और मानव से भूल होना स्वाभाविक है। संभव है, आपकी हमारे स्वयसेवकों या कार्यकर्त्ताओ द्वारा अविनय हो गई हो या आपकी सेवा में कोई त्रुटि रह गई हो। उसके लिए भी मे क्षमा चाहता हूँ।

(इस अपील के पश्चात् श्रीसंघ के कार्यकर्त्ताओ ने वृद्धाश्रम और श्रीसघ के लिए चन्दा किया, जो अच्छी तादाद में इकट्ठा हुआ।)

इन्दौर
११-६-४५





पापों का सरदार



स्तुति—

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान् पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे मुनीन्द्र ! मुनिजन आपको परम पुरुष और अज्ञान-अन्धकार से अतीत आदित्य स्वरूप और निर्मल मानते हैं। मुनिजन आपको ही शरण लेकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करते

हैं। प्रभो ! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी कल्याणकारी अथवा निरुपद्रव मोक्ष का मार्ग नही है बस आपका आश्रय लेने से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

तात्पर्य यह है कि सन्त पुरुष, राग द्वेष से रहित होने के कारण आपको निर्मल मानते हैं। मोह एवं अज्ञान के अधकार का नाश करने वाले होने से आपको सूर्य-स्वरूप समझते हैं। आपके चरणो का सहारा मिल जाने पर मृत्यु नही आती, इस कारण आपको मृत्युञ्जय मानते हैं। इन सब विशिष्टताओं के कारण आप परमपुरुष हैं और आप ही मोक्ष-मार्ग के सच्चे प्रदर्शक हैं।

भगवान् ने मोक्ष का जो मार्ग वतलाया है, वह और कुछ नही, पापों का त्याग करना ही है। पापो का त्याग करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। जो अज्ञान से आवृत हैं, वे पापो को त्यागने की इच्छा करते हुए भी वस्तुत पापो से बच नही सकते। उदाहरण के लिए हिंसा के ही पाप को लीजिए। जिसे जीवतत्त्व का भलीभाँति ज्ञान नही है, वह जीव हिंसा से किस प्रकार बचेगा ? पृथ्वी में जीव हैं, जल में जीव हैं, वायु में जीव हैं, इत्यादि रूप से जिसने जीव को समझा होगा, वही उनकी हिंसा से बच सकता है।

भगवान् ने फर्माया है कि एक सुई के अग्रभाग पर समा सकने वाली पृथ्वीकाय में जितने जीव मौजूद हैं वे अपना शरीर कदाचित् कबूतर के बराबर बना ले तो एक लाख योजन के विस्तार वाले इस जम्बूद्वीप में नहीं समा सकते। इसी प्रकार अपकाय के जीव भौरे का आकार बनावें, अग्निकाय के जीव सरसो जितना आकार बनावें और वायुकाय के जीव खसखस

जितना आकार बनावे तो इस जम्बूद्वीप मे नहीं समा सकते। वनस्पतिकाय के जीवों की तो बात ही न पूछो। सुई के अग्रभाग पर आ सके जितने निगोद—वनस्पतिकाय मे अनन्त जीव विद्यमान है। अधिकांश लोग इस तथ्य को नही जानते और कुछ लोग जानते हुए भी इन जीवों की करुणा नही करते। इसी कारण—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननीजठरे शयनम्।

बार-बार जन्म लेना पडता है, बार-बार मरना पड़ता है; बार-बार माता के उदर मे पड़ना पडता है।

कई अज्ञान लोग मिट्टी खोद कर हाथ शुचि करते हैं, किन्तु समझदार लोग धूल या राख से ही काम चला लेते हैं। कई लोग व्यर्थ जल ढोल कर जीवहिंसा के भागी बनते हैं। कई तो अग्नि जलाने में ही धर्म मानकर छह काया के जीवों की विराधना करते हैं।

भगवान् महावीर ने छह काया के जीवो की रक्षा करने में धर्म प्रतिपादन किया है। केवली भगवान् की वाणी का एक-एक शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। आत्मा को संसार-सागर से तारने वाली वाणी जिनवाणी है। जिसके प्रबल पुण्य का उदय होता है, वही जिनवाणी पर श्रद्धा ला सकता है। जिसे जिनेन्द्र भगवान् की वाणी पर प्रगाढ श्रद्धा होगी, वह पापों का आचरण नही करेगा। भगवान् ने अठारह पापों को त्याज्य बतलाया है। उनमें अठारहवां पाप 'मिथ्यादर्शनशल्य' है।

मिथ्या का अर्थ है–उलटा। दर्शन का अर्थ है श्रद्धा और शल्य कहते हैं काँटे को। शरीर के किसी भाग में जब तक काँटा चुभा रहता है, तब तक बेचैनी रहती है, व्यथा रहती है, पीडा और अशान्ति बनी रहती है। इसी प्रकार मिथ्यात्व का तीक्ष्ण कांटा जब तक आत्मा मे चुभा हुआ है, तब तक आत्मा व्यथित, पीड़ित, अशान्त और सन्तप्त बनी रहती है।

आत्मा को गिराने वाले आस्रव पाँच हैं-(१) मिथ्यात्व (२) अविरति (३) प्रमाद (४) कषाय और (५) योग। यह पाँचों ही आत्मा को ससार समुद्र मे डुबाने वाले हैं। ठाणाँगसूत्र के पांचवे ठाणे मे इनका प्ररूपण है। मिथ्यात्व सब का सरदार है। आप हजारों बार सामायिक करो, मासखमण का प्रत्याख्यान करो, दान दो, शील पालो, तपस्या करो, परन्तु जब तक आपकी आत्मा मे मिथ्यात्व का अस्तित्व है, उनका कोई महत्त्व नही। मिथ्यात्व से मुक्ति पाये बिना आपका आवागमन नही मिट सकता। मिथ्यात्व की मौजूदगी में की गई तपश्चर्या से पुण्य का बन्ध हो सकता है, परन्तु पुण्य–बन्ध से मुक्ति नही होती। स्वर्ग के सुख प्राप्त हो सकते हैं, मगर बाद में फिर वही चौरासी का चक्कर चालू हो जाता है।

एक बार एक मनचला हलवाई सिंघाड़े के सेवों पर चासनी चढा रहा था। उसका मन स्थिर नही था। कभी इधर और कभी उधर देख रहा था। हलवाई की दुकान निचाई पर थी। सयोग से ऊंट की मीगनी उछल कर कढ़ाई मे गिर गई। चासनी बराबर चढ़ रही थी। इस प्रकार सेव के साथ मीगनी पर भी चासनी चढ़ गई।

सेव तैयार हो गये और एक थाल मे सजा कर रख

दिये गये। सब सेवों के उपर चासनी चढ़ी मीगनी रखी गई। उसके पश्चात् एक बालक सेव खरीदने आया। उसने वही बडा सेव पसद किया। खरीद कर घर ले गया और उसे खाने लगा। जब तक शक्कर का स्वाद आता रहा, तब तक बालक उसे चूसता रहा, किन्तु जब शक्कर समाप्त हो गई, मीगनी का स्वाद आने लगा! उसे विवश होकर थूक देना पडा।

मिथ्यात्वी की क्रियाओं का भी ऐसा ही हाल है। उन क्रियाओ से किंचित काल स्वर्ग-सुख की प्राप्ति हो जाती है, मगद आखिर जन्म-मरण का क्रम आरभ हो जाता है।

भाइयों! इस मिथ्यात्व का रूप बहुत विराट है। यह नाना रूपो मे मनुष्य को अपने असर में रखता है। लोग सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं, फिर भी मिथ्यात्व के चगुल में फसे रहते हैं। सम्यक्त्वी कहलाने वाले भी भैरू, भवानी, शीतला, मुण्डी आदि को पूजते फिरते हैं। उनसे नाना प्रकार की याचनाएं करते हैं। वे नवकार मन्त्र को जप करके बच्चे माँगना चाहते हैं। मोक्ष देने वाले देवो से ससाँरिक भोग-विलास की वस्तुएं माँगना क्या नादानी नहीं? एक साधारण मूढ किसान भी भूसे के लिए खेती नही करता, वह भी धान्य के लिए खेती करता है! धान्य के लिए खेती करने वाले को भूसा तो अनायास मिल ही जाता है! फिर धान्य को गवाने की मूर्खता क्यो की जाय?

इसी प्रकार आपको वीतराग भगवान् से साँसारिक भोगविलास एव ऐश्वर्य की वस्तुएं नही माँगना चाहिए। आपका कर्त्तव्य यह है कि भगवान् की वाणी पर श्रद्धा रख कर तपश्चरण आदि करें और मुक्ति प्राप्त करने की ही इच्छा रक्खें।

जो क्रिया करो आत्मा की शुद्धि के लिए ही करो। मुक्ति ही आपका परम इष्ट होना चाहिए।

जैनी नाम धरावे सहू,
वणा की पोल कहां तक कहूँ।

भाइयों! जो जिनमार्ग पर चलने का दावा ही नहीं करते, उनके सम्बन्ध में वहाँ कुछ कहना नहीं है, परन्तु जो भाई जैनधर्मानुयायी होने का दावा करते हैं, किन्तु जैन धर्म से विरुद्ध व्यवहार करते हैं, उनकी पोलो का वर्णन भी कहाँ तक किया जाय?

अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं, दु.खो से बचकर सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो सबसे पहले आपको वीत-राग की वाणी पर-उनके द्वारा उपदिष्ट तत्त्वो पर विश्वास करना चाहिए। विश्वास न करने से ही मिथ्यात्व होता है।

सर्व पापों बीच में मिथ्यात्व ही सरदार है,
इसको तजे बिन हे जिया, होता नहीं भवपार है।
सत्य दया-धर्म को, अधर्म पापी मानते,
अधर्म को माने धर्म सब डूबते मंझधार में॥

मिथ्यात्व अपने आपमें ही एक बड़ा पाप है, फिर इसकी मौजूदगी मे अन्यान्य पाप भी बहुत गंभीर होते हैं। सम्यक्त्वी अगर पाप करता है तो उसमे उसकी आसक्ति नहीं होती, अतएव वह उतना अधिक पाप का भागी नही होता, जितना कि मिथ्यात्वी होता है।

देखो, इन्द्रभूति गौतम की अन्तरात्मा में जब तक मिथ्यात्व था, तब तक वे भगवान् महावीर स्वामी को इन्द्रजालिया कहते थे। जब उन्हें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई तो वे भगवान् के परम भक्त बन गये। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि मे कितना अन्तर होता है, यह बात गौतम स्वामी के पहले और बाद के आचार-विचार से बहुत अच्छी तरह समझी जा सकती है।

भाइयों! विपरीत श्रद्धा पाप है। सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझना मिथ्यात्व है। दयाधर्म को अधर्म मानना और बकरे आदि के बलिदान रूप हिंसामय अधर्मकृत्य को धर्म मानना भी मिथ्यात्व है। इसी प्रकार भैंसा, मुर्गा आदि को देवी के नाम पर चढाया जाता है। कोई-कोई शराब भी चढ़ाते हैं। यह सब मिथ्यात्व के ही फल समझने चाहिए।

अज्ञानी जन दया और दान जैसी धार्मिक क्रियाओ को भी अधर्म कहते हैं हिंसा और झूठ को भी धर्म मे गिनते हैं। धर्म का नाम लेकर हिंसा कराते हैं। स्वार्थसाधु लोग अपने मतलब के लिए धर्म का नाम ले देते हैं। धर्म के नाम मे वह जादू है कि सर्वसाधारण लोग धर्म के नाम पर चक्कर मे पड़ जाते हैं।

एक कहता है—एक पैसा तमाखू के लिए देना, तुम्हें धर्म होगा।' दूसरा कहता है—'दो पैसा देना, गाँजा पीऊंगा धर्म लगेगा।' तीसरा कहता है—दो आने देना, शिवजी की बूटी की अराधना करूंगा।' चौथा आवाज लगाता है—'आठ आने दान करो तो शराब पीऊंगा, भैंसेश्वरी को चढ़ऊंगा, धर्म होगा।, पाँचवाँ माँगता है—'एक रूपया दो तो मुर्गा चढ़ाऊ। धर्म होगा।'

कहो भाई! इस धर्म का क्या ठिकाना है? अगर इन सब कामों से धर्म होता है तो फिर अधर्म किस काम से होगा? वास्तव में ऐसे स्वार्थी और विषयी लोगों ने अधर्म के स्वरूप को बिगाड़ दिया है, उनके कारण धर्म बदनाम हो गया है और भोली जनता भ्रम मे पड़कर गलत रास्ते पर चलने लगी है। अरे, असली धर्म तो सत्य दया, दान. शील आदि का पालन करने में है। परन्तु अज्ञान मिथ्यादृष्टि इन्हे धर्म नहीं मानते।

प्रश्न होता है कि यदि मंगता आवे तो क्या उसे पैसा न दिया जाय? इस प्रश्न का सामान्य उत्तर है—

दान दरिद्र को दीजिए, हरे वाही की पीर।
औषध वाको दीजिए, जाके रोग शरीर॥

किसी गरीब को रोटी खिलाओगे तो उसे साता पहुँचेगी, उसका भूखजन्य आर्त्तध्यान मिटेगा। हट्टे-कट्टे पट्टे को पैसा दोगे तो न जाने वह उस पैसे का क्या-कैसा दुरुपयोग करेगा? अतएव दान देते समय पात्रता का विचार कर लो। ध्यान रक्खो कि जैसी जमीन होगी, वैसी ही फसल उपजेगी। अनुकम्पादान के लिए कोई अपात्र नही है, मगर विवेकयुक्त होकर ही अनुकम्पादान देना चाहिए। अविवेक अनर्थ का मूल है। विवेक के अभाव में दान देने वाले का और लेने वाले का भी अहित ही होता है। यह विवेक सच्ची श्रद्धा से आता है एतएव सर्व प्रथम मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व प्राप्त करो। सम्यक्त्व प्राप्त हुए विना चाहे तिलक सगाओ, चाहे मुंहपत्ती बांवो मुक्ति दूर ही है।

कई गांवों मे देवी को चढ़ाने के लिए भैंसे खरीदने के

वास्ते चन्दा किया जाता है। महाजन भी नासमझी के कारण उस चन्दे मे शरीक हो जाते हैं। वे चन्दे में ही शरीक नही होते वरन् पचेन्द्रिय जीव हिंसा मे भी शरीक होते हैं और दुर्गति प्राप्त करने वालो में भी शरीक होते हैं। भाइयो ! ऐसे चन्दे में पैसा मत दो। जब भी दो, पहले पांच करलो कि तुम्हारे पैसे का दुरुपयोग तो नही होगा ?

कदाचित् सूरज पश्चिम से उदित हो जाय, पतिव्रता धर्म का त्याग कर दे, गंगा उलटी बहने लग जाय, चन्द्रमा से आग बरसने लगे, परन्तु हिंसा धर्मजनक नही हो सकती।

हिंसा नाम भवेद् धर्मो न भूतो न भविष्यति।

हिंसा न धर्म है, न कभी थी और न कभी होगी ही।

किसी व्यक्ति ने अपनी पत्नी से कहा अपन को तीर्थ-यात्रा करनी है, मगर क्या किया जाय ? पास में पैसा नही !

पत्नी बोली–पैसा प्राप्त करने का अच्छा उपाय तो मैं बतलाए देती हूँ। पड़ोसी का लड़का गहने पहने फिरता है। अवसर देखकर उसे गाव के बाहर ले जाओ, मार डालो और गहने उतर लो। गगाजो चलकर नहा लेना और-और पापों के साथ यह पाप भी धुल जायगा।

कहो भाई, ऐसा घोर पाप करके जो धर्म करना चाहता है, उसके लिए आप क्या कहते हैं ? ऐसी आदमी की तीर्थयात्रा सफल होगी ? उसकी हज़ क़बूल होगी ? नही, कदापि नही। यदि गंगा मे नहाने से पाप दूर हो जाते तो सरकार खून के बदले फाँसी की सजा क्यों देती ? वह गगा–स्नान ही क्यों नही करवा देती ?

अगर कोई दूसरे के धन का अपहरण करके मक्का जाय तो क्या उसकी हज कबूल होगी ? बढे मिया बोलो ?

'हर्गिज नही साहब !' बड़े मियां ने कहा।

कोई चोरी करके वैकुण्ठ जाना चाहे तो क्या जा सकता है ? पण्डितजी कहिए न ?

'नही, महाराज !' पण्डितजी ने कहा।

जीव को जड़ मानते है, असत्य युक्ति ठान के।
निर्जीव में सजीव की श्रद्धा रखे हर बार है ॥

दूसरा मिथ्यात्व जीव को अजीव मानना है। नास्तिक मत वाले आत्मा का अस्तित्व ही स्वीकार नही करते। कई लोग मात्मा का अस्तित्व अगीकार करके भी कई सात्मक पदार्थो को निरात्मक मानते हैं। जैसे-वृक्षों मे जीव न मानना, पानी को अचेतन कहना या वायु को निर्जीव बतलाना।

तथ्य यह है कि यह शरीर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश–इन पांच तत्त्वों से बना है और फिर पलट कर उन्ही में मिल जाता है। आत्मा इन सब से विलक्षण (अलग) पदार्थ है। आत्मा अपने कर्मों के अनुसार भवान्तर करता है। शरीर, आत्मा के लिए वैसा ही है जैसा आपके लिए मकान है अथवा पक्षी के लिए घौसला है। आप एक मकान छोडकर दूसरे मे रहने लगते हैं और पक्षी एक घौसला छोडकर दूसरे मे रहने लगता है। इसी प्रकार आत्मा कभी एक शरीर मे रहता है। जब वह शरीर किसी कारण अयोग्य हो जाता है तो उसे त्याग कर दूसरे शरीर को ग्रहण कर लेता है इस प्रकार आत्मा शाश्वत है।

आज जिस मकान मे रहते है, उसे पता नही कि मेरे अन्दर कौन रहता है और उनकी क्या-क्या जातियाँ हैं ? परन्तु आपको तो पता है कि आप इस मकान मे रहते हैं ! इसी प्रकार शरीर को पता नहीं कि मुझ मे कौन रहता है, परन्तु आपको मालूम है कि मैं शरीर मे रहता हूँ । इससे शरीर और शरीर में रहने वाले आप में कुछ न कुछ अन्तर है यह बात सिद्ध होती है । बस, यही आत्मा का अन्तर है । शरीर चेतन नही है, आत्मा चेतनस्वरूप है जिसे ज्ञान होता है उसी तत्त्व को आत्मा अथवा जीव कहते है ।

कई लोगो का ख्याल है कि आत्मा एक ही है और वह सर्वव्यापी है । उनका खयाल सच हो तो खभे आदि में भी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा । फिर जैसे आपके शरीर मे सुई चुभाने से दर्द होता है, उसी प्रकार खभे में सुई चुभाने से भी दर्द महसूस होना चाहिए । पर ऐसा होता नही है । अतएव आत्मा एक नही, अनन्तानन्त है और प्रत्येक शरीर मे अलग-अलग हैं । आत्मा एक ही हो तो सदाचारी और व्यभिचारी, दानी और कजूस आदि एक ही हो जाएंगे और उन्हे एक ही फल की प्राप्ति होगी यही नही, व्यभिचारी की करतूतों का फल सदाचारी को भी भोगना पड़ेगा और कजूसी का फल दानी को भी भुगतना पड़ेगा । इस प्रकार प्रत्येक शरीर मे अलग-अलग आत्मा स्वीकार न करने से अनेक आपत्तियाँ आती है ।

कुछ लोग पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि मे जीव का अस्तित्व नही मानते है । यह भी मिथ्यात्व है । वनस्पति की सजीवता अब विज्ञान द्वारा स्पष्ट रूप से

सिद्ध हो चुकी हैं, अतएव इस विषय मे शका करने की गुंजाइश नही रही। पृथ्वी आदि की सजीवता को सिद्ध होने के लिए विज्ञान के अधिक विकास की प्रतीक्षा करनी चाहिए। हमे सोचना चाहिए कि जिन दिव्य दृष्टि महापुरुषो ने विज्ञान द्वारा सिद्ध होने से हजारो-लाखो वर्षों पूर्व ही वनस्पति को सजीव घोषित कर दिया था, उन्ही महात्माओ ने पृथ्वी और पानी आदि को भी सजीव प्रतिपादन किया है। ऐसी स्थिति में उनका यह कथन किस प्रकार मिथ्या हो सकता है? भाइयों इस प्रकार विचार करके सर्वज्ञ की वाणी पर श्रद्धा लाओ। आचारांगसूत्र मे कहा गया हैः—

तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं।

अर्थात्—वीतराग महापुरुषो ने जो प्रतिपादन किया है, वही सत्य है, उसमे किसी प्रकार की शका को स्थान नहीं हो सकता।

आपके सामने टगी हुई यह घड़ी जल रही है। इसका लोलक हिल रहा है। क्या यह भी सजीव है? नही यह तो जड़ है। घड़ी को पता नही कि इसमें कितने बजे हैं? बट लगा कर सूत का धागा छोड दिया जाता है तो वह भी तड़-फड़ करता है। इसी कारण उसे जीव नही कहा जा सकता। वह तो केवल वट के कारण ही तड़फड़ाता है।

वास्तव मे आत्मतत्त्व को समझ लेना बड़ा कठिन है। फिर भी मनुष्य के लिए उसे समझना आवश्यक है। आत्मतत्त्व को समझे बिना मर जाना जानवर की मौत मर जाना है।

आजकल बहुत से लोगों मे नास्तिकों की श्रद्धा आ गई

है। वे आत्मा का निषेध करने के लिए नाना प्रकार के कुतर्क करते है पढ़े-लिखे नास्तिक मिल कर अपना सगठन भी बना लेते है आत्मा का अभाव मानने वाली पजाब मे एक सभा स्थापित है जिसके ३००० सदस्य हैं। उनमे से एक ने हमे उनका शास्त्र दिया था। गाँव-गाँव मे घूमने वाले हम साधुओं को तरह-तरह की खोपड़ियाँ मिलती है।

जो लोग आत्मा पर भरोसा नही रखते, उन्हे आत्मा की शक्ति पर भी कैसे भरोसा हो सकता है? वो तो एक मात्र भौतिक शक्ति के ही उपासक होते है। सन्त और ज्ञानीजन कह गये है कि आत्मा की शक्ति असीम और अपार है तथा विस्मयजनक है। आत्मा की शक्ति के सामने ससार की सम्पूर्ण भौतिक शक्ति परास्त हो जाती है। परन्तु आत्मा पर श्रद्धा न रखने वालो के लिए ज्ञानियो की इस बात का कुछ भी मूल्य नही है। उनक लिए भौतिक शक्ति के अतिरिक्त और कोई शक्ति है ही नही। इसी कारण उन्होने परमाणु बम की खोज की है। वे आत्मा के सुख-दुःख को नही जानते। वे लोग नास्तिक है, क्योकि उनके देशो मे तीर्थंकरो का जन्म नही हुआ। जिन्होने अगरेजी भाषा पढी और साथ में तत्त्वज्ञान की शिक्षा नही ली, उनका दिमाग बिगड़ गया।

सम्यग्दर्शन ज्ञान क्रिया को कहे उन्मार्ग है।
दुर्व्यसनादिक उन्मार्ग को बतलाते मुक्तिद्वार है ॥

और—

सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः ।

अर्थात्—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मुक्ति का मार्ग है। परन्तु सच्ची श्रद्धा को अज्ञानी उलटा मार्ग कहते हैं। सच्चे स्वरूप का वर्णन करने वाले ज्ञान को मूर्ख लोग उलटा ज्ञान बतलाते हैं और दया, दान, शील, तप आदि सच्ची क्रिया को उलटी क्रिया कहने में सकोच नही करते; बल्कि उसे ढोंग कह देते है। इतना ही नही, वे विपरीत क्रियाओ को मुक्ति का द्वार बनाते हैं। यह सब मिथ्यात्व है।

कई लोग स्नान करने से आत्मशुद्धि और मुक्ति मानते हैं। यदि नहाने से ही मुक्ति हो जाय तो फिर दया दान, ईश्वर-भजन आदि की क्या जरूरत है? फिर त्याग और वैराग्य की क्या कीमत रह जाती है? स्नान करने से शरीर की सफाई तो होती है पर आत्मा की शुद्धि नही होती है। ऐसा न होता तो जलाशयों में रहने वाले सभी मगर, मच्छ, कच्छ आदि मुक्ति प्राप्त कर लेते। मगर दुःख है कि लोग सीधी और सच्ची बात नही समझते, बल्कि सीधी को उलटी और उलटी को सीधी बतलाते हैं। सीधीसादी बात यह है कि पापो का त्याग करने से धर्म होता है। कई दिनो से मैं पापों का स्वरूप बतला रहा हूँ। तुम्हारी जिस क्रिया से अठारह पापों मे से कोई भी पाप होता हो, समझ लो कि वह क्रिया धर्म नही है। जितने-जितने अंशों मे पापो का परित्याग करते जाओगे उतने ही उतने अंशो मे धर्म की आराधना होती जायगी।

सुसाधु को ढोंगी समझ, करता क़दर उनकी नही।
धन माल गुरु रक्खे त्रिया, उनके नमे चरणार है॥

हम लोग पान नही खाते, कोई भी सचित्त वनस्पति

नही खाते, नगे पैरों चलते हैं, सदाचार का पालन करते हैं, भिक्षावृती से जीविका चलाते हैं, भिक्षा देने के लिए किसी से आग्रह नही करते, जोर नही डालते, स्वेच्छापूर्वक प्रसन्नता के साथ दी भिक्षा को ही अंगीकार करते हैं, भिक्षा देने वाले और नही देने वाले पर समभाव धारण करते हैं, ऐसा नही की भिक्षा देने वाले को आशीर्वाद और न देने वाले को शाप दे ! फिर भी अगर कोई हमें ढोंगी कहता है और इसके विपरीत चलने वालो को-धन दौलत, स्त्री-पुत्र, जागीर आदि रखने वालों को-साधु मानता है, तो क्या यह मिथ्यात्व नहीं हैं ? मुकदमेबाज गुरू को 'तिन्नाए तारयाए' मानने वाले मिथ्यात्वी हैं ।

भाइयो! सन्त उसी को कहते हैं जो पूर्ण रूप से अहिंसा का पालन करते हों और असत्य भाषण न करते हों, जो सदा सत्य का ही प्रयोग करते हो और सत्य भी कर्कश-कठोर भाषा मे न कह कर मधुर भाषा में कहते हों । जो छोटी से छोटी चोरी भी न करते हों, काम वासना पर विजय प्राप्त कर चुके हो और संसार की किसी भी वस्तु पर ममता न धारण करते हो यहा तक की—

अवि अप्पणो वि देहंमि, नायरंति ममाइयं ।

अर्थात—मुनिजन अपने शरीर को भी अपना नही समझते ।

हम आपको ज्ञान की बातें सुना रहे हैं। कह नहीं सकते कि आपमें से कितने इन्सान हैं और कौन-कौन हैवान है ! अर्थात कौन मिथ्या दृष्टि और कौन सम्यग्दृष्टि हैं ? जिस पर

मिथ्यात्व का रंग चढ़ा होगा, उस पर हमारी औषध का असर होना कठिन है।

एक डाकू लूट खसोट करने में बड़ा होशियार था वह लूट कर और अपने को बचा कर इस प्रकार भाग जाता था कि किसी के हाथ नहीं आता था। उसकी एक आदत यह भी थी कि वह धन-दौलत के साथ स्त्रियों को भी उडा ले जाता था। किसी की बहिन, किसी को बेटी, यहाँ तक की कुंवारी कन्याएं भी लूट में चली जातीं थी।

वह डाकू लूटे हुए धन को और स्त्रियों को अत्यन्त गुप्त तहखाने मे रखता था। इसके अतिरिक्त वह उन स्त्रियों को ऐसी औषध पिला देता था कि जिसके प्रभाव से स्त्रियां उस डाकू के सिवाय और किसी को भी पसंद नहीं करती थी।

समस्त जनता, राजा और राज्यकर्मचारी डाकू के त्रास से बहुत दुखी हो गये। उन्होने डाकू को पकड़ने का निश्चय कर लिया। पहले दिन कोतवाल ने डाकू को पकड़ने का प्रण किया। उसने सब सिपाहियो को सावधान कर दिया कि डाकू दिखते ही और मेरा इशारा होते ही उसे गिरफ्तार कर लेना।

× × × ×

छम-छम करती हुई एक षोडशी युवती घूंघट काढे जा रही है। कोतवाल ने पूछा—कौन है ?

'टच्-टच्'

'अरे तू है कौन ? ठहर!'

फिर वही 'टच्-टच्' की आवज !

कोतवाल साहब बिलकुल पास पहुंच गये। घूंघट के बारीक वस्त्र में युवती की आंखे चमक रही थी। लज्जा के मारे वह सिकुड़ी जा रही थी।

कोतवाल के हृदय में वासना का भा गृत हो उठा। उसने अपने स्वर को बदल कर कहा—'इस समय तुम कहां जा रही हो?'

फिर टच् टच्।

कोतवाल ने कहा—तुम्हें थाने में चलना पड़ेगा। चलो

कोतवाल आगे-आगे और युवती पीछे पीछे थाने की ओर रवाना हुई। दोनो थाने मे जा पहुंचे। कोतवाल ने सिपाहियो को फिर आज्ञा दी, डाकू के लिए सावधान रहें और जरूरत पड़ने पर फौरन मुझे खबर दें।

युवती ने जरा धीरे से पूछा—'यह क्या है?'

कोतवाल—'यह खोड़ा है।'

युवती—'कितना सुन्दर है!'

कोतवाल ने किंचित् मुस्करा कर और कटाक्ष करते हुए कहा-'यह तो चोरो और डाकुओं को कैद करने के लिए है।

युवती-'जरा मेरा पैर इसमें डाल कर बतलाए तो सही कि किस तरह कैद किया जाता है!'

कोतवाल—'नही तुम्हारे पैर मे जेवर है। लो, मैं अपना पैर डाल कर बतलाता हूं।, कोतवाल इस समय कामान्ध हो चुका था।

कोतवाल ने अपने पैर खोड़े में डाल दिये। फिर उसने

बतलाया—इसमें वह खीला लगाया जाता है, जिससे कैदी भाग न सके।

युवती ने खीला लेकर लगा दिया और कोतवाल कैद हो गया। तत्पश्चात् युवती ने अपने वस्त्र उतार कर मर्दाना वेष प्रकट करते हुए कहा–समझे कोतवाल साहब, मैं ही डाकू हूँ! चले थे डाकू को पकड़ने! यह कह कर उसने कोतवाल की एक तरफ की दाढी और मूछ मूड़ ली। सिर पर दो-चार जूते जमाये और नौ दो ग्यारह हो गया।

जब सिपाही थाने में आये तो कोतवाल की दुर्दशा देख कर खूब हंसे। कोतवाल लज्जा के मारे मरा जा रहा था।

दूसरे दिन राजा ने डाकू को पकड़ने का निश्चय किया।

रात्रि के दो बजे हैं। एक भिखारी जगल में बैठा हुआ कह रहा है–'बहुत भूखा हू। ओ मुसाफिर! कुछ खाने को दे जा।'

मुसाफिर ने कहा मूर्ख कहीं का! क्या हम खाना साथ मे बाँधकर चले हैं! हम डाका डालने जा रहे हैं। वापिस आते समय कुछ दे देंगे। आशीष दे कि हम पकड़े न जाएं।

भिखारी ने कहा—जाओ बाबा भगवान् तुम्हारा भला करे।

डाकू जब लौटकर आया तो भिखारी ने फिर भीख मांगी। परन्तु डाकू भी क्या किसी को देता है? वह चकमा देकर और पास मे ही पड़ी हुई एक शिला को ऊंची करके भीतर गायब हो गया। उसके भीतर जाते ही शिला फिर बराबर ज्यों की त्यो हो गई। भिखारी ने भी शिला को उठाने का

प्रयत्न किया परन्तु वह इतनी भारी थी कि उसका बल काम न आया।

भाइयो! आपको मालूम होना चाहिए कि वह भिखारी वास्तव मे भिखारी नही, राजा था। दूसरे दिन राजा अपनी फौज को और बड़े बडे कारीगरों को साथ लेकर उसी जगह पहुँचा। शिला उठाई गई और सैनिक साहस करके भीतर घुसे। डाकू गिरफ्तार कर लिया गया और सब स्त्रियों को छुटकारा दिया गया। राजा ने डाकू से सब धन और माल का पता पूछा और फिर उसे कत्ल कर दिया।

राजा ने सब स्त्रियो को नगर मे लाकर अपने-अपने घर जाने की आज्ञा दी, मगर वे सब भाग-भाग कर उसी जंगल मे जाने लगी। यह हाल देख राजा को बडा आश्चर्य हुआ। बहुत प्रयत्न करने पर राजा को पता चला कि इन्होने ऐसी औषध खा रक्खी है जिससे इन्हे वही डाकू पसन्द आता है।

राजा ने वैद्यों को बुलवाया और उस औषध का असर नष्ट करने की दवा दिलवाई। जिन पर डाकू की दवा का असर कम था, वे अच्छी हो गई, जिन पर कुछ अधिक असर था, वे कुछ दिनो मे अच्छी हो पाई, परन्तु जिन पर गहरा असर था वे स्त्रियाँ अच्छी नही हो सकी।

इसी प्रकार जिनकी अन्तरात्मा पर मिथ्यात्व रूपी विष का कम असर है, वे हमारो उपदेश रूपी औषध से ठीक हो जाएगे कोई महीने मे और कोई चार महीने मे स्वस्थता प्राप्त कर लेंगे। पर जिनकी आत्मा गहरे मिथ्यात्व से अत्यन्त प्रभावित हो रही है, उनका इलाज होना कठिन है।

अज्ञानी को कहाँ तक उपदेश दे । इस जीव ने पेट में नौ महीने औंधे मुंह लटके रह कर भगवान् को याद रखने की प्रतिज्ञा की थी परन्तु बाहर आते ही यह उस प्रतिज्ञा को भूल गया ।

जैसे गधे को कमल के फूल अच्छे नहीं लगते उसी प्रकार मिथ्यात्वी को मिथ्यात्व के सिवाय और कुछ अच्छा नही लगता ।

नाश करके कर्म को गये मोक्ष सो माने नहीं ।
मानता मुक्ति उन्हो की कर्म जिनके लार है ॥

भाइयों ! जो निरंजन निराकार हैं, जिन्होंने आभ्यन्तर और बाह्य तपस्या की तीव्र अग्नि में समस्त कर्म-कचरे को जला डाला है, जिन्होने आत्मा के विरुद्ध स्वरूप को प्रकट करके मुक्ति प्राप्त कर ली है, उनको सिद्ध न मानना और जो कर्म-मैल से मलीन हैं, जो विकारो से ग्रस्त हैं, उन्हें मुक्त मानना भी मिथ्यात्व है ।

भाइयों ! इस समय आपको अच्छा योग मिला है । इस सुयोग को प्राप्त करके आपका कर्त्तव्य है कि आप मिथ्यात्व का त्याग कर दें । मिथ्यात्व का त्याग कर देने से क्षण भर में ही आपका उद्धार हो जायगा । आप संसार को बढ़ाने वाले मिथ्या मार्गों से बचते रहें । इस समय न जाने कितने मलीन और जीवन को पतित करने वाले मार्ग प्रचलित हैं । वाममार्ग, दशानारी और विशानारी आदि अनेक कुत्सित मार्ग मौजूद हैं । कहाँ तक बतलाएं, ऐसे-ऐसे मार्ग भी हैं जिनके अनुयायी रज-वीर्य को भोजन में डालकर खा जाते हैं !

एक पथ की बात आपने सुनी है? वे लोग माँ, बहिन, बेटी आदि के सम्बन्ध का ख्याल किये बिना ही, जिसकी चोली हाथ मे आ जाय, उसी के साथ व्यभिचार करते हैं! दुनिया के अड़गे और ढोंग जानने हों तो मुझसे पूछो। मैं देश-देशान्तर मे बहुत घूमा हूँ। जो व्यक्ति एक बार इन लोगों मे शरीक हो जाता है, उसे यही नाटक करने पड़ते हैं। आनाकारी करने पर उसे मार कर गाड दिया जाता है!

झूंठे और गन्दे मजहवों की यहाँ कमी नही है। विवाह करके स्त्री को पहली रात्रि में गुरुजी के पास सुलाने वाला मजहब भी यहाँ मौजूद है! खेद है कि लोग मूर्खता के वश होकर ऐसे-ऐसे पथों के चक्कर में आ जाते हैं! इनका परिचय देने मे भी लज्जा आने लगती है, मगर मूर्ख लोग धर्म समझ कर इनका अनुसरण करते है!

भाइयो! आप लोग अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि आपको उत्तम एव प्रशस्त चारित्र का, सयम का प्रतिपादन करने वाला जैनधर्म और साथ ही अच्छे संस्कारो वाला उत्तम कुल मिला है। आप स्वत: बहुत-सी बुराइयो से बचे हैं। अब आपको चाहिए कि अधिक सयममय और तपोमय जीवन बना कर अपनी आत्मा का कल्याण करें। मिथ्यात्व को अपने पास न फटकने दे। ऐसा करेंगे तो आपका परम कल्याण होगा।

इन्दौर }
११-९-४५ }



सप्रेम भेंट—

तालेरा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट

महावीर बाजार, ब्यावर



भवितव्य

स्तुति—

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप—

शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।

ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,

कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान् ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

भगवान् ! पूर्णिमा के चन्द्रमा की कलाओं के सदृश उज्जवल आपके गुण तीनो लोकों की उल्लंघन करते हैं-अर्थात् समस्त ससार मे फैले हैं। सो उचित ही है क्योंकि जिन्होंने

तीन लोक के अद्वितीय नाथ का सहारा लिया है, उन्हें स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करने से कौन रोक सकता है ? तात्पर्य यह है कि भगवान् आदिनाथ तीन भुवन के अद्वितीय नाथ हैं, अतएव उनके आश्रित गुण सर्वत्र फैले हैं। ऐसे गुणों से मण्डित भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उन्हीं को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

मनुष्य को कष्ट होता है तो वह मुंह से कहकर उसे प्रकट कर देता है। बच्चे को कष्ट होता है तो वह रोकर या भोजन-पानी त्याग कर अपने कष्ट को प्रकट कर देता है। पशु भी पीडा होने पर खाना-पीना छोड देता है और इससे उसकी पीड़ा भी समझ में आ जाती है कीडे-मकोडे तडफ कर अपनी पीड़ा को प्रकाशित कर देते हैं। परन्तु वनस्पतिकाय, वायुकाय, अग्निकाय, जलकाय और पृथ्वीकाय के जीवों की पीड़ा का हम अनुभव नही कर पाते। मगर सर्वज्ञाता भगवान् उनकी पीडा को भी जानते है। यही कारण है कि भगवान् ने उन जीवो को भी कष्ट न पहुचाने का उपदेश दिया है।

कुछ लोग दुखी को देखकर 'राम राम' कह कर शक्ति होने पर भी उसके दुःख को दूर करने का प्रयत्न नही करते हैं। पर यह रंडी के से नखरे किस काम के ? चाहिये तो यह कि अगर शक्ति है तो दुखिया के दुःख को दूर करो। भगवान् छह काया के कष्ट को जानने वाले थे। उन्होने उनके दुःख को दूर करने का, उनकी रक्षा का उपदेश दिया है।

ग्वालिन का बच्चा रो रहा था। कहता था-'मां, खीर खाऊं, खीर खाऊं।' यदि उसकी पड़ोसिने 'राम राम' कह कर चलती बनती तो क्या खीर बन जाती ? उनमें से एक ने दूध

दूसरी ने चावल तीसरी ने शक्कर और चौथी ने किसमिस केसर आदि वस्तुएं ला दी। खीर तैयार हो गई। लेकिन ऐसा कब होता है? ऐसा तभी हो सकता है जब दुखो को देखकर आपका हृदय पिघल जाय। पत्थर नही पिघल सकता। लोगों को दुखी-दुखी कहते रहने से उनका दुःख दूर नही हो सकता। याद रहे दूसरे के दुःख को दूर करोगे तो दुःख तुमसे भी दूर रहेगे और तुम सुखी बन सकोगे। भगवान् ने आचारांगसूत्र मे फर्माया है किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व को भी कभी कष्ट न दो: उन्हे क्लेश न पहुंचाओ।

भगवान् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। वे जर्रे-जर्रे को जानते थे। रूपी या अरूपी सुक्ष्म अथवा स्थूल-कुछ भी उनके ज्ञान से परे नही था। इनके विषय में कहा जाता है—

मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ।

भगवान् परिमित को परिमित रूप मे और अपरिमित को अपरिमित रूप मे जानते थे। इसलिए वे 'अनतनाणी' और 'अनंतदंसी' कहलाते हैं।

कई लोग कहते हैं कि अगर भगवान् सर्वज्ञ हैं- सभी कुछ जानते हैं तो ससार के सृष्टि के-अन्त को जानते हैं या नहीं अगर जानते हैं तो किसी समय सृष्टि का अन्त आ जाना निश्चित है और यदि नही जानते तो सर्वज्ञ कैसे कहलाए? उन्हे समझना चाहिये कि जो वस्तु थी, है या होगी, उसे उसी रूप में सर्वज्ञ जानते हैं। असत् को जानने के कारण कोई सर्वज्ञ नही कहलाता, बल्कि सत् को उसके यथार्थ स्वरूप में जानने के कारण सर्वज्ञता आती है। जो वस्तु है ही नही उसे ज्ञानी

क्यो जानेंगे? सृष्टि का कभी अन्त ही नही है अतः उसका अन्त केवली नहीं जानते । फिर भी उनकी सर्वसत्ता में कोई अन्तर नही आता।

एक मनुष्य कहता है मेरे नेत्र बहुत अच्छे हैं-मेरी दृष्टि मे तनिक भी कमी नही है । दूसरा आदमी कहता है-अच्छा, तुम्हें मेरे सिर पर सीग दीखते हैं या नही ? अगर नही दिखते तो तुम्हारे नेत्रो में त्रुटी है !

अब आप सोचिए कि क्या वास्तव में ऐसा कहना उपयुक्त है ? मनुष्य के सिर पर अविद्यमान सीग न देखने के कारण क्या किसी मनुष्य की दृष्टि मे हीनता की कल्पना की जा सकती है ? नही । इसी प्रकार जो वस्तु है ही नही उसे न जानने के कारण भगवान् की सर्वज्ञता मे कोई बाधा या त्रुटी नही आती ।

यही नहीं, जैसे विद्यमान वस्तु को न जान सकना ज्ञान की त्रुटि है, उसी प्रकार अविद्यमान को जानना भी ज्ञान का दोष है । ऐसी स्थिती मे यदि सर्वज्ञ भगवान् अविद्यमान वस्तु को नही जानते तो इससे उनके ज्ञान की निर्दोषता ही सिद्ध होती है ।

भगवान् महावीर जब गृहस्थ अवस्था में थे, तब उन्हे तीन ज्ञान थे । वे साधु बने तब चार ज्ञान हो गये । फिर उन्होंने १२ वर्ष और १३ पक्ष तक घोर तपश्चर्या की । परिणाम स्वरूप उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया ।

जब भगवान् को केवलज्ञान नही हुआ था, वे भिक्षा के लिए गृहस्थो के घर जाते थे, परन्तु ज्ञान लगा कर यह नही

देखते थे कि पारणा कहां होने वाला है? ऐसा करते तो उन्हें जिन कर्मों का क्षय करना था, उनका क्षय कैसे होता?

साधारण व्यक्ति भविष्य में होने वाली बात को नहीं जान सकता। पर केवली अनन्त भविष्य को भी अपने अनन्त केवलज्ञान के द्वारा जानते हैं। भले ही कुछ लोग अभिमान के कारण कहते हैं कि हम कल की बात जानते हैं, परन्तु—

जाने जाने ये कौन जगत् में, कल होने की बात ॥टेर॥
जोशीजी ने लगन देख कर, निज कन्या परणाई।
जाते सासरे विधवा हो गई, भावी कौन मिटाई?॥

मीन, मकर आदि राशियों की गणना करके और सौभाग्य योग देख कर शुभ योग में कन्या का विवाह किया। परन्तु कितने दुःख की बात है कि उनकी कन्या ससुराल जाते ही विधवा हो गई! बतलाइए, ज्योतिषीजी को भविष्य का ज्ञान होता तो क्या वे अपनी कन्या को इस प्रकार विधवा हो जाने देते?

वशिष्ठ ऋषि कहे लगन बता, कल राम राज्य हो जावे।
उसी समय वनवास हुआ है, रामायण बतलावे॥

रामायण में वर्णन है कि जब महाराजा दशरथ को तपश्चर्या के लिए जाने की इच्छा हुई तो उन्होंने राज्य त्याग देने का निश्चय किया। उन्होंने वशिष्ठजी को बुला कर रामचन्द्रजी को राज्य देने का मुहूर्त्त निकलवाया। वशिष्ठजी ने मुहूर्त्त निकाल दिया, कहा—कल राम को राज्य देने का शुभ मुहूर्त्त है। रात भर में राज्याभिषेक की तैयारियां हो गईं।

इसी बीच महारानी कैकेयी मुंह फुला कर बैठ गई। आखिर उसने महाराज दशरथ से अपने वरदान मांग लिये। राजा वरदान का ऋण न चुकाते तो उनकी प्रतिष्ठा और कीर्ति में बट्टा लगता था। रानी ने एक वरदान मे भरत के लिए राज्य मांग लिया और दूसरे मे राम को चौदह वर्ष का वन वास! रानी की यह मांग सुन कर महाराज दशरथ को इतना तीव्र आघात लगा कि वे मूर्छित हो गये! उस समय की दशरथ की स्थिति बडी बेढब थी। वरदान न देने से प्रतिज्ञा भग होती है वचन झूठा होता है और यदि भरत को राज्य दिया जाता है तो राजनीति की मर्यादा नष्ट होती है। और फिरः—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाएं पर वचन न जाई॥

जैन रामायण के अनुसार कैकेयी ने सिर्फ एक वरदान मांगा था। वह भरत के लिए राज्य चाहती थी। राम के वन वास का वरदान उसने नही मांगा था। भले ही वह राम की विमाता थी, फिर राम भी पर उसका गहरा स्नेह था और राम भी उसे अपनी माता के ही समान समझते थे। उनका पारस्परिक सबध अत्यन्त पवित्र, मधुर और गहरा था। ऐसी स्थिति मे यह कल्पना करना कठिन है कि रामचन्द्र को वह वन मे भेज देना पसंद करती!

प्रश्न किया जा सकता है कि अगर कैकेई ने राम के वनवास का वरदान नही मांगा तो राम क्यो वन गये? इस प्रश्न का उत्तर कठिन नही है। रामचन्द्र ज्येष्ठ भ्राता थे। भरत जानते थे कि वास्तव मे राज्य के अधिकारी रामचन्द्र हैं।

अतएव उनकी उपस्थिति में भरत राज सिंहासन पर आसीन होना किसी भी स्थिति मे स्वीकार नही कर सकते थे। यही सब सोच कर रामचन्द्रजी स्वेच्छा से वन की ओर प्रस्थान कर गये। इस प्रकार।—

खुशी थी शाम को कल राजगद्दी राम को होगी।
मगर उनको सुबह वनवास का पैगाम मिलता है॥
सुबह को सूर्य चढ़ता है,
दुपहरी बाद ढलता है।

भाइयो! आज हंसी-खुशी के साथ आप सोते हैं, परन्तु किसे पता है कि सोकर उठ भी सकोगे या नही?

राजीमती हर्ष धर बोली, बनूंगी नेम पटरानी।
रही कुंवारी बनी साध्वी, भावी की अनुहारी॥

अरिष्टनेमी के साथ विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं। वरराजा तोरण पर पधार रहे हैं। राजीमती महल के छज्जे पर खड़ी होकर सखियों के साथ अपने प्राणेश्वर के दर्शन करके फूली नही समा रही है। वह सखियो के सामने अपने भाग्य की सराहना कर रही है। वह अरिष्टनेमि की पटरानी बनने का मन्सूबा प्रकट कर रही है। मगर राजीमती को क्या पता कि भावी उसके साथ क्या खेल खेलने वाला है! बलिहारी है इस भावी की!

भगवान् पशुओं की करुणा से द्रवित होकर दीक्षा लेने के लिए पधार गये। राजीमती ने भी अविवाहित रहने का संकल्प किया औ साध्वी बनने को तैयार हो गई।

माता-पिता ने समझाया—अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है। तुम्हे दीक्षा लेने की आवश्यकता नही। किसी अच्छी जगह तुम्हारा विवाह कर दिया जायगा। मगर धन्य राजा-मती! तुम धन्य हो! तुम आर्यावर्त्त की आदर्श रमणी हो! भारत की विभूति हो! सच्ची सती हो! भूतल की लक्ष्मी हो! तभी तो तुमने कहा था—पिताजी, जब मैंने अरिष्टनेमि को पति के रूप में स्वीकार कर लिया; मेरे मन ने उन्हे अपना हृदयेश्वर मान लिया, तो मेरा दूसरा विवाह किस प्रकार हो सकता है? क्या आप मुझे सतीत्व से विचलित करना चाहते हैं? अब आजीवन ब्रह्मचर्य पालने के अतिरिक्त मेरे सामने दूसरा कोई विकल्प नही है।

सचमुच राजीमती ने वैसा ही किया। वह साध्वी बन गई।

खण्ड सातवां साधन धाया, संभूम पति राया।
होने की क्या उसको मालूम, दरिया बीच सिधाया॥

सभूम चक्री आठवां चक्रवर्त्ती था। छह खंडो पर अपनी अप्रतिहत सत्ता स्थापित करने के बाद उसने सातवें खण्ड को भी जीतने का विचार किया। बत्तीस हजार राजाओं ने और देवताओ ने उसे समझाया—चक्रवर्त्ती छह ही खड साधते हैं, सातवां खण्ड नही। पर:—

खोटे ही काम सूझते हैं, जब दिन खोटे आ जाते है।
मति भी खोटी हो जाती है खोटे विचार मन भाते है॥

जब मनुष्य की दशा खराब होने वाली होती है तब

भले आदमी उसे समझाते है—'मान जा दो की।' तब वह कहता है—न मानू सौ की।

संभूम चक्रवर्ती सातवा खण्ड साधने के लिए समुद्र मे चला। छह खण्ड की सीमा तक देव उसके साथ रहे; उससे आगे वे अलग हो गये। फिर भी उसका रथ पानी मे जा रहा था। संभूम ने अकड़ और अभिमान के साथ कहा देखो देवगण ! तुमने साथ छोड़ दिया तो क्या हुआ ? मेरे प्रताप से अब भी मेरा रथ पानी में चल रहा है।

देवो ने बतलाया-राजन् ! यह आपका प्रताप नही है। यह प्रताप आपके रथ पर अकित नमस्कार मत्र का है। इस महामंत्र के प्रताप से ही आपका रथ चल रहा।

देवो की बात सुन राजा को क्रोध आ गया। उसने रथ पर अकित नमस्कार मंत्र मिटा दिया। फिर क्या था ? रहा-सहा सहारा भी चला गया। सभूम रथ-सहित डूब कर सातवें नरक का अतिथि बना।

कल यह होगा, कल होगा, क्यो मिथ्या ताने।
कल की होनी को तो पूरा, पूरण ज्ञानी जाने ॥

अरे भाई, मिथ्या खींचतान क्यो करता है ? पूर्ण ज्ञानी के सिवाय भविष्य को और कोई नही जान सकता।

सोलह वर्षों तक जीऊंगा, वीर स्वयं उच्चारा।
रखो उसी पर पूर्ण भरोसा, वही है तारणहारा ॥

एक बार वीर प्रभु भिक्षा के लिये पधारे। जहाँ भगवान् का पारणा हुआ, वहां साढे बारह करोड़ स्वर्ण-मोहरों की वर्षा

हुई। यह बात एक डाकौत ब्राह्मण—जिसका नाम गोशालक था - देख रहा था । उसने सोचा—इनका चेला बन जाने में फायदा है ! इनकी सब करामाते सीखने मे सुभीता होगा ।

इस प्रकार सोचकर वह भगवान् के पास गया। उसने भगवान् का शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। परन्तु भगवान् तो मौनी थे। जब तक केवलज्ञान न हो जाय तब तक शिष्य न बनाने की तीर्थंकरो की मर्यादा होती है। न वे उपदेश देते हैं। अतएव उन्होने गोशालक की बात का कोई उत्तर नही दिया भगवान् चल दिये और वह जबर्दस्ती चेला बन कर उनके पीछे-पीछे हो लिया।

भगवान् के पास सुख-सुविधा का काम ही क्या था? गोशालक को अनेक कष्ट उठाने पड़े। एक बार किसी गृहस्थ ने गोशालक को ठडे चावल भिक्षा मे दे दिये। इस पर क्रुद्ध होकर उसने कहा तेरा घर जल जाय! सयोग से उसका घर जल गया। लोग भयभीत और आश्चर्यचकित हो गये!

बहुत बार संयोगवश चकित कर देने वाली घटनाएं घट जाती हैं। एक बार रावलपिण्डी मे देवीलालजी महाराज विराजमान थे। वहाँ दो दल थे। दोनों दलों के मुखियाओ को महाराज-श्री ने समझाया और दोनो मे एकता करने का प्रयत्न किया। परन्तु एक भाई ने महाराज श्री के लिए कुछ ऊची-नीची बातें कही। महाराज ने उनके उत्तर मे मौन धारण करना ही उचित समझा। सयोग से शाम को उसके घर में आग लग गई और चालीस हजार रुपये की हानि हुई। दूसरे दिन वह श्रावक महाराज के पास आकर बोला—मुनिराज! कल मैंने आपके प्रति अनुचित शब्दो का प्रयोग किया तो मेरी

चालीस हजार की हानि हुई। अब मुझे क्षमा कीजिए।

महाराज ने उत्तर दिया-भाई, मेरे हृदय में लेश मात्र भी ऐसी भावना नहीं थी कि तुम्हारा अहित हो। समाज में एकता हो और शान्ति स्थापित करना ही मेरा लक्ष्य है।

एक ब्राह्मण ने एक साध्वी को आहार–दान दिया और उसी समय उसे अपनी तरक्की का तार मिला।

हाँ, तो गोशाला, भगवान् महावीर के साथ रहने लगा। एक बार भगवान महावीर और गोशालक साथ-साथ जा रहे थे रास्ते मे एक तिल्ली का पौधा देख कर गोशालक ने भगवान् से पूछा—भगवन् ! इस पौधे में कितने फूल और कितने तिल के दाने होंगे? भगवान् ने फूलों और दानो की संख्या बतला दी। मगर जब वे कुछ आगे बढ़े तो उसने वह पौधा उखाड कर फेंक दिया। किन्तु वर्षा होने के कारण जहाँ पड़ा वह उसी जगह पनप गया। इस प्रकार गोशालक ने भगवान् को झूठा बनाने का प्रयत्न किया पर तीर्थंकर का वाक्य कदापि अन्यथा नहीं हो सकता।

कुछ दिन व्यतीत होने पर भगवान् और गोशालक उसी रास्ते से वापिस लौटे। गोशालक ने कहा—आपने तिल के झाड़ मे फूल और दाने लगने को कहा था, परन्तु यहाँ तो वह पेड़ ही नदारद है! भगवान् ने बतलाया—वह पेड़ वहाँ है। गोशालक ने उसके फूल गिने तो उतने ही निकले जितने भगवान् ने कहे थे। वह चुप रह गया। मन मे सोचने लगा—महावीर वास्तव में बड़े करामाती हैं!

एक बार एक महात्मा ध्यान लगा कर बैठे थे। उनके शरीर मे हजारो जूं पड गई थी परन्तु ध्यान में मग्न होने के कारण उस ओर उनका बिलकुल ध्यान नही था। गोशालक ने उन्हे देखा तो चपलता के कारण उससे नही रहा गया। उसने कहा—'अरे जूंओ के भण्डार ! जरा अपनी फौज की ओर तो देख !' इस प्रकार के अनेक उपहासजनक वाक्य सुनने के कारण महात्मा को क्रोध आ गया। उन्होंने अपनी आंखें खोल कर गोशालक की तरफ देखा और तेजोलेश्या फेंको। गोशालक जलने लगा। घबराता हुआ वह भगवान् की शरण मे आया और रक्षा करने के लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगा। करुणासागर भगवान् ने उस पर शान्ति की दृष्टि डाली और उसकी जलन शान्त हो गई !

भाइयों भगवान् महावीर के जीवन की कौन-कौनसी घटनाएं सुनाऊ? 'आदर्श महावीर' पढ़ो तो मालूम हो जाय कि वे कैसे थे ?

तदनन्तर गोशालक ने भगवान् से प्रश्न किया—प्रभो ! यह गुण किस प्रकार प्राप्त किया जाता है ? भगवान् ने कहा—यह जानने की शक्ति प्राप्त करने के लिए बेले-वेले का तप करना पड़ता है और पारणा मे सिर्फ उड़द के बाकले खाये जाते हैं। साथ मे सूर्य की आतापना ली जाती है।

वस, अब क्या था ? गोशालक को एक महत्त्वपूर्ण कला हाथ लग गई, अब उसे गुरुजी से कोई मतलब नही था। वह भगवान् महावीर का साथ छोड़ कर चल दिया।

सुननें वाला बहुत मिले, पर करने वाला थोड़ा।
खा जावे और लातां मारे, परजापत का घोड़ा ॥

बस, गोशालक ने अपना अलग धर्म स्थापित कर लिया। लाभ-अलाभ, जीवन-मरण और सुख-दुःख यह छह बातें उसने बतानी शुरू कर दी। उसके ग्यारह लाख से भी अनुयायी हो गये।

एक दिन गोशालक भगवान् महावीर के समवसरण में आया। वह भगवान् को बुरा-भला कह रहा था। भगवान् ने पहले ही अपने साधुओं को आदेश दे दिया था कि कोई उससे बातचीत न करे। अतः उसके अयुक्त और आक्षेप कारक वाक्यों को सुन करके भी सब साधु मौन रहे। परन्तु दो साधुओं से भगवान् का अपमान सहा नहीं गया। वे बीच में बोल पड़े। इससे क्रुद्ध होकर उसने उन साधुओं पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया और दोनों साधु भस्म हो गये। यही नहीं, कृतघ्नता के दोष की परवाह न करके उसने भगवान् पर भी तेजोलेश्या का प्रयोग किया। भगवान् पर उसका साधारण असर हुआ। दो साधुओं के भस्म हो जाने से गोशालक की धाक जम गई। उसने प्रचार किया कि मैं तीर्थंकर हूँ। महावीर सात दिन में मर जाएंगे। यह समाचार सारे भारत में फैल गया।

किसी जंगल में सिंह नामक एक अनगार ध्यान कर रहे थे। यह समाचार सुना तो उनकी समाधि टूट गई शोक के आवेग के कारण वे रोने लगे। भगवान् महावीर ने अपने ज्ञान में जान कर उन्हें अपने पास बुलाया और कहा—अभी मैं सोलह वर्ष तक और जीऊंगा।

अलबत्ता, गौशाला स्वय सातवें दिन मर जायगा ।

गोशाला की धरण ढीली हो गई । वह अपने स्थान पर आकर तडफड़ाने लगा । जब उसके भक्तो ने आकर पूछा—भगवान् ! यह क्या बात है ? तो गोशालक बोला—तीर्थंकर अन्तिम लीला इसी प्रकार करते हैं । यह मेरी अन्तिम लीला है ।

गोशालक ने अपनी मृत्यु के समय सब चेलो को बुलाया । क्षमायाचना करते हुए उसने कहा—मैं मिथ्याभाषी हूं । भगवान् महावीर को धोखा दिया है और साथ ही अपने को भी धोखा दिया है । मैंने पाखण्ड को प्रोत्साहन दिया । भगवान् महावीर ही वास्तव मे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं । शिष्यो ! जब मैं मर जाऊं तो मेरे पैर के अगूठे मे रस्सी बाँध कर सारे शहर मे, गली-गली मे घसीटना । गुरु के इस आदेश का पालन करना, अन्यथा मुझे बड़ा दु:ख होगा । इस प्रकार शुभ भावना आ जाने से वह बारहवें देवलोक मे देव रूप से उत्पन्न हुआ ।

गोशालक की मृत्यु हो गई । उनके भक्तो ने उसके कलेवर को नगर मे घसीटते हुए घुमाना उचित नही समझा और अपने गुरु की आज्ञा का उल्लघन करना भी योग्य नही समझा । अतएव उन्होने एक बड़े बाड़े मे ही नगर की और गलियो की कल्पना कर ली और उसी मे उसके कलेवर को घुमा कर बैकुंठी बनाकर दाह सस्कार कर दिया ।

उसके बाद भगवान् सोलह वर्ष तक विद्यमान रहे ।

धर्म काज कल करना उसको, करो आज ही भाया ।
एक पलक की खबर नही है, चौथमल यों गाया ॥

भाइयो ! दान आदि धर्म का जो आचरण करना है उसे कल के लिए मत छोडो । जो करना है उसे आज ही कर डालो । शील का खघ करो । विश्वास न करो कि अभी बहुत जीना हैं । क्षण भर भी प्रमाद न करके धर्म का आचरण करो ।

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।।

मौत ने आकर चोटी पकड़ रक्खी है, ऐसा समझ कर धर्म का आचरण करना चाहिए । कोई नही जानता है कि अगला श्वास आएगा या नही आएगा ?

कृष्ण कथाः—

* गोकुल की ग्वालिन दूध-दही बेचने के लिए मथुरा जाया करती थी । कृष्ण और बलराम ने उनसे दाण (चुङ्गी) वसूल करना आरम्भ कर दिया । कोई ग्वालिन चुङ्गी न देती तो वे उसकी मटकी फोड़ डालते थे । तब ग्वालिनें कहने लगी—

गोकुलवासी दोनो हो तुम, मत ना धूम मचाओ ।
जाय शिकायत करें कंस पै, फिर पीछे पछताओ ।।

यह सुनकर कृष्ण कहते—अरी डराती किसे है ? कंस को विध्वस करके तो उसका राज्य छीनने वाला हूं । थोडे ही दिनो की बात है । फिर देखना, मथुरा का राजा मैं ही बनूंगा !

गुप्तचरों के द्वारा यह खबर कंस तक पहुँच गई । मगर नन्द की शरण होने के कारण कंस का वश नही चला । कृष्ण इस समय सोलह वर्ष के हो चुके थे ।

---

* २-९-४५ के व्याख्यान से आगे का भाग ।

सत्यभामा कंस की छोटी बहिन थी। उसकी वय विवाह के योग्य हो गई थी। वर का चुनाव करने के लिए स्वयंवर रचा गया। घोषणा की गई थी कि सारग धनुष चढ़ाने वाले के साथ सत्यभामा का विवाह किया जायगा। कई राजा—महाराजा स्वयवर मे उपस्थित हुए। सबने अपने-अपने बल को आजमाया, परन्तु सारग धनुष नही किसी से न चढ़ सका। यह बात राजपूती शान के खिलाफ थी, मगर उपाय क्या था? सब लज्जा मे गडे जा रहे थे।

ऐसे समय मे सौरिपुर के कुमारः—

वसुदेव-सुत अनाधृष्ट सुन, अभिमान में छाया ।
धनुष चढ़ाने सौरिपुर से, रथ में बैठ कर आया ॥

अनाधृष्ट सौरिपुर से मथुरा के लिए रवाना हुआ। रास्ते मे गोकुल पडता था। वह गोकुल से कृष्ण को अपने साथ लेकर मथुरा आ पहुचा। बहुत-से राजा लोग वहा मौजूद ही थे, अब अनाधृष्ट और कृष्ण भी पहुंच गये।

सत्यभामा सोलहों शृंगार सज कर सभा मण्डप मे आई। उसके हाथों में पुष्प-माला थी। उसकी शोभा अनुपम थी। ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्ग से अप्सरा उतर कर आई हो। उसकी दृष्टि कृष्ण पर पडी। कृष्ण को देखते ही वह मोहित हो गई। उसने ईश्वर से प्रार्थना की-यही मेरे पति हो!

अनाधृष्ट ने सारग धनुष चढाने का प्रयत्न किया। पूरा जोर लगाया, परन्तु वह सफल न हो सका। सब लोग हंस पड़े। यह हाल देख कृष्ण को बहुत क्रोध आया और —

तब तो पुष्पमाला की भांति, हरि ने धनुष उठाया।
तब उसको रख दिया वहीं पर, हरि फिर बाहर आया॥

तत्पश्चात् दोनो वसुदेव के पास गये और:—

अनाधृष्ट आ पिता श्री से, ऐसा वाक्य सुनाया।
रखो शान राजपूतों की, हरि ने धनुष चढ़ाया॥

वासुदेव यह संवाद सुन कर कॉप उठे। और कोई अवसर होता तो वे फूले न समाते, परन्तु मौजूदा परिस्थिति मे उन्हे अपने बालको के लिए असीम चिन्ता हो उठी। उन्होने कहा--यह बात सत्य है तो तुम फौरन सौरिपुर चले जाओ, अन्यथा कंस तुम्हें मारे बिना नही रहगा।

वासुदेव की बात सुन कर अनाधृष्ट, कृष्ण को साथ लेकर उसी समय मथुरा से चल पडे और गोकुल आये। गोकुल मे श्रीकृष्ण को यशोदा के सुपुर्द करके आप स्वयं सौरिपुर चले गये।

भाइयों! कृष्णजी की कथा बहुत विस्तृत है। उस पर विस्तार के साथ प्रकाश डालने के लिए बहुत समय चाहिए। मगर समय इतना नही है। अतएव मैं संक्षेप मे खास खास बातों पर प्रकाश डाल रहा हूं। आगे की घटना अवसर होगा तो फिर कभी बतलाऊगा।

पुण्य जिसकी रक्षा करता है, उसका कोई कुछ भी नही बिगाड़ सकता। अतएव पुण्य का उपार्जन करो। पुण्यात्मा पुरुष परम आनन्द के भागी होते है।

इन्दौर
२२-६-४५



इस हाथ दे उस हाथ ले !

स्तुति—

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
नि:शेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! आपका मुखमण्डल देवों, मनुष्यों और नागेन्द्रों के भी नेत्रों को हरण करने वाला है और उसने कमल, चन्द्रमा और दर्पण आदि की समस्त उपमाओं को जीत लिया है।

कहां इतना मनमोहक आपका मुखमण्डल और कहाँ बेचारा कलंक से मलीन और दिन में पलाश के पत्र के समान निस्तेज-फीका-दिखाई देने वाला चन्द्रमण्डल ! दोनो मे अन्तरम् महदन्तरम् है। वास्तव में आपके मुखमण्डल की संसार के किसी भी मनमोहक और आह्लादकारी पदार्थ के साथ तुलना नही की जा सकती।

ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है। पहले बतलाया ही जा चुका है कि भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थंकर हुए हैं। उनके पश्चात् समय-समय पर तेईस तीर्थंकर और हुए, जिनमें श्री महावीर स्वामी अन्तिम थे। भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम स्वामी हुए हैं। भगवान् और गौतम स्वापी के मध्य अनेक धर्म प्रश्न हुआ करते थे। उनमे से अनेक प्रश्नों और उनके उत्तरों का आज भी शास्त्रों मे उल्लेख मिलता है। एक बार गौतम स्वामी ने भगवान् से विनयपूर्वक प्रश्न किया—भन्ते ! आत्मा हल्की किस प्रकार हो सकती है ?

उत्तर में भगवान् ने फर्माया—गौतम ! कर्मों का नाश करने से व पापों का त्याग करने से आत्मा हलकी होती है। पापों के भार से ही आत्मा गुरु—भारी हो रही है। पापों के प्रभाव से ही आत्मा अनादिकाल से भवभ्रमण कर रही है। पाप ही आत्मा को संसार-सागर में डुबाने वाले हैं। पापों से ही आत्मा का स्वाभाविक स्वच्छ स्वरूप छिप गया है और आत्मा में मलिनता आ गई है। अतएव आत्मा का उद्धार करने के लिए पापों का परित्याग करना आवश्यक है।

चाहे हिन्दू हो या मुसलमान हो, जैन हो या वैष्णव हो,

गृहस्थ हो या गृहत्यागी हो, किसी भी अवस्था मे और किसी भी वेष मे क्यो न रहता हो जो पाप का आचरण करेगा उसे दुर्गति मे जाना पड़ेगा । जिसे दुर्गति के दुःखो से बचना है उसे पापों का परित्याग करना होगा । पापो का त्याग किये बिना जीभ से भगवान् का नाम जप लेने मात्र से निस्तार नही हो सकता । लौकिक उदाहरण से ही यह बात समझ में आ सकती है । कल्पना करो कि एक मनुष्य सरकार के बनाये हुए कानून-कायदा नही मानता और उनके विरुद्ध आचरण करता है, किन्तु सरकार का नाम जपा करता है । तो क्या सरकार उससे प्रसन्न हो जायगी ? वह अपने कानून के उल्लघन के लिए उसे दण्ड नही देगी ?

तुम्हारी पत्नी तुम्हारे नाम की माला जपती बैठी रहे और न घर का कोई काम-काज करे, न तुम्हारी सुविधा का कोई खयाल रक्खे तो क्या तुम अपनी पत्नी पर प्रसन्न रह सकोगे ?

इसी प्रकार यदि आप भगवान् के आदेशों के अनुसार आचरण न करें और सिर्फ भगवान् के नाम की माला जपा करे तो क्या भगवान् आप पर प्रसन्न हो जाए गे ? नही । आप का कल्याण होगा ? नही । अपना कल्याण करना है तो पापो का परित्याग कीजिए ।

भगवान् के हुक्म की तामील यही है कि हम उनके उपदेश के अनुसार व्यवहार करें । सही रास्ते पर चलें । बिना चले काम नही चलेगा । आपकी मजिल पूरी नही होगी । दही को मथने से मक्खन निकलता है, यह बात दुनियाँ जानती है और आप भी जानते हैं । पर क्या जान लेने मात्र से मक्खन

निकल आता है ? नहीं, क्रिया किये विना—दही को मथे विना—मक्खन नहीं निकलेगा । इसीलिए हमारा कहना है कि पापो से बचो । पापों से बचे विना तुम्हें स्वर्ग और मोक्ष नही मिल सकता ।

भाइयों ! अपना भला चाहते हो तो पापों से बचो । दुनिया राजी होकर पाप करती है, राजी होकर झूठ बोलती है, राजी होकर चोरी करती है और अपने पापों के लिए अपने मुंह से ही तारीफ करती है कि देखो, हमने कैसी बुद्धिमानी का काम किया है । इस पर शेखसादी साहब कहते हैं—

गुना में कुनी हो गुना में कुनी ।
खता में कुनी हो खता में कुनी ॥

एक अपराध करके उस अपराध पर पर्दा डालना, एक पाप करके दूसरा पाप करने के समान है ।

आपको मानव की योनि मिली है । समझने की शक्ति मिली है और समझाने वाले गुरु मिले हैं । फिर भी आप न समझें तो हद दर्जे की नादानी है । मगर याद रक्खो कि अगर इस समय न समझे तो अवसर चूक जाओगे, ऐसा अवसर जो दुर्लभ है और तीव्रतर पुण्य के योग से ही जिसकी प्राप्ति होती है ।

मत समझना कि तुम जो पापाचरण करते हो; उसका किसी को पता नहीं चलता । परमात्मा सब कुछ देखता और जानता है । इस कारण जो उसे पसंद नहीं है, उसका आचरण मत करो । अपनी भलाई-बुराई का विचार करो ।

पाप में रात-दिवस जाता,
धर्म-मारग में नहीं आता।
बोलता मुख से मीठी बातां,
माल पराया ठग खाता॥
सुमति की सेज गया तज के,
लाभ नही लिया ईश भज के॥

कुछ लोग माला जपते है और उसमें भावना करते हैं-'हे भगवान्! सारे गाँव के ग्राहक मेरी ही दुकान पर आ जाएं', भगवान् ग्राहको को घेर कर तेरे घर लाएं गे! तूने भगवान् को अपना नौकर समझ रक्खा है! अरे लोभी! सब ग्राहक तेरी दुकान पर आ जाएंगे तो बता, दूसरो के बाल-बच्चे क्या खाएंगे?

कुछ लोग हनुमानजी के पास जाकर प्रार्थना करते है—

मनाऊं हनुमान बाला,
मार दे दुश्मन को भाला।

अरे दुष्ट! तेरे और उसके बीच दुश्मनी है। हनुमानजी क्यों उसके दुश्मन बनेंगे? तेरे कहने से उसे भाला मारेंगे तो उसके कहने से क्या तुझे भाला नही मार देंगे? हनुमान क्या तेरे ही है और उसके नही है? वे किस-किस के कहने से किसे-किसे मारते फिरेंगे? और क्यो मारेंगे? अगर इतनी सीधी-सादी बात तुम्हारी समझ मे आती हो तो फिर क्यों अपनी भावना को वृथा कलुषित करते हो? क्यों भगवान् से पाप कराने की भावना करते हो?

भाई, जरा अपनी हालत पर विचार कर। पहले तू बालक था और अब जवान या बूढ़ा हो गया है। तेरी आयु पल-पल में क्षीण होती जा रही है। अगर पाप ही पाप मे अपनी समग्र आयु समाप्त कर देगा तो फिर पछताना पड़ेगा। हम तुझे चेतावनी दे रहे हैं-बार-बार समझा रहे हैं। सावधान न हुआ तो कौवे की तरह पश्चात्ताप करके दुखी होना होगा।

विन्ध्याचल की तराई मे एक नाला था। विन्ध्याचल में हाथी बहुत होते हैं। एक बूढ़ा हाथी अपनी आयु पूर्ण करके मर गया। वह नाले में पड़ा हुआ था। गिद्ध, सियार और कौआ आदि उसके मांस को नोंच-नोच कर खाने लगे। प्रतिदिन पशु-पक्षी उस हाथी के माँस को खाने के लिए आ जाते और संध्या होने पर अपने-अपने ठिकाने चले जाते थे।

एक दिन एक कौआ हाथी के मलद्वार के माँस को खाने लगा। खाते-खाते वह अन्दर चला गया और रात को अंदर ही रह गया दूसरे कौए बोले-चलो भाई, सन्ध्या का समय हो गया है। रात को यहाँ रहना ठीक नही है। हमे झाड़ पर रहना चाहिए। यह सुन कर उस मूर्ख ने कहा—तुम लोग मूर्ख हो। रोज आना और रोज जाना मूर्खता है। तुम्हें जाना है तो जाओ। मैं यही रहूँगा।

चैत्र-वैसाख का महीना था। गर्मी पडने लगी थी। मौसम के इस प्रभाव के कारण हाथी का चमड़ा सूखने लगा, और उसका मलद्वार भी सुकड़ कर बंद हो गया। कौआ भीतर कैद हो गया। बाहर से कौए के साथी कांव-कांव करके

पुकारते थे, वह भी भीतर ही भीतर छटपटाने लगा। मगर बाहर निकलने का कोई मार्ग नही था।

वर्षा का मौसम आरंभ हुआ। वर्षा हुई और नाले में बाढ आई। हाथी का कलेवर बाढ से बच नही सका। नाले बह कर नदी मे पहुँचा और नदी से सागर मे जा पहुँचा। धीरे-धीरे वह सागर के मध्य में पहुंच गया। वहाँ चारो ओर पानी ही पानी था। कही स्थल नजर नही आता था। हाथी का कलेवर गीला होने और मलद्वार फूलने से कौआ बाहर निकलने में समर्थ हो सका। बाहर आकर वह उस हाथी के कलेवर पर बैठ गया। कुछ समय के लिये उसे सान्त्वना मिली, शान्ति प्राप्त हुई। पर ज्यों ही उसे अपने परिवार की याद आई, वह दुखी हो गया। वह उड़ कर समुद्र के किनारे जाना चाहता था, परन्तु विवश था। उसके पखो में इतनी ताकत नही थी कि उन के सहारे वह समुद्र को पार कर सके।

सौभाग्य से एक जहाज उधर आया। जहाज के मल्लाह ने कौए को बुलाया और कहा-तू जहाज पर आजा। हम तुझे पृथ्वी पर छोड़ देंगे।

कौए ने पहले तो चले जाने का विचार किया, परन्तु हाथी के सडे कलेवर को ओर देखा तो फिर ललचा गया। तैयार भोजन-सामग्री को देखकर उसका मन जाने को न हुआ। वह असमंजस मे पड़ गया। बोला आप चलिए, मैं अभी उड़-कर आ जाऊंगा।

जहाज का मल्लाह दयालु था उसने फिर साथ चलने का आग्रह किया। कौआ फिर भी उस मांस मे लोलुप होकर कहने

लगा-आप चलिए, मैं अभी आता हूं। आखिर जहाज चला गया और वह कौआ वही रह गया।

संयोगवश एक बड़ा मगर हाथी के कलेवर को पानी के भीतर खींच ले गया। कौआ उडता ही रह गया। वह बहुत देर तक उड़ता रहा परन्तु कब तक उड़ सकता था? आखिर उसे पानी मे गिर कर प्राण दे देने पडे। कोई मच्छ उसे भी पानी मे ले जाकर खा गया। कौए की ऐसी दुर्दशा हुई।

भाईयो! यह तो एक दृष्टान्त है। इस दृष्टान्त के सहारे आप अपने सबंध मे विचार करो। यह ससार समुद्र के समान है। भोग-विलास सडे हुए मांस के सदृस हैं। इस संसार-सागर मे धर्म जहाज के समान है और साधुजन उस जहाज के दयालु मल्ला है। संसारी जीव कौए के समान हैं। साधु कहते हैं-अरे संसार के प्राणियो! आओ, धर्म के इस जहाज पर सवार हो जाओ। अगर यह अवसर खो दिया-भोगविलास में अनुरक्त होकर मौका हाथ से निकल जाने दिया तो कौए की तरह पछताना पड़ेगा। कवि कहता है—

ऐ मन-भवरे! तुम न लुभाना,
बाग तेरा नही है ये बिगाना;
चटपट रस ले झट उड़ जाना,
नहीं माना होगा पछताना ॥
व्यर्थ न वक्त गुजार मनवा,
जीवन है दिन चार ॥ मनवा० ॥

संसार के विवेकशील प्राणियो ! अपना कल्याण चाहते हो तो धर्म के जहाज पर सवार हो जाओ । संसार में डूबने वाले तो डूबेंगे ही, पर हम तो आवाज़ फूंक दें ! इसलिए कहते हैं—समय न गंवाओ । सुख चाहते हो तो पाप को छोड़ कर इधर आ जाओ ।

वैश्य लोग अपने धन की रक्षा करने में बहुत कुशल होते हैं मगर खेद है कि वे यह नही समझते कि उनका वास्तविक धन क्या है ? रुपया, पैसा, महल आदि को तुमने धन समझा है, परन्तु वह तुम्हारा सच्चा धन नही है । वह पौद्गलिक धन तुम चेतन का धन कैसे हो सकता है ? तुम्हारा असली धन चारित्र है । मैं तुम्हे चारित्र रूपी सच्चे धन की रक्षा का उपदेश देता हूँ ।

भाइयो ! उपदेश सुन कर भाई लोग दूसरे की ओर झाँकते हैं पर खुद कैसे हैं इसकी उन्हे चिन्ता नहीं ।

ले मुख्तारनामा और का वकील हो फिरे,
खुद मिस्ल का पता नही समझ ये धरे ।
है यह अमोल जिंदगी को यत्न न करे,
सोया है मोह-नींद में जगाए किस तरह ? ॥

पहले अपनी बरियत की तो कोशिश कर लो, फिर दूसरों को बरी कराने की हिम्मत करना । दूसरे के मकान की नीलामी रुकवाने चले हो, पर खुद तुम्हारा मकान नीलाम हो रहा है । उसकी तो चिन्ता कर लो ।

हम बार-बार पापो का परिहार करने का उपदेश देते

हैं, परन्तु आपको तो संगति बुरी लगी हुई है। घमण्ड, दगा-बाजी, लालच और क्रोध, यह चार आपके दोस्त है। इन दोस्तो की कुसंगति के कारण आप संतो की वाणी और प्रेरणा की ओर ध्यान नही देते। जो इनके प्रभाव में रहेगा वह पाप करने पर तुला रहेगा। उसे स्वहित और परहित का कोई विचार नही आता। उसे अपने वास्तविक कर्त्तव्य का भान नही होता।

कृष्ण कथाः—

कंस निरन्तर इसी धुन मे रहने लगा कि कब अवसर मिले और कब कृष्ण का काम तमाम करू !

जब कंस को सारग धनुष चढ़ाने की खबर मिली तो वह आग-बबूला हो गया। उसने अब तो कृष्ण के प्राण लेने का पक्का प्रण कर लिया।

सत्यभामा के स्वयंवर में जो-जो राजा लोग आये थे, उन्हे कंस ने मल्लयुद्ध का निमंत्रण दिया और कुछ राजाओ को रोक भी लिया। यह खबर वसुदेव को भी मिली। वसुदेव ने विचार किया-कंस अत्यन्त कुटिल नीति वाला है। सभव है, इस अवसर पर कृष्ण और बलराम भी आ जाए और कंस कोई अनर्थ कर डाले। इस कारण उन्होने सोरिपुर के महाराजा समुद्रविजय को भी बुला लिया।

इधर मल्लयुद्ध का दिन सन्निकट आ गया। लोग कौतुक के वशीभूत हो गये। मथुरा नगरी मे एक भव्य अखाडा बनाया गया। अखाडे के चारों ओर दर्शकों के लिए यथायोग्य बैठकें बन गई।

गोकुल मे भी मल्लयुद्ध की खबर पहुँची। हरि और हलधर ग्वाल-वालो के साथ मल्लयुद्ध देखने के लिए तैयार हुए। बलदेव ने यशोदा से कहा—माँ, कल प्रातःकाल हम मल्लयुद्ध देखने जाएगे। अतएव जल्दी ही नहाने के लिए गर्म जल कर देना।

यशोदा ने इस बात पर कोई ध्यान नही दिया। प्रातःकाल होने पर जब उन्हे गर्म जल न मिला तो बलदेव ने कहा—अरी यशोदा! जल गर्म नही किया!

यशोदा ने जरा चिढ़ कर कहा—क्यो व्यर्थ भटकने जाते हो? क्यो तूफान मचाते हो? गैयो को चराओ तो ठीक भी है!

यशोदा को इस बात से बलभद्र के हृदय में उफान आ गया। वह वोले—

कोप करी बलदाऊ बोले-मतना बात बढ़ाना।
आखिर जात गूजरनी की है, यों कह हुए रवाना॥

यह बात सुनकर कृष्ण से न रहा गया। उन्हें क्रोध आ गया।

लाल आँखें करके उन्होने बलराम से कहा:—

मेरी मात को तुने गाली दीनी बहुत कठोर।
नई मात का दूध पिलाता, जो कोई होता और॥

तब बलभद्र ने हंसकर कहा:—

राम कहे नही पिता नंद है, खास यशोदा माता।
असली मात-पिता बतलाऊं, सुनो ध्यान दे भ्राता॥

पिता हैं अपने वसुदेवजी, जो जग मे लासानी ।
गोपूजन मिस आती है वो, मात देवकी रानी ।।

इसके बाद बलभद्र ने बतलाया—मैं तुम्हारी सौतेली माता का पुत्र हूँ। हम दोनों के पिता एक ही हैं। तू देवकी माता का पुत्र है और तेरी माता के छह पुत्रों को दुष्ट कंस ने मरवा डाला।

बलभद्र की अन्तिम बात सुन कर कृष्णजी क्रोध से लाल हो गये। उन्होने दोनों भुजाए उठा कर प्रतिज्ञा की कि आज कंस का अवश्य वध करूंगा। कंस के प्राण लिये बिना गोकुल में प्रवेश नहीं करूंगा। उस नराधम कंस ने मेरे छह भाइयो को मरवा डाला ! आज उससे पूरा-पूरा बदला लूंगा !

यमुना मे नहा-धोकर और लंगोट कस कर कृष्णजी, बलराम तथा ग्वाल-बालों के साथ मथुरा के द्वार पर आये। द्वार पर कंस ने दो मदोन्मत्त एवं पागल हाथी खड़े कर रक्खे थे। उन पर महावत बैठे हुए थे। ज्यो ही कृष्ण और बलराम दरवाजे पर पहुंचे, दोनो हाथी उन पर टूट पड़े।

हरि ने पद्मोत्तर गज पकड़ा, चम्पक को बलराम।
दन्त उखाड़े मुष्टिमार से, कीनों काम तमाम ।।

यह नाटक देख कर सब लोग आश्चर्य-चकित रह गये और समझ गये कि यह कृष्ण और बलराम हैं। हाथियो को ठिकाने लगा कर वे अपनी मंडली के साथ अखाड़े पर आये। वहाँ दर्शकों की भारी भीड़ थी। ग्वाल-बाल यह हाल देख कर सकपका गये। कृष्णजी उसी समय मन्च पर चढ़ गये और

लोगों को उठा-उठा कर फेंकने लगे। उन्होंने अपनी मन्डली के बैठने के लिए जगह बना ली।

तत्पश्चात् बलराम ने सकेत करके कंस, वसुदेव और समुद्रविजय आदि का परिचय कराया। उधर मल्ल अपने-अपने बल का परिचय देने के लिए अखाडे मे उतरे।

बलराम और कृष्ण को देख कर कंस जल-भुन गया। उसकी छाती धडकने लगी। ठीक ही है:—

जो जलावेगा किसी को, वह जलाया जायगा।
जो सतावेगा किसी को, वह सताया जायगा॥

लोग दूसरे के प्रति अत्याचार करके फूले नही समाते। वे अपनी शक्ति के अभिमान मे अन्धे हो जाते है और समझते हैं कि कोई हमारा क्या बिगाड़ सकता है? उन्हें समझना चाहिए कि कोई कुछ बिगाड़ सके अथवा न बिगाड़ सके, उनकी करतूते ही बिगाडे बिना नही रहेगी? मनुष्य का प्रत्येक कार्य अपना फल देता है। चाहे कोई राजा हो या रक हो, सबल हो या निर्बल हो, प्रत्येक को अपने कार्यों का फल भोगना पड़ता है। अतएव इस तथ्य को ध्यान मे लेकर ही प्रत्येक को व्यवहार करना चाहिए।

कस अपनी शक्ति के मद मे चूर हो गया था। उसे इस बात का खयाल ही नही रहा था कि मुझे अपने अन्याय और अत्याचार का फल भुगतना पड़ेगा!

मनुष्य अपनी करतूत को भूल जाता है परन्तु वह करतूत अपना फल देना कभी नही भूलती। यथासमय उसे उस का फल अवश्य भोगना पड़ता है। कस के लिए वह समय आ

पहुँचा है। उसके अत्याचारों और पापों का घड़ा भर गया है। देखिए, आगे क्या होता है।

भाइयों! पाप का प्रतिफल अत्यन्त दुःखद होता है, इसलिए मैं आपको सावधान कर रहा हूँ कि अगर अपना कल्याण चाहते हो तो पाप से बचो। पाप से बचोगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

इन्दौर
२२-६-४५





तपस्तेजस्

स्तुति—

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयम्,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहां तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहां तक आपके गुण गाये जाएं ?

भगवान् ! आपका सौम्य रूप बिना पलक मारे-टकटकी लगा कर देखने योग्य है आपका दर्शन कर लेने के पश्चात् मनुष्य के नेत्र अन्यत्र कहीं संतोष को प्राप्त नहीं होते । सो ठीक ही है, क्योंकि चन्द्रमा के समान धवल कान्ति वाले क्षीरसागर

का जल पी चुकने पर कौन बुद्धिमान् समुद्र का खारा जल पीना चाहेगा ?

ऐसे अनुपम रूप-सौन्दर्य से समन्वित भगवान् ऋषभदेवजी है। उनको मेरा बार-बार नमस्कार है।

शंका की जा सकती है कि जब भगवान् ऋषभदेव को मोक्ष प्राप्त किये लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, तो फिर उनके भक्त किस प्रकार उनके दर्शन कर सकते हैं ?

इस शंका का समाधान यह है कि आँखो से देखना मात्र ही दर्शन नही है। महावीर के निर्मल निरजन स्वरूप को मन के द्वारा चिन्तन करना भी दर्शन है; उनके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों पर दृढ़ श्रद्धा करना भी दर्शन है और अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन होना भी परमात्मा का दर्शन करना है।

पन्नवणासूत्र में शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति को दर्शन कहा गया है।

आपने बच्चों को गुड्डा-गुड़िया का खेल खेलते देखा होगा। वे तभी तक उस खेल को खेलते हैं, जब तक उनके ज्ञान का परिपाक नहीं होता धीरे-धीरे जब बालक की बुद्धि परिपक्व हो जाती है और वे कपड़े की गुड़िया को नकली गुड़िया समझने लगते हैं तब स्वय ही उस खेल को छोड़ देते हैं। फिर उनकी रुचि ही बदल जाती है और कोई दूसरा उस खेल को खेलने को प्रेरणा करे तो भी वे नही खेलते। आज आपसे गुड़िया-गुड्डा का खेल खेलने को कहा जाय तो क्या आज खेलना पसद करेंगे ? नहीं, आप उपेक्षापूर्वक मुस्करा देंगे।

इसी प्रकार जब तक संसारी जीव वास्तविक :देव, गुरु और धर्म के स्वरूप को नही पहचानता, तब तक वह नकली देव गुरु और धर्म रूपी गुड्डा-गुडिया से खेलता है। उनके प्रति गहरी रुचि रखता है। पर वास्तविक तत्त्व का ज्ञान होने पर वह खिलवाड़ खत्म हो जाती है।

बच्चों का खेल उम्र पाकर बन्द हो जाता है, परन्तु देव, गुरु, धर्म सम्बन्धी खिलवाड़ का सम्बन्ध उम्र से नहीं, समझ से है। बहुत से वयोवृद्धजन भी सच्ची समझ न होने के कारण नकली देवों, गुरुओ और धर्म के चक्कर मे पडे रहते हैं और उसी में उनका सम्पूर्ण जीवन समाप्त हो जाता है। कहना चाहिए कि एक ही जन्म नही, वरन् अनेक जन्म इस खिलवाड में खत्म हो जाते हैं। ससारी जीव अनादिकाल से इस बालिशता मे फंसा है। उसे अब तक भी यथार्थ बोध प्राप्त नही हुआ।

जिनको सच्ची श्रद्धा और यथार्थ बोध प्राप्त हो जाता है, वे शरीर को हेय समझने लगते हैं। गजसुकुमाल को अगर सुदृढ़ आत्मश्रद्धा प्राप्त न हुई होती तो क्या वे अपने सिर पर रक्खे हुए अगारे सहन कर सकते थे? उन्होने सच्ची श्रद्धा और यथार्थ बोध प्राप्त करके शरीर को पर-पदार्थ समझा नाशवान समझा, तभी वे कर्म दलो को हटा कर मुक्ति के अधिकारी बन सके!

जो विवेकशील मनुष्य शरीर को भी हेय समझने लगता है, उसके लिए परिवार और धन-वैभव का मोह तुच्छ हो जाता है। कहा भी है—

यस्यास्ति नैक्यं वपुषाऽपि सार्द्धम्,
तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः,
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ? ॥

अर्थात्—शरीर के साथ भी जिसकी एकता नही है—जो अपने शरीर से भी अलग है, उसकी पुत्र पत्नी और पारिवारिक जनों के साथ एकता किस प्रकार हो सकती है ? शरीर की चमड़ी को ही अगर अलग कर दिया जाय तो शरीर मे रोमकूप कहाँ रह जाएंगे ? आशय यह है कि शरीर के आश्रित ही ससार के सम्बन्ध हैं। जब शरीर ही अपना नही तो अन्य व्यक्ति अपने कैसे हो सकते हैं ? 'मूलं नास्ति कुतः सखा ?'

सच्ची श्रद्धा आनन्दजी को प्राप्त हुई थी । उन्होने उसी दिन और उसी समय से अपने तप और त्याग की वृद्धि की ।

जब तुम्हे बम्बई जाना है तो व्यर्थ दोहद, गोधरा या सूरत मे पड़े रह कर समय क्यो नष्ट करते हो ? संभव है कोई चोर तुम्हारा सामान चुरा ले जाय। कोई जेब कतरा जेब काट कर बटुवा गायब कर दे ? और तुम बम्बई का टिकिट ही न खरीद सको ।

इसी प्रकार अगर आपने मोक्ष के मंगलमय नगर में पहुचने का निश्चय कर लिया है तो वृथा इधर-उधर मत भटको । मार्ग मे अपने मूल्यवान् समय को नष्ट मत करो । ऐसी करणी करो, जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो ! क्या पता है कि आगे चक्कर मे पड़ जाओ !

भाइयो ! अज्ञान और मिथ्यात्व, इस संसार मे बड़े जबर्दस्त लुटेरे है। इनका मुकाबिला करना साधारण बात नही है। ये लुटेरे क्या साधु और क्या श्रावक, किसी की प्रीति नही पालते। दाँव लगते ही लूट मार आरभ कर देते हैं। इनसे सावचेत रहना !

भाइयो ! कर्मों के चक्कर से कौन बचा है ? कर्म अगर किसी को छोडते हैं तो उसी को जिसने कि कर्मों को समूल नष्ट कर दिया हो। कर्म नाश करने का उपाय क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर मे ज्ञानियो ने फर्माया है कि कर्मों का सर्वथा नाश करने के दो उपाय हैं:- संवर और निर्जरा। सवर के द्वारा नवीन कर्मों का आगमन रोक दिया जाता है और निर्जरा के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों का विनाश किया जाता है। जब नवीन कर्मों का वध रुक जाता है और पुराने कर्म क्रमशः झडते जाते हैं तो अकर्म-स्थिति प्राप्त हो जाती है।

कुछ लोग कहते हैं-भूखे रहने से क्या होता है ! परन्तु हम उनसे पूछते हैं-खाने से क्या होता है ? क्या खा लेने से सदा के लिए भूख मिट जाती है ? खाने से क्या सैकडो प्रकार की व्याधियां उत्पन्न नही होती ? अनुभवी लोगों का कथन तो यह है कि भूखे रहने से जितने लोग मरते हैं, खाने से उसकी अपेक्षा अधिक लोग मरते हैं ! कोई भूखा होगा तो चुपचाप पड़ा तो रहेगा ! खाने से मस्ती सूझेगी, झूठो गवाही देने जायगा। कितने ही कुकर्म करेगा ?

भूखा रहना दो प्रकार का है-अज्ञानपूर्वक और ज्ञान-पूर्वक। वगाल मे पिछले दिनो जो दुष्काल पड़ा था, उसमे बहुत-से लोग भूख के कारण निर्जीव से हो गये। कौवे

उनकी आँखों को निकालने के लिये आते थे तो उन्हें उड़ाने की भी शक्ति उनमें नहीं रह गई थी । यह भूखो मरना कहलाता है । इसे तपस्या नही कहते । तपस्या तो स्वेच्छापूर्वक भोजन आदि का त्याग करना कहलाता है ! उसके दो भेद हैं-बाह्य तपस्या और आभयन्तर तपस्या । दोनो के छह-छह भेद हैं । इस प्रकार दोनों के मिल कर बारह भेद होते हैं ।

उत्तराध्ययनसूत्र में तपस्या का फल बतलाते हुए भगवान् ने फर्माया है—

भवकोडिसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ।

अर्थात् करोडो भवों में सचित किये हुए कर्मों को तपस्या जला कर भस्म कर देती है !

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तपस्या ज्ञानपूर्वक ही होनी चाहिए । ज्ञानी की तपस्या ही कर्म-विनाश का कारण होती है । कहा है—

कोटि जन्म तप तपे ज्ञान बिन कर्म झरें जे,
ज्ञानी के छिन मे त्रिगुप्ति तें सहज टरे ते ॥

अज्ञानी जीव करोड़ों भवो में तपस्या करके जितने कर्मों को दूर करता है, ज्ञानी पुरुष तीन गुप्तियो की आराधना करके क्षण भर में उतने कर्मो को चकनाचूर कर देता है !

संसार में जितने भी महात्मा हो गये है और जिनकी महिमा का जगत् में विस्तार हुआ है, उन सब ने तपश्चरण किया था । तपश्चरण के बिना आज तक कोई भी पुरुष महात्मा नही बन सका तो परमात्मा बनना तो दूर रहा !

कर्म-दल को तोडने में, तप बड़ा बलवान् है।
कर्म-दावानल बुझाने, मेघ के समान है ॥

कर्मो को नष्ट करने मे तपस्या अतीव बलवती है। कर्मो के दावानल को शान्त करने के लिए तपस्या मेघ के समान है।

काम रूपी सर्प कीलन, मंत्र ये परधान है।
विघन घन तम हरण को तप सूर्य के उपमान है ॥

काले नाग को वशीभूत करने मे चाहे कालवेलिया समर्थ हो जाय परन्तु इस काम रूपी नाग को वश मे करना अत्यन्त ही कठिन है। इसके लिए तपस्या ही उत्तम साधन है।

किसी साहूकार का एक लड़का था। उसका विवाह हो चुका था। उसे पत्नी इच्छानुकूल मिली थी। उसकी पत्नी उसे और अपने श्वसुर को भोजन कराये बिना कभी भोजन नही करती थी।

विदेश गये बिना उन्नति नही होती, ऐसा सोच कर साहूकार का लड़का अपने पिता और अपनी पत्नी से पूछ कर विदेश गया वहां उसे कई वर्ष व्यतीत हो गये।

इन्द्रियो का समूह बडा ही विचित्र है। कामदेव को जीतना कोई साधारण बात नही है।

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वासमपकर्षति।

इन्द्रियाँ इतनी बलवती है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी उनके पास मे फसे बिना नही रहते।

पति के बहुत दिन बाहर रहने से बहू ने सोचा—कब तक मैं सयम धारण करके बैठी रहूं ! एक दिन उसने साहूकार से कहा—मैं कब तक गधी की तरह सारे काम-काज का बोझ लादे फिरूं ? घर में बहुत काम है । एक नौकर रख दीजिए ।

साहूकार बुद्धिमान् था । वह सब समझ गया । उसने कहा—वेटी, किसी भले आदमी की तलाश करूंगा ।

दूसरे दिन सेठजी को भोजन का बुलावा गया तो उन्होने कहला दिया—आज मैंने उपवास किया है । भोजन नहीं करूंगा बहू ने सोचा—जब श्वसुर साहब ने उपवास किया है तो मैं भी उपवास करूंगी ।

दूसरे दिन पारणा के लिए बुलावा भेजा गया तो सेठजी ने बेला बतलाया । बहू ने भी उनका अनुकरण किया ।

तीसरे दिन सेठजी ने कहलवाया—तुम पारणा कर लो-मैं आज भी उपवास करूंगा । परन्तु बहू सेठजी से पहले भोजन नही करना चाहती थी । उसने सोचा—एक दिन मे क्या मरी जाती हूँ । मैं तेला करूंगी !

चौथे दिन बहूजी शिथिल पड गई । चक्कर आने लगे । भूख से व्याकुल हो गई । सेठजी को पारणा के लिए बुलवाया सेठजी ने कहा—एक भला आदमी नौकरी करने आया है । उससे बातचीत करके अभी आता हूँ । तब बहू ने कहला भेजा—नौकर की आवश्यकता नही है । आप जल्दी पारणा करने पधार जाएं !

भाइयो ! तीन दिन की तपस्या ने बहू को बुद्धि ठिकाने ला दी। बहू ने विचार किया-मेरे श्वसुर धन्य हैं जिन्होंने मुझे पतित होने से बचा लिया ! मैं चूक जाती तो कितना अनर्थ हो जाता ! अपने पतिदेव को किस प्रकार मुख दिखलाती !

कई घरो मे, तपश्चर्या के अभाव मे घोर अनर्थ हो जाते है। यह तपश्चर्या लब्धि रूपी लता का मूल है। तपश्चर्या के प्रभाव से ही नाना प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त होती है।

पूर्व भव मे वसुदेव का नाम नन्दिषेण था। उनका शरीर बड़ा विद्रूप था। जहां कही उनकी सगाई की बात चलती कन्या उन्हे नापसन्द कर दिया करती थी। जब कही उनका विवाह न हुआ तो उन्होंने तपश्चर्या करना उचित समझा। मुनि बन कर नन्दिषेण मुनियो की सेवा करने लगे। जहाँ कही मुनियो की सेवा का अवसर मिलता, वे तुरन्त चल देते थे और शक्ति भर सेवा करते थे।

एक बार इन्द्र ने नन्दिषेण मुनि की सेवाभावना की प्रशसा की। सब देव सुनकर प्रसन्न हुए, परन्तु दो देवो ने उनकी परीक्षा करने का विचार किया। एक देव, गुरु और दूसरा शिष्य बन गया। गुरु को जगल मे छोड कर चेला नगर मे आया।

नन्दिषेण मुनि भोजन करने को बैठ ही रहे थे कि चेले ने आकर कहा-अरे नन्दिषेण ! तू भोजन करने को बैठ रहा है ? मेरे गुरुजी को जगल मे दस्त लग रहे हैं। क्या पानी का प्रबन्ध नही करेगा ?

'अभी लीजिए' नन्दिषेण मुनि बोले और भोजन सामग्री

वही रख कर नगर मे पानी के लिए चल पड़े। पर दैवी लीला के कारण कहीं भी सूझता पानी नही मिला।

चेले ने फिर कहा—तुझे शर्म नही आती ! मेरे गुरुजी जगल मे बीमार हैं और तू नगर मे चक्कर काट रहा है। चल मेरे साथ उन्हे नगर मे ले आवें।

दोनो मुनि नगर से जंगल मे आए।

जगल मे बीमार गुरु की हालत बड़ी विचित्र थी। वे दस्तो से भर रहे थे। फिर भी नन्दिषेण न उनसे शहर में चलने की प्रार्थना की। तब गुरुजी ने उत्तर दिया-ऐसी स्थिति मे मुझसे एक भी कदम चला जाना कठिन है।

नन्दिषेण बोले-मैं आपको उठा लेता हूं और उन्होने गुरु को उठा लिया। रास्ते मे चलत-चलते, गुरु की शिथिलता के कारण, नन्दिषेण का शरीर मल से लिप्त हो गया। नन्दिषेण ने कहा—ऊह, मेरा शरीर अशुचि से हो बना हुआ है और अशुचि से ही भरा हुआ है। ऊपर से भी यदि अशुचि लग गई तो क्या हो गया ! गुरु की विष्टा से मेरा क्या बिगडता है ! मेरा दुर्भाग्य है कि प्रयत्न करने पर भी जल नहीं मिला। नन्दिषेण इस प्रकार उज्जवल विचार करते हुए चले जा रहे थे। देवता ने अपना ज्ञान लगा कर देखा—इन मुनि के चित्त मे रत्ती भर भी ग्लानि नही है।

इस प्रकार मुनि की सेवा परायणता की प्रशसा करके देव प्रकट हुए। दोनो ने मुनि को प्रणाम किया और स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर दिया।

इधर नन्दिषेण मुनि ने घोर तपस्या की। अन्त मे

उन्होंने यह निदान किया कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं स्त्रीवल्लभ बनूं । जो स्त्री मुझे देखे, मेरे वश मे हो जाय ! इस निदान के साथ आयु पूर्ण करके वे स्वर्ग में गये और यथा समय वहाँ से च्युत होकर अन्धकवृष्टि के दस पुत्रो मे से सबसे छोटे पुत्र वसुदेव हुए ।

जैसे जंगल को जलाने में दावानल प्रवल है, दावानल को शान्त करने में मेघ शक्तिशाली है और मेघ को छिन्न भिन्न करने में वायु समर्थ होती है, उसी प्रकार कर्मों को चकनाचूर करने मे तपश्चर्या समर्थ होती है ।

नौकारसी, पोरसी, डेढ पोरसी, आयबिल; उपवास आदि तपस्या से कर्मो का विनाश होता है ।

नौकारसी—दो घड़ी दिन चढ़े तक अन्न-जल ग्रहण न करना । इससे सौ वर्ष तक नरक मे दुःख भोगने के कर्म नष्ट होते हैं ।

पोरसी—से एक हजार वर्ष की नरक की आयु के कर्मों का विनाश होता है ।

डेढ़ पोरसी—से दस हजार वर्ष की आयु के कर्म नष्ट होते हैं ।

दो पोरसी—से एक लाख वर्ष की नरक आयु के कर्म कटते हैं ।

एकाशना—से दस लाख वर्ष की नरक आयु के कर्म कटते हैं ।

एकलठाणा—से करोड़ वर्ष की नरक की आयु के कर्म नष्ट होते हैं।

नीवी—अर्थात् विगय न खाना। इससे दश करोड़ वर्ष की नरक की आयु के कर्म नष्ट होते हैं।

आयंबिल– यह तपस्या सौ करोड़ वर्ष की नरक की आयु के कर्मों का विनाश करती है।

उपवास—दस हजार करोड़ वर्ष की नरक की आयु के कर्मों का नाश करता है।

देवता कर जोड़ के तपवान् के हाजिर रहे।
वर्द्धमान प्रभुजी तप तपे, उपजा जो केवलज्ञान है।

तपस्वियो की सेवा मे देवता भी सदा उपस्थित रहते हैं। ऐसा समझ कर और तपस्या को कर्म विनाश का सफल साधन समझ कर सदैव यथाशक्ति तपस्या किया करो।

तप के महत्व को भारत के और भारतवर्ष से वाहर के प्रायः सभी धर्मो ने स्वीकार किया है। यह बात दूसरी है कि आज दूसरे लोगो ने इन्द्रिय लोलुपता के वशीभूत होकर तप के स्वरूप को विकृत कर डाला है। कई अवसरो पर लोग तपस्या के बहाने खूब गरिष्ठ माल-ताल उड़ाने लगे हैं। परन्तु उस धर्म की मूल भावना वैसी नही थी।

वैष्णवो में चान्द्रायण आदि व्रत प्रचलित हैं, जो इसी तपश्चर्या के द्योतक हैं। एकादशी का व्रत भी तपस्या करने के लिए ही वताया गया है। आजकल एकादशी के दिन फलाहार

करने की जो परिपाटी दिखाई देती है वह उचित नही है, क्योंकि उससे व्रत का महत्त्व बहुत ही कम हो जाता है। इसी बात को ध्यान मे रख कर एक कवि ने कहा है—

कहने को एकादशी पर द्वादशी की नानी है।

सच है, एकादशी का व्रत करके जो लोग डाट-डाट कर फलाहार करते हैं और पेड़ा, कलाकन्द आदी उडाते हैं, उनके लिए एकादशी, द्वादशी को नानि नही तो क्या है ? और दिन वे सादा और हल्का भोजन करते हैं किन्तु एकादशी को गरिष्ठ और कीमती भोजन करते हैं। भला यह भी कोई तपस्या का ढग है ! फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यह मूल आचार का विकार है। इस व्रत के मूल मे तो तपस्या की ही भावना रही होगी। लोगो ने उस भावना को बिगाड़ दिया है !

आर्यावर्त्त के धर्मो की बात जाने दीजिए और इस्लाम-धर्म का विचार कीजिए तो वहा भी तपस्या का महत्त्व बतलाया गया है। मुसलमान भाई रमजान के महीने में रोजा रखते हैं। रोजे के दिनो मे थूक को भी गले के नीचे उतारना हेय समझा जाता है। ऐसा करने से रोजा टूट जाता है। कहिए, कितना कठिन नियम है ! रोजे में किसी स्त्री को बुरी निगाह से देखने पर आँख का रोजा टूट जाता है। कान से बुरी बात सुनने पर कान का रोजा भग होता है। हाथो-पैरो से बुरा काम करने से उनका रोज टूट जाता है।

कुरान मे एक खास तप का विधान है। उस विधान के अनुसार चालीस दिन तक हाथ से कूटे हुए चने खाकर रहना

पड़ता है और एक आयत का जाप करना पड़ता है।

इससे जाहिर है कि कुरान मांस खाने और शराब पीने की मुमानियत करता है।

जब चक्रवर्त्ती छह खण्डो की साधना करते हैं तो तेला करते हैं। कृष्णजी ने गजसुकुमाल की प्राप्ति के लिए वेला किया था !

भाइयो ! तपश्चर्या के प्रताप से असभव कार्य भी सभव हो जाते है । जिसकी व्यवस्था न बैठती दिखती हो, उसकी व्यवस्था भी सहज ही बैठ जाती है।

गांधीजी देश के हित के लिए जब तपस्या आरंभ करते हैं-तो बादशाहो के तख्त हिल उठते हैं। तपस्या करके वे कलाकंद नही खाते, लड्डू नही खाते । उनकी तपस्या पद्धति बहुत अंशो मे जैन पद्धति के अनुकूल होती है।

एक बार किसी ने गाँधी से तपस्या का महत्त्व पूछा। गांधीजी ने उत्तर दिया—तपस्या का महत्त्व जानना हो तो जैनो के पास जाकर उनसे पूछो !

आज भी मुनिजन यथाशक्ति तपस्या करते हैं । मुनि नेमीचंद्रजी का आज अड़तालीसवाँ उपवास है । वे केवल गर्म किया हुआ जल ही लेते हैं ! इस युग मे तपस्या साधारण नही है ।

भाइयों ! यह वीतराग देव का मार्ग है । राजाओ, और चक्रवर्तियो ने भी अपना राजपाट त्याग कर घोर तपश्चर्या अंगीकार की थी और आत्म कल्याण किया था !

मूस, सुहागा आग और फूंकनी मिल कर सोने को शुद्ध बना देते हैं इसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप भी आत्मा सोना बना देते हैं।

कृष्ण महाराज तपस्या के प्रताप से ही पुरुषोत्तम बने। तपस्या के प्रभाव से ही उन्होने तीर्थंकर गोत्र का बन्ध किया था।

रेवती ने उदार भाव से दान दिया था। दान देना भी एक प्रकार का तप है। आप दो घन्टे के लिए यहाँ आये हैं और वीतराग देव का धर्मोपदेश सुन रहे है। यह भी तप का ही एक अङ्ग है।

आपको नरदेह की प्राप्ति हुई है। नरदेह एक बड़ी पूंजी है, जिससे आत्मिक सम्पत्ति को उपार्जन करने के लिए व्यापार किया जा सकता है। इस सुन्दर अवसर से आप लाभ उठाइए। इस पूंजी को बढाइए। आत्म कल्याण कीजिए।

अरिहन्त चक्री बल वासुदेव होते हैं,
ऐसी नरदेह को वे फिजूल खोते हैं ?
झूंठे जग जंजाल बीच मोहते है,
अनमोल वक्त ये आंख मीच खोते है ॥

भाइयों ! जिस मानव शरीर के द्वारा अरिहन्त पदवी प्राप्त करके सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, जिस देह की बदौलत चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव आदि उत्कृष्ट पदो की प्राप्ति की जा सकती है. उस उत्तम देह को क्यो निरर्थक व्यतीत कर रहे हो ? जगत् का यह जजाल झूंठा है। इस जजाल मे क्यो

अनुरक्त हो रहे हो ? क्यों आत्मकल्याण का विघात कर रहे हो ? नर तन अनमोल है। करोडों और अरबों का मूल्य चुकाने पर भी इसे खरीदा नही जा सकता। विवेकहीन बन कर इसे व्यर्थ नष्ट मत करो।

कृष्ण कथा:—

श्रीकृष्णजी ने किस प्रकार कंस के मल्लों का दर्प चूर्ण कर दिया और तत्पश्चात् किस प्रकार कंस को यमलोक पहुंचाया, यह सब बात कथा विस्तार पूर्वक कहने का समय नहीं है। वास्तविक बात यह है कि कंस के पापों का घड़ा भर चुका था और अब उसका फूटना अनिवार्य हो गया था। यही कारण है कि कृष्णजी के हाथ से कंस का वध हो गया।

कंस के वध के बाद यादवो की बड़ी भारी सभा हुई। उसमें वसुदेवजी ने एवान्ताकुमार के कथन के बाद से कृष्ण जन्म तक का समस्त वृत्तान्त सुनाया।

कंस के वध का दारुण संवाद पाकर उसकी पटरानी जीवयशा आई। उसने क्रुद्ध कंठ से कहा—अरे हत्यारे अहीर के छोकरे! तूने मेरे पति का वध किया है! सब के सब यादव देखते रहे! किसी ने उनको बचाने का प्रयत्न नही किया! समय आने ही वाला है। तुम सब को अपनी-अपनी करतूतो की सजा भुगतनी पडेगी! अन्त मे जीवयशा बोली—

'मैं प्रतिज्ञा करती हू कि कृष्ण, बलदेव आदि यादवों का संहार कराने के पश्चात् ही मैं अपने पति की चिता में जल कर भस्म होऊंगी।'

उग्रसेन ने जीवयशा को बुरी तरह फटकारा वह पति-वियोग की आग में जलती हुई जरासंघ के पास राजगृही नगरी चली गई।

तत्पश्चात् सब ने मिलकर उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया। उग्रसेन ने प्रसन्न होकर सत्यभामा का विवाह श्रीकृष्ण के साथ कर दिया !

अत्याचार का अन्त हुआ। अनीति का प्रतिकार हो गया! सर्वत्र सन्तोष और सुख का संचार हो गया। प्रजा में आनन्द छा गया!

इन्दौर
२५-९-४५





विनय धर्म

स्तुति--

नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।।

भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं--हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन ! कहाँ तक आपकी स्तुति की जाय ! हे प्रभो ! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ ?

हे भुवन के अलकार प्रभो ! हे जगत् के जीवों के नाथ ! जो भव्य जीव आपके वास्तविक गुणो का स्तवन करते हैं, वे आपके सदृस ही हो जाते हैं। इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है। इस ससार मे वह स्वामी ही क्या जो अपने आश्रित जन

को वैभव के लिहाज से अपने समान नही बना लेता ?

जैसे उदारचेता स्वामी का सेवक कालान्तर मे धनादिक की सहायता पाकर के अपने स्वामी के समान धनवान् बन जाता है, उसी प्रकार तीन लोक के स्वामी जिनेन्द्र भगवान् का आश्रय लेने वाले भक्तजन, जिनेन्द्र देव की स्तुति करके उन्ही के समान बन जाते हैं अर्थात् वे भी अरिहत पदवी को प्राप्त कर लेते हैं। जिन ऋषभदेव भगवान् की स्तुति करने से भक्त जीव भी भगवान् हो जाते हैं, उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो! अरिहन्त भगवान् की स्तुति करने से उत्कृष्ट लाभ की प्राप्ति होती है। उत्तराध्ययन शास्त्र मे कहा है—

प्रश्न—थवथुइमंगलेणं भंते ! जीवे कि जणयइ ?

उत्तर—थवथुइमंगलेणं नाणदंसणचरित्तबोहिलाभं जणेइ, नाणदंसण-चरित्तबोहिलाभसंपन्ने य णं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तिय आराहणं आराहेइ।

यहाँ प्रश्न किया गया है कि भगवान् का स्तवन और स्तुति करने से जीव को क्या लाभ होता है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे शास्त्रकार कहते हैं—भगवान् की स्तुति करने से जीव को ज्ञान, दर्शन, चरित्र रूप बोधि की प्राप्ति होती है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप बोधि जिसको प्राप्त हो जाती है वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। कदाचित् उसके कर्मों की स्थिति अधिक हो तो वह कल्प-विमान मे उत्पन्न

होता है और वहाँ के सर्वोत्कृष्ट सांसारिक सुख भोग कर आगामी जन्म मे मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

शास्त्र के इस उल्लेख से भी यही सिद्ध होता है कि विशुद्ध अन्तःकरण से भगवत्स्तुति करने वाले को भगवत्पद की प्राप्ति होती है।

भगवान् अपने भक्तो को अपने ही बराबर बना लेते हैं। जिसमे अभिमान होता है, वह दूसरे को अपने समान नही बनाता। यही नही, किसी प्रयत्न से वह वैसा बनता हो तो अभिमानी उसमे बाधक बन कर रुकावट डालता है। वह निरन्तर चेष्टा करता है कि कोई मेरी बराबरी का न बन जाय। मेरी बराबरी का दूसरा हो जायगा तो मेरी जो असाधारण प्रतिष्ठा है, वह नही रहेगी ! इस प्रकार क्षुद्र आशय वाले की ऐसी संकीर्ण भावना रहती है। मगर उदार आशय वाले पुरुष ऐसा विचार कदापि नही करते। वे छोटे को बड़ा बनाने का ही प्रयत्न करते हैं। उदार सेठ कालान्तर मे अपने मुनीम को भी सेठ बना लेता है।

कई मजहबों मे कहा है कि परमात्मा एक भिन्न ही श्रेणी का है और आत्मा कितनी ही साधना, तपश्चर्या, आराधना या भक्ति क्यो न करे, उसे परमात्मा का पद प्राप्त नही हो सकता। आत्मा सदैव परमात्मा को गुलाम बनी रहती है ! मगर जैन धर्म ऐसी संकीर्ण भावना को स्थान नही देता। वह आत्मा के समक्ष महान् सन्देश प्रस्तुत करता है। जैनधर्म का विधान है कि आत्मा स्वय परमात्मा बनने की क्षमता रखता है। कहा भी है—

यः परमात्मा स एवाहं; योऽहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयाऽऽराध्यः, नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥

जो परमात्मा है वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही परमात्मा है। ऐसी स्थिति में मैं स्वयं अपना आराध्य हूं, अन्य कोई नहीं।

यह वास्तविक—पारमार्थिक स्थिति है। निश्चय नय की यह दृष्टि है। क्योंकि वास्तव मे आत्मा और परमात्मा का मूल स्वरूप एक ही है। दोनो मे अगर आज अन्तर है तो वह केवल आत्मिक गुणो के विकास और अविकास के ही कारण है। भगवान् की स्तुति करने से आत्मा के गुणों का विकास होता है और आत्मिक गुणो का विकास होने पर उसे परमात्मपद की प्राप्ति हो जाती है। जैन धर्म का यह विधान कितना औदार्यपूर्ण है !

भगवान् भक्त को अपने सदृश बना लेते हैं, मगर भक्ति सच्ची होनी चाहिए। भक्ति ही न हो अथवा वह सच्ची न हो तो क्या काम हो सकता है ? भक्ति के अभाव में बाप भी बेटे को धन न देकर दूसरो को देकर मर जाता है।

गुरु भी विनम्र शिष्य को ही ज्ञान देते हैं। अभिमानी और ईर्षालु व्यक्ति ज्ञान का उपार्जन नही कर सकता।

परमपूज्य गुरुदेव उदयसागरजी महाराज मे ज्ञानोपार्जन करने की बड़ी तीव्र रुचि थी। वे एक बार कोटा पधारे। वहाँ विराजित मुनियो की धारणा अच्छी थी। महाराजश्री की इच्छा हुई कि उनसे कुछ लाभ उठाया जाय। इस इच्छा से

प्रेरित होकर वे मुनियों की सेवा मे पधारे और नवीन ज्ञान सीखने की अपनी इच्छा प्रकट की।

विनयवंत विगड़े नही, उंडो दे उपयोग ।
तुरत लगे अभिमानी के, मिथ्यात्व रूपी रोग ॥

सूर्य और चन्द्रमा को ग्रहण लगता है, तारा तो सदा बचे रहते है । पूज्य उदयसागरजी महाराज ज्ञान सीखने के लिए गये, पर मुनियो ने उत्तर दिया–अभी अवसर नही है। मगर जिसके अन्त.करण मे तीव्र जिज्ञासा जाग उठी है उससे ज्ञानोपार्जन किये बिना नही रहा जाता। पूज्यश्री ग्यारह वार उन मुनियो के पास गये और हर बार उन्हे नकारात्मक ही उत्तर मिला !

सज्जनो ! जरा गंभीर भाव से विचार करो ! ज्ञान की कैसी पिपासा है ! कितनी गहरी चाह है ! आदरणीय सन्त और आचार्य होते हुए भी उनके हृदय मे लेश मात्र भी अभिमान नही, अपमान का विचार नहीं। कितनी महानुभावता है ! आज का साधारण व्यक्ति भी घमण्ड से चूर होकर ज्ञानी के पास नही जाता, अर्थ का अनर्थ भले कर डाले ! जिनवाणी से विपरीत प्ररूपणा चाहे करेंगे, न्यूनाधिक कथन करने से भय न खाएगे; मगर विद्वान के पास जाकर शास्त्र का अध्ययन करने मे अपनी लघुता समझेंगे !

उदयसागरजी महाराज जब ग्यारह बार ज्ञान सीखने के लिए मुनियों के पास गये. तव उन्होने कहा-यह आपकी परीक्षा थी। आपकी जिज्ञासा सच्ची और गहरी है। आप ज्ञान के उत्कृष्ट पात्र हैं। आपकी जो इच्छा हो, सीखिए। हम अपनी

योग्यता के अनुसार ज्ञानदान करने मे सकोच नही करेंगे।

साधुओ ! आपके ऊपर भगवान् के उपदेश की जिम्मेवारी है। जनता आपके मुख से उपदेश सुनना पसन्द करती है। आपके कथन पर उसकी श्रद्धा होती है। आप भगवान् के मार्ग को प्रकाशित करने वाले है। उस ज्ञान का अधिक से अधिक प्रचार करना आपका कर्त्तव्य है। ऐसी स्थिति मे आपको ज्ञान प्राप्त करना ही चाहिए। केवल तवन और चौपाइयों से, कथा-कहानी और सगीत से काम नही चलेगा। शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किये विना ज्ञान अधूरा है और अधूरा ज्ञान खतरनाक है। उससे स्व-पर का अहित होने की सभावना रहती है। शास्त्रीय ज्ञान के अभाव मे मनुष्य स्वय गलत रास्ता पकड़ सकता है और दूसरो को भी गलत राह बतला सकता है। इस कारण मेरा अनुरोध है कि आप विनम्रता धारण करके ज्ञानवान् पुरुषों से ज्ञान प्राप्त करें। इससे लोक मे आपकी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी और आपका कल्याण भी होगा। आपको उदयसागरजी महाराज का उदाहरण सदैव अपने सामने रखना चाहिए।

स्यालकोट मे एक साधु की श्रद्धा उलटी हो गई। वह शास्त्र का उलटा अर्थ करने लगा। तब एक श्रावक ने, जो शास्त्र का ज्ञाता था, उसी समय कहा—'सीधा और सच्चा अर्थ करो वर्ना ऐसा थप्पड़ जमाऊंगा कि मु ह फिर जायगा।'

श्रावक शास्त्र का ज्ञान प्राप्त नही करते तो परिणाम यह आता है कि महाराज जो भी अर्थ कर दे, उसी मे 'तहत' करना पड़ता है। यह हालत किसी के भी हक मे अच्छी नही है।

यदि अपने गच्छ मे ज्ञान न हो तो दूसरे गच्छ के मुनि के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मगर यह बात तभी हो सकती है जब अभिमान न हो और ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल उत्कंठा के साथ विनय भी हो। जिसमे अभिमान होता है, उसे ज्ञान नही चढ़ता।

एक व्यक्ति ने विवाह किया। घर मे कोई वृद्धा स्त्री नहीं थी। अतएव पति ने नवविवाहिता पत्नी से कहा—देखो, पड़ौसिन माँ बहुत समझदार हैं कोई काम आ पड़े तो उनसे सलाह लिया करना।

स्त्री समय-समय पर पडौसिन के पास जाती और आवश्यकतानुसार सलाह लिया करती थी। उसे भोजन की कोई चीज बनाना न आता तो पड़ौसिन उसे बतला दिया करती था। पडौसिन बुढ़िया के बतला देने के बाद वह स्त्री कह देती-यह तो मैं भी जानती हूँ।

हर बार यही बात सुनते-सुनते बुढिया को बहुत बुरा लगा। वह सोचने लगी - इसे सभी कुछ मालूम रहता है तो फिर पूछने क्यों आती है? अच्छा एक बार परीक्षा करके देखूंगी।

एक बार पूरनपूडी बनाने का त्यौहार आया। उस स्त्री को मालूम नही था कि पूरनपूडी किस प्रकार बनती है? अतएव वह पडौसिन के पास पहुँची और बोली—माँजी, पूरन-पूड़ी किस प्रकार बनती है?

माँजी को परीक्षा करने का मौका मिल गया। उसने बहू को बतलाया— पहले चौका लगाना और कोयला पीस कर

तैयार रखना चौका लगाने के बाद कोयला तेल में मिलाकर शरीर पर पोतना। वस्त्र नही पहनना। पुराने जूतो की माला गले मे डाल लेना। चने की दाल उबालना। उसे पीस कर गुड या शक्कर उसमे मिला देना। फिर चकले पर बेल कर उसमे पूरन रख कर पूड़ी तल लेना। यह सब करते समय मौन रखना और घर के किवाड़ बन्द रखना।

बुढ़िया माँजी की बात सुन कर उस स्त्री ने कहा—यह तो मैं भी जानती हूँ।

वृद्धा ने हस कर कहा—क्यो नही बहू ! तू बडी चतुर है।

स्त्री अपने घर लौट आई और वृद्धा द्वारा प्रदर्शित विधि के अनुसार पूरनपूडी बनाने लगी। सयोग से उसी समय उसके पतिदेव आ पहुँचे। उन्होने द्वार खटखटाया, परन्तु पूरनपूडी बनाते समय बोलने की मनाई थी। अतः बार-बार किवाड़ खटखटाने पर भी उत्तर नही मिल रहा था !

पति ने समझा मामला कुछ बेढब है। देवीजी कही स्वर्ग तो नही सिधार गई है ! आखिर किवाड तोड कर उसने भीतर प्रवेश किया। पत्नी को वस्त्रहीन और तेल मिला कोयला शरीर पर पोते देख कर उसके क्रोध का पार नही रहा। उस समय वह साक्षात् कालिका दिखलाई देती थी। उसने चरण-पादुका हाथ मे लेकर कालिका देवी की मन भर कर पूजा की ! फिर पूछा—चुडैल कही की ! यह क्या रूप बन या है !

उसने कहा—पडौसिन सासूजी ने पूरनपूडी बनाने की यही विधि बतलाई। तुम नाहक मुझे मारते हो !

बुढ़िया से दर्याफ्त करने पर सब बात स्पष्ट हो गई। बुढ़िया ने कहा—यह विधि तो उसे पहले से ही मालूम थी।

यह एक दृष्टान्त है। इसका आशय इतना ही है कि अभिमानी मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को नम्रता धारण करनी चाहिए। ज्ञान-दाता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। कहना चाहिए—आपने मेरे आन्तरिक नेत्र खोलकर मुझ पर महान् उपकार किया है। आपने मुझे कृतार्थ कर दिया है। मेरा जीवन सफल बना दिया है।

जो अविनीत होते हैं, उन्हे न ज्ञान प्राप्त होता है, न मोक्ष ही प्राप्त होता है। अविनीत पुरुष विविध प्रकार की विपत्तियों का पात्र बनता है। कहा है—

विवत्ती अविणीयस्य, संपत्ती विणियस्स च।

अतएव अपना कल्याण चाहते हो तो विनयवान् बनो। विनीतजन ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

जो पुरुष अभिमान के कारण खंभे की तरह अकडा खडा रहता है और क्रोध करता है, उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि अभिमान विनय का विनाश कर देता है और विनय के बिना विद्या नही आती।

भगवान् महावीर का समवसरण लगा है। चन्दनबाला आदि सतियाँ भगवान् की सेवा मे उपस्थित हैं। उसी समय ज्योतिष्क देवों के इन्द्र चन्द्र और सूर्य भगवान् के दर्शन करने

के निमित्त आये। समय होने पर सब सतियां अपने अपने स्थान पर चली गई, परन्तु चन्द्रमा और सूर्य के कारण मृगावतीजी को समय का ध्यान न रहा। वह वहीं बैठी रही। जब चन्द और सूर्य गये तो एकदम अन्धेरा हो गया। मृगावतीजी घबरा गई। वह चिन्तित भाव से चन्दनबाला की सेवा मे पहुंची। चन्दनबाला ने कहा–मृगावती इतनी देर करके क्यों आई? यह तो साध्वीधर्म से विपरीत है।

मृगावती बोली—गुराणी जी, भूल हो गई!

चन्दनबाला—अच्छा, किवाड के नकूचे में उंगली डाल कर खड़ी रहो, यह उस भूल का प्रायश्चित है।

मृगावती– जो आज्ञा महाराज की!

मृगावती ने अपनी गुराणी की आज्ञा का पालन किया। वह अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करने लगी–भ्रमवश मुझसे कैसी भूल हो गई! मेरे लिए गुराणीजी को दण्ड-विधान करने का कष्ट उठाना पडा! मुझे धिक्कार है!

'भावना भवनाशिनी' के अनुसार उच्चतम भावो की श्रेणी आ जाने से महासती मृगावती को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई!

स्थानको मे दीपक तो जलते नहीं, परन्तु केवलज्ञान के कारण मृगावती को सभी कुछ दिखलाई देने लगा। मृगावती ने देखा—एक भयानक काला सांप चन्दनबालाजी के सिराने के पास से निकल रहा है। चन्दनबालाजी का हाथ इस प्रकार फैला हुआ था कि सांप से टकरा जाने का डर था।

चन्दनबाला का हाथ उठा कर मृगावती ने अलग कर दिया। सांप निकल गया। चन्दनबाला ने पूछा-कौन है ?

उत्तर मिला—यह आपकी अपराधिनी मृगावती !

चन्दनबाला—क्या बात है ?

मृगावती—कुछ तो नहीं, एक काला सांप जा रहा था, इस कारण आपका हाथ हटा दिया।

चन्दन०—कैसे देख लिया कि साँप जा रहा है ?

मृगावती—महाराज, आपके ही अनुग्रह से।

चन्दन०—पड़वाई या अपड़िवाई ?

मृगावती—जी, आपकी कृपा से अपडिवाई।

चन्दन०—क्या केवलज्ञान ?

मृगावती—हां, आपकी कृपा से।

चन्दनबाला को जब विदित हुआ कि मृगावती सती केवलज्ञान-शालीनी हो चुकी हैं, तो वह बहुत पश्चात्ताप करने लगी। उन्होंने कहा—ओह, मैं कितनी पापिनी हूं कि मैंने केवली की आसातना की ! मृगावतीजी मुझे क्षमा करना !

सच्चे अन्तःकरण से आत्मग्लानि करते-करते चन्दनबाला ने भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

विनीत भाव सब से अधिक सुखदायी है। जहां मान आया कि सब गुड़ गोबर हुआ !

एक सुनार ने अपने लड़के को जेवर बनाने के लिए आधा तोला सोना दिया। लड़का जेवर बना कर ले आया।

लोगों ने दो रुपयेो की कारीगरी कूंती। बाप के पास आने पर बाप ने कहा-उंह, यह कुछ भी नही है!

लड़के ने उस जेवर को मिटा कर फिर परिश्रम किया और अधिक बुद्धिमानी से दूसरी वस्तु तैयार की लोगों ने उसे ७) की कारीगरी बतलाई। परन्तु बाप ने फिर वही कहा-कुछ भी नही!

तीसरे दिन लडके ने फिर परिश्रम किया। इस बार उसकी मेहनत पन्द्रह रुपया आँकी गई, मगर पिता ने फिर भी वही बात दोहरा दी। अन्त में लड़के ने इतनी अधिक बुद्धिमत्ता और चतुराई का प्रयोग किया कि और लोगो ने पचास रुपया उसका मेहनताना कूंता। किन्तु उसे आश्चर्य हुआ जब पिता ने फिर भी वही 'कुछ नही' वाक्य दोहरा दिया!

अब लडके के चित्त मे अभिमान का भाव उत्पन्न हुआ। उसने अपने बाप से कहा—बस, आपने तो एक ही वाक्य रट लिया है—'कुछ नही!' पर ऐसी कारीगरी करने वाला इस नगर मे दुसरा कोई नही है!

पिता बोले—बेटा! जब तक तेरे चित्त में अभिमान का भाव नही आया था, तब तक तू उन्नति करता गया। अब भी अभिमान न आया होता तो सौ रुपये का कारीगर होता। लेकिन अब तेरी उन्नति का अन्त आ चुका है।

लोहा कितना कठोर होता है। एक मोहर के बदले बहुत-सा लोहा खरीदा जा सकता है। पर जब वह नरम होता है तब उससे औजार बनाये जाते हैं और एक-एक औजार

हजारों की कीमत का बन जाता है ! वह मुलामियत का ही प्रभाव है !

अहंकार के चक्र मे पड़ कर बाहुबलीजी ने एक वर्ष बिता दिया। वे बारह महीने तक अभिमान से खड़े रहे। तब भगवान ऋषभदेव ने ब्राह्मी और सुन्दरी से कहा— भाई को मार्ग पर लाओ ! बाहुबलीजी की तपस्या साधारण नही थी। उन पर सर्दी, गर्मी और वर्षा व्यतीत हुई थी। शरीर पर बेलें छा गई थी। चिड़ियो ने घौंसले बना लिये थे। फिर भी महाबली बाहुबली अडिग भाव से खड़े तपस्या मे लीन थे। अभिमान के कारण उनकी तपस्या सिद्धि प्रदान करने में समर्थ नही हो रही थी। ब्राह्मी-सुन्दरी ने आकर कहा—

कहे ब्राह्मी सुन्दरी पुकारी,
सुन भैया ! बात हमारी।
तू ने राजपाट तज दीना,
सुध सयम-मारग लीनाजी ।
फिर क्यों करी गज असवारी,
सुन भैया ! बात हमारी ।।

बहिनों की बात सुन कर बाहुबलीजी क्षण भर के लिए विचार में डूब गये। मैं हाथी पर सवार नही हूं और सतियां असत्य भाषण नही कर सकती। फिर यह ऐसा क्यों कह रही है ? आखिर कोई कारण होना ही चाहिए। मैं किस हाथी पर सवार हूं ?

बहिनों की सुन कर बानी,
चोंके बाहुबल ध्यानी जी ।
आज्ञा सिर पर धारी,
सुन भैया ! बात हमारी ॥

बाहु बली ने चौंक कर विचार किया तो उन्हे ध्यान आया--अभिमान भी एक प्रकार का हाथी ही है और मैं उस पर आरूढ़ हो रहा हूँ। मैं ने अपने बडे भाई भरत का शासन स्वीकार नहीं किया और अपने से छोटे भाइयों को, जो मुझसे पहले दीक्षित हो चुके हैं और इस कारण मेरे लिए वन्दनीय है, वन्दना नहीं की। उन्हें वन्दना करने से बचने के लिए मैं भगवान् की सेवा मे भी नही गया। यह सब क्या है ? इसके मूल मे अभिमान का उप्रभाव ही तो है ! यह हाथी पर सवार होना है। वास्तव मे मैं अब तक गंभीर भूल करता रहा हूँ। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं भगवान् की सेवा मे उपस्थित होऊ और छोटे भाइयो को भी वन्दना करूं।

इस प्रकार विचार करते ही बाहुबलीजी का अभिमान गल कर बह गया। अब वे निष्कषाय हो गये। भगवान् के पास चलने के इरादे से उन्होने पैर आगे बढ़ाया ही था कि—

फौरन केवलि पद वो पाया,
श्री आदिनाथ पै आयाजी ।
कहे चौथमल बलिहारी,
सुन भैया ! बात हमारी ॥

भाइयों ! इस कथानक से आप सहज मे ही समझ सकते हैं कि यह अभिमान कषाय कितना जबर्दस्त है ? अभिमान ने बाहुबली महाराज की घोरतर तपस्या को भी विफल बना दिया था। अभिमान हटने पर ही उनकी तपस्या सार्थक हो सकी। अभिमान का विषैला अकुर जब तक उनके अन्त:करण मे खडा रहा तब तक उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त नही हुआ और अभिमान के नष्ट होते ही उन्हे सर्वज्ञता की प्राप्ति हो गई।

भाइयों ! अभिमान कषाय आपकी आत्मिक सम्पत्ति को लूटने वाला जबर्दस्त लुटेरा है। इसके चंगुल मे न फसो। अभिमान से दूर रहकर विनय धर्म का सेवन करो। शास्त्रकारों ने बतलाया है कि अनन्त ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी विनय धर्म का परित्याग नही करना चाहिए--

अनन्तनाणोवगओ वि संतो।

विनय धर्म आत्मा में मृदुता उत्पन्न करता है। आत्मा की मृदुता अन्य समस्त सद्‌गुणो को खीच लाती है। अतएव मार्दव भाव को अपनाओ। अभिमान को त्यागो। अभिमानी व्यक्ति सद्‌गुणों से वचित रहता है और दूसरों की दृष्टि में तिरस्कार एव घृणा का पात्र बनता है।

अभिमानी पुरुष बात-बात में चिढता है वह न स्वयं शान्ति भोग सकता है और न दूसरो को शान्ति पहुचा सकता है। वह स्वयं जलता हैं और दूसरों को जलाता है।

बने आत्मा परमात्मा,
बतला दिया कि यों।

भाइयों ! विनय धर्म का पालन करो। विनय धर्म परमात्मा बनने की उत्कृष्ट कला है अगर आपने अभिमान त्याग कर विनय धर्म को स्वीकार किया तो आपकी आत्मा परम-कल्याण को प्राप्त होगी ।

इन्दौर
२२-६-४५





किनारे पर



स्तुति—

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥

भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! कहा तक आपकी स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! कहां तक आपके गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! देवांगनाओं के द्वारा आपका चित्त किंचित् मात्र भी विकारग्रस्त नहीं हुआ, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । प्रलयकाल में चलने वाली आंधी इतनी तीव्र होती है कि

वह पर्वतों को भी हिला देती है, फिर भी क्या वह सुमेरू पर्वत को हिला सकती है ? नहीं, सुमेरू पर्वत उस आँधी से भी नही हिल सकता। इसी प्रकार साधारण स्त्रियों की बात तो दूर रही, देवागनाएं, भी आपके चित्त को चलायमान करने में समर्थ नही हो सकती।

प्रलयकाल की आँधी से साधारण पर्वत चलायमान हो जाते है। उसी प्रकार स्त्रियों के हाव-भाव और विलास से अन्य देवो के चित्त चलायमान हो गये किन्तु सुमेरू के समान निश्चल भगवान् ऋषभदेव का चित्त रंच मात्र भी विचलित नही हो सका।

ऐसे निश्चल चेता, परम वीतरागी, कामविजेता भग-वान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भगवान् ऋषभदेव ने फर्माया है कि जो आत्मा पापों से भारी नही, वह हल्की होकर, ऊर्ध्वगति करके मोक्ष की अधि-कारिणी बनती है।

सारा संसार पापो के गहरे अन्धकार में निमग्न हो रहा है। उसे अन्धकार से प्रकाश मे जाने के लिए समय-समय पर महापुरुषो ने धर्म का उपदेश दिया है। [जिस भव्यात्मा ने उस उपदेश का अनुसरण किया और पापो का परित्याग कर दिया, वह प्रकाश में आ गया। वह परम ज्योतिस्वरूप बन गया। इसके विपरीत जो पापो के अन्धकार मे ही भटकता रहा उसने अपनी आत्मा को मलीन एवं कलुसित कर लिया। वह नरक के भीषण से भीषण अन्धकार मे अपने आपको खो बैठा!

पाप तो बहुत है, पर सब पापों में अहिंसा का प्रतिपक्षी हिंसा का पाप सर्वप्रधान है। हिंसा का पाप समस्त पापो का प्राण है; समस्त पापो का जनक है। जिसने हिंसा का पूरी तरह त्याग कर दिया, वह सब पापो से अपना पिण्ड छुडाने मे समर्थ हो सका। अतएव जो आत्महित के अभिलाषी पुरुष अपनी आत्मा को निष्पाप बनाना चाहते है, उन्हे सर्वप्रथम हिंसा के पाप से बचना चाहिए और अहिंसाधर्म का पालन करना चाहिए।

अहिंसाधर्म का पालन करने के लिए विवेक की आवश्यकता है। हिंसा जीव की ही होती है, अतएव हिंसा से बचने के लिए जीव क्या है और अजीव क्या है, यह जानना आवश्यक है जिसे जीव और अजीव का भान नही है, वह हिंसा से बचकर अहिंसा धर्म का पालन नहीं कर सकता। यही कारण है कि कितने ही लोग अपने आपको अहिंसक कहते हुए भी हिंसा के दोष से मुक्त नही होते। कोई-कोई मनुष्य के सिवाय पशुओ और पक्षियों आदि में आत्मा का अस्तित्व नही मानते। कोई वनस्पति, जल आदि मे जीव का होना स्वीकार नही करते। इस कारण वे इन प्राणियो की हिंसा करने से परहेज भी नही करते और फलस्वरूप हिंसा के पाप से नही बच पाते। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिंसा से बचने के लिए जीव और अजीव का ज्ञान हो जाना अनिवार्य है।

अहिंसाधर्म को पालने के लिए दूसरी बात यह आवश्यक है कि यह समझ लिया जाना चाहिए कि अन्य जीवों की आत्मा भी हमारी ही आत्मा के समान है। जो हम चाहते हैं वही दूसरे जीव भी चाहते है और जो हमे अप्रिय लगता है,

वह दूसरो को भी अप्रिय लगता है । जो इस तथ्य को समझ लोग वही अहिंसा का यथावत् पालन कर सकेगा ।

आप क्या चाहते हैं ? और क्या नही चाहते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर मे आप यही कहेगे कि हम सुख चाहते हैं और दु ख नहीं चाहते हैं बस, यही धर्म की कसौटी है । जैसे आप सुख चाहते हैं वैसे ही अन्य प्राणी भी सुख चाहते हैं और जैसे आप दु ख से बचना चाहते हैं, उसी प्रकार अन्य समस्त प्राणी भी दुःख से बचना चाहते हैं । ऐसा समझ कर अन्य प्राणियों के प्रति व्यवहार करो । यही अहिंसाधर्म है । यही शांति का मार्ग है ।

ससार के सभी धर्म पुकार-पुकार कर यही बात कहते हैं-

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् ।

अर्थात्—जो व्यवहार तुम्हे अपने लिए नापसन्द है, वह दूसरो के प्रति मत करो ।

कोई तुम्हे मारता है, तुम्हारा छेदन भेदन करता है या किसी अन्य उपाय से तुम्हे कष्ट पहुचाता है तो क्या तुम उसे पसन्द करोगे ? नही तो बस समझ लो कि जैसे यह सब व्यवहार तुम्हे पसन्द नही, उसी प्रकार दूसरे जीवो को भी यह पसन्द नहीं है । अतएव ऐसा व्यवहार करना कदापि धर्म नही हो सकता ।

इस तथ्य को अपनी दृष्टि के समक्ष रखते हुए विचार करो कि बकरो का वध करना अथवा भैसो की बलि चढाना क्या धर्म हो सकता है ? फिर भी लोगो ने हिंसाकारी बातो का समर्थन करने वाले ग्रन्थ बना कर रख दिये हैं। वे लोग उन

ग्रन्थों को भी शास्त्र कहते हैं, परन्तु वे शास्त्र नहीं, शस्त्र हैं-तलवार हैं।

भाइयों ! आप चाहते हो कि दूसरे तुम्हें न सताए; तो दूसरे जीव भी ऐसा ही क्यों नही चाहते होगे ? अतएव अगर सचमुच ही आप धर्म की आराधना करना चाहते हैं तो अपने चित्त मे प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव धारण करो।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।

परन्तु जैसा कि मैंने अभी कहा है, दया या अहिंसा धर्म का पालन करने के लिए सर्व प्रथम विवेक की आवश्यकता है। दया पालने की भावना और प्रयत्न करने पर भी जिसे जीव-अजीव का विवेक नही होगा समीचीन रूप से दया धर्म का पालन नही कर सकेगा।

जीव कहां—कहां हैं ? किन – किन वस्तुओं का उपयोग करने से हिंसा होती है ? बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी हेतु जिनेन्द्र देव ने जीव तत्त्व और अजीव तत्त्व का जानना सर्व प्रथम आवश्यक बतलाया है।

भगवान् ने फर्माया है कि पृथ्वी में जीव है, अलबत्ता ऊपर की मिट्टी मे जीव नही होता। पानी मे भी जीव है। पानी मे रहने वाले मगर—मच्छ तथा अन्य जीव तो अलग हैं, पानी को ही शरीर बना कर रहे हुए जीव एक बून्द में असंख्यात होते हैं। उपरी जीव त्रस जीव हैं, जब कि जल को शरीर बना कर रहे हुए जलकाय के जीव स्थावर-एकेन्द्रिय जीव हैं। इसी प्रकार अग्नि, वायु और वनस्पति मे भी जीव हैं। हिंगलु,

हड़ताल, के गेरू आदि में भी इनके अचित्त होने से पहले जीव होता है।

कुछ लोग ऊपर से नमक लेकर उसका सेवन नहीं करते। वे सोचते हैं—दाल-शाक मे जितना नमक गिरा है सो गिरा है। हम और डाल कर पाप न बढ़ावें। हम साधु लोग, कितनी ही गर्मी क्यों न पड़ती हो, पखा नहीं करते, क्योंकि पंखा करने से वायुकाय के जीवो की विराधना होती है। कीडों-मकोडों आदि मे तो जीव का अस्तित्व प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है।

साधुओ की वात अलग और गृहस्थों की बात अलग है। साधु हिंसा का पूर्ण रूप से परित्याग करते हैं, परन्तु श्रावक पूरी तरह त्याग नही सकते। फिर भी जहाँ तक सभव हो, उन्हे भी हिंसा से बचने का ही प्रयत्न करना चाहिए। जान बूझकर निरर्थक हिंसा तो किसी भी हालत में नही करनी चाहिए। अनजान में हिंसा हो जाय और बाद मे पता चले तो उसके लिए पश्चात्ताप करना चाहिए और भविष्य में वैसा न होने देने के लिए दृढ़ सकल्प करना चाहिए तथा सावधान होकर प्रवृत्ति करनी चाहिए।

एक बार एक हाकिम साहब ने मुझसे पूछा—कृपया यह समझाइए कि धर्म क्या है।

मैंने उत्तर दिया—अगर आप पाप को पहले समझ लें तो धर्म को समझना आसान हो जायगा। पाप अठारह हैं। पहला पाप हिंसा है। हिंसा न करना धर्म है। इसी प्रकार झूठ बोलना पाप है और इससे उलटा सत्य का आचरण करना

धर्म है। इसी प्रकार अदत्त पदार्थ को ग्रहण करना, व्यभिचार करना और सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति का भाव धारण करना पाप है। इनसे विरुद्ध अदत्त को ग्रहण न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और अनासक्ति भाव रखना धर्म है।

धर्म को कहीं अन्यत्र खोजने के लिए भटकने की आवश्यकता नहीं हैं। वह तो आपके ही चित्त मे निवास करता है; केवल उसे अभिव्यक्त करने की आवश्यकता है। चित्तवृत्ति को सच्चाई की ओर मोड़ने भर की देरी है। आपकी चित्तवृत्ति सत्य की तरफ मुडी और उसी समय आप मे धर्मभाव जागृत हो गया।

धर्म करने के लिए न पैसा खर्च करना अनिवार्य है और न परिश्रम करने की ही आवश्यकता है। पाप का परिहार करने से धर्म आप ही आप उद्भूत हो जाता है।

भव्य जीवो! तुम ऊपर आ चुके हो मोक्ष के द्वार पर पहुँच चुके हो। तुम मनुष्य हो चुके हो। अब थोड़ी-सी ही करणी की और आवश्यकता है। तनिक सा प्रयत्न और अपेक्षित है इसलिए मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर डालो। शास्त्रकार कहते हैं—

कि पुण चिट्ठसि तीरमागओ।

अरे, किनारे तक तो आ पहुँचे हो, अब क्यो खड़े हो। दो कदम और आगे बढ़ो। सिद्धि प्राप्त करने मे देर नही लगेगी।

स्मरण रखना, अगर इस समय पीछे हट गये, नीचे की ओर चले गये तो फिर ठिकाना नही लगेगा। चौरासी मे चक्कर लगाना पड़ेगा। नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ेंगे। इसलिए

इस सुअवसर को न गंवाओ । तुम्हें वीतराग देव की वाणी सुनने को मिली है । यह शास्त्र सुनने का सुयोग तुम्हे बडे पुण्य के उदय से प्राप्त हुआ है । इन शास्त्रों के रहस्य को समझो और अधर्म का परित्याग करके धर्म को धारण करो। धर्म के प्रताप से आनन्द ही आनन्द होता है । धर्म जगत् को रक्षा करने वाला होता है । धर्म सब विघ्नो से बचाने वाला है । धर्म के प्रभाव से सब विघ्न-बाधाएं दूर होती हैं ।

भाइयो ! अगर आप अपने जीवन को उंचे स्तर पर ले जाना चाहते हैं, अगर आप जीवन को महिमामण्डित बनाना चाहते हैं, अगर आप अपनी छिपी हुई शक्तियो का प्रकाश करना चाहते हैं और यदि आप अमर बनना चाहते हैं तो कष्टो की परवाह न करके आगे बढो । धर्म के पथ पर चलो । ऐसा करने से आपको आनन्द की प्राप्ति होगी ।

इन्दौर
२१-६-४५



सप्रेम भेंट—

सालेरा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट

महावीर बाजार, ब्यावर

